मुद्रक—
तारकेश्वर पाण्डेय,
ज्ञानपीठ लि०,
पटना ४

क्षण चुप रही, फिर स्वयं उसने कहा—जब मै मन्दिर मे स्तवन कर रही थी...और तुम...

—नही-नहीं, मंजु! मै नही—माँ ने बलपूर्वक ओठों पर हँसने का उपक्रम कर कहा—अरी, रोऊँगी क्यों?

—झूठ!—मंजु मचल उठी और किंचित् खिंचे हुए स्वर मे बोली—तुम रो नही रही थी माँ? क्या जो कहती हो, समझ में नहीं आता! मै तुम्हारी बात को सच मॉनू या अपनी ऑख को?

मॉ को तुरत उत्तर देते न बना! पर, वह कह भी क्या सकती थी कि वह क्यों रो रही थी? किंतु मंजु के लिए यह कोई नई बात न थी। वह देखती आ रही है कि उसकी मॉ आज दो सालों से निरंतर रोती आ रही है। ऐसा कदाचित् ही अवसर मिला हो कि उसने अपनी माँ की आँखें सजल न देखी हों! कारण न जानती हो, सो बात नही, मंजु जानती है! पर मंजु से, उसके उत्तर में, उसने कहा—दोनों बातें सच है, मंजु!

—क्या सच है मॉ?

—यह कि मैंने जो कहा है, वह सच है और तुमने जो देखा है, वह भी सच है।

मंजु कुछ क्षण द्वंद्व मे पड़ी रही, फिर अपने असमंजस को दूर करने के विचार से पूछा—तो मान लिया न कि तुम रोती थी?

—नही, मंजु, तुम भूल कर रही हो,—माँ की आकृति पर विषाद की कालिमा दूर हो चुकी थी, उसके ओठ विहँस रहे थे, तभी उसने आगे कहा—देखो, मंजु, अत्यंत दुख मे आँखें सजल हो उठती हैं और आनन्द की अधिकता में भी आँखों में बरबस आँसू आ जाते हैं। आज, तुम ऐसा न सोचो कि और-कुछ के लिए मेरी आँखें सजल हो उठी थी, वह निश्चय ही दु:ख के ऑसू होते, पर सो बात नही है। आज तुम्हारे

स्तवन को सुनकर मैं रोमांचित हो उठी थी। इतना सुन्दर, इतना मनोमुग्धकर तुम्हारे मुँह से कभी न सुना था, पर आज तो तुमने मुझे अपने स्वर से चकित-विस्मित कर दिया।

—चकित-विस्मित!—मंजु खिलखिलाकर हँस पड़ी और हँसती हुई ही बोली—क्या जो कह रही हो माँ, मैं कुछ भी नहीं जानती! पर, मैं तो सरस्वती-प्रतिमा को देख रही थी माँ। और ऐसी तन्मय हो गई थी कि मुझे स्वयं पता न चला—मैं क्या-कुछ कह गई! क्या सचमुच अच्छा लगा माँ?

—अच्छा ही नहीं, बहुत-बहुत अच्छा!—माँ ने मंजु के चिबुक को उँगली से टीपा और हँसकर बोली—सरस्वती तुम पर बड़ी प्रसन्न रहेगी मंजु! मैं जानती हूँ कि वह स्तुति तुम्हारे अन्तर की थी। देवता अन्तर को ही देखते हैं, मंजु!

—अन्तर को देखते हैं, माँ?

—हाँ, अन्तर को ही, मंजु!—माँ ने फिर कुछ क्षण रुककर कहा—और जिसका अन्तर जितना निर्मल रहता है, उसकी कामना उतनी ही शीघ्र पूरी होती है!

—कामना पूरी होती है, माँ?—मंजु कुछ क्षण चुप रही, फिर बोली—पर कामना किसे कहते हैं, सो तो जानती नहीं!

—जाने दो, वह सब जानकर क्या करोगी, मंजु! अभी मन लगाकर पढ़ती चलो, पढ़ने पर कामना भी जान लोगी। माँ ने बतंगड़ को टालना चाहा; पर उसे टाल न सकी, क्योंकि तभी उस लड़की विलक्षण मंजु ने हँसकर कहा—तुम तो बातों-बातों में यों ही कितनी बातें पढ़ा गई हो माँ! ओह, कितनी बातें मैं जान गई हूँ, सो क्या तुम्हें पता नहीं है?—मंजु कुछ क्षण चुप रही, फिर आगे कहा—तुम भी जब कभी ऐसी बात कह जाती हो कि उसका ठिकाना नहीं! 'या कुन्देन्दु

तुषार हार ' तुम्हींने पढाया था न माँ, मैं तो पुस्तक में अभी वह पढ कहाँ सकी हूँ, फिर कहती हो कि पढती चलो! और जब मैं पूछती हूँ कि कामना किसे कहते हैं, तब तुम टाल जाना चाहती हो। तो तुमने कामना कही ही क्यों?

माँ अपने-आप में परास्त हुई और परास्त होकर खूब खिलखिलाती हुई हँस पड़ी। उसके बाद हँसते-हँसते ही कहा—समझा री, समझा, मंजु! तुम्हारी हर बात का जवाब मुझे देना ही होगा। 'कामना' तुम समझ न सकी, यह तुम्हारी बुद्धि की बलिहारी है! आखिर, सोचकर कुछ तो समझ ही सकती हो। सोचोगी बिलकुल नहीं, बस केवल पूछती चलोगी।

मंजु की भवें सिकुड़ गईं, कुछ अन्यमनस्क होकर गम्भीर हो उठी वह! पर, कुछ ही क्षणों के बाद उसकी आकृति दमक उठी और ओठों पर एक हलकी-सी मुसकराहट की रेखा खिंच आई। उसके बाद बोल उठी—मुझे तो लगता है कि मन में जो कुछ चाह होती है—जैसे किसी बात की इच्छा होती है—खेलने की, खाने की, घूमने-फिरने की, वही कामना है। क्या यही तो कामना नहीं है माँ?

—हाँ, करीब-करीब यही है मंजु!—माँ प्रसन्न हो उठी—तुम तो स्वयं समझ जाती हो; पर तुम्हें तो बात का बतंगड़ लगाना ही चाहिए।

—पर अभी ठीक हुआ कहाँ माँ!—मंजु को सन्देह लगा ही रहा, और उस सन्देह को मिटाने के लिए फिर से कहा—अभी तो तुम करीब-करीब कह रही हो, ठीक-ठीक कहती तो मैं जानती कि इच्छा और कामना एक ही है। क्यों, मैं ठीक कह रही हूँ, माँ?

माँ उसकी तीक्ष्णता पर फिर हँसी और हँसते-हँसते ही कहा—इच्छा वह है, जो क्षण भर के लिए उठती है, और कामना वह है, जो क्षणिक नहीं, स्थायी होती है।

—अब समझी, अब समझ गई माँ !—मंजु खिलखिलाकर हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही कहा—दो साल से मैं क्या कामना करती आ रही हूँ, जानती हो माँ ?

—नहीं।

—यह कि कमल को मै फिर देख पाती ! कही वह मिल गया होता ! आज भी तो मंदिर में भीतर-भीतर यही सोच रही थी। याद है माँ, मैं भूनी नही हूँ, दो साल पहले कमल के साथ इसी मन्दिर में आई थी। मेले मे उसने बहुत से खिलौने लिये थे। तब तो मेले में तुम खुद घूमती रही थी, अब मन्दिर में दर्शन कर सीधे लौट आती हो। इतना बड़ा मेला, पर तुम घूमने नहीं देती ! न खुद जाती हो, न मुझे जाने देती हो। ऐसा क्या है कि हमलोग मेला भी न देखें...

मंजु बातों की झड़ी लगा गई; पर उस मंजु को क्या पता कि उसने कैसी बातें छेड़ दी ! माँ की आकृति उतने ही कुछ क्षणों में ऐसी धूमिल हो उठी कि वदन का सारा रक्त पानी हो गया हो जैसे ! मंजु को ही कमल की बात याद हो, सो नही । सच तो यह कि उसकी स्मृति भी स्वतः सजग हो आई थी, जिससे उसकी आँखों से आँसू टपक पड़े थे। और, जिसे छिपाने को उसे इतनी बातें बनानी पड़ी थी। वह सहसा कुछ उत्तर न दे सकी। सच तो यह कि उसके पास उत्तर देने को जैसे कुछ रह नही गया हो ।

ठीक उसी समय गाड़ीवान ने आकर कहा—रानीमाँ, अब तो चलना ही चाहिए। मूर्त्ति उठ गई है। लोग जा रहे हैं। गाड़ियों की कतार लगी हुई है ! नदी पार करने में कठिनाई होगी। क्या आज्ञा होती है, रानीमाँ ?

रानीमाँ ने सिर उठाकर देखा। देखा कि संध्या बीत चुकी है। अँधेरा घना हो उठा है; पर आकाश में सप्तमी का चाँद अपनी चाँदनी बिखेर

रहा है। तारे छिट-फुट घने हो रहे है। रानीमाँ ने कहा—हाँ, गाड़ी तैयार करो, उठो मंजु।

और मंजु घर लौट चलने की खुशी में सहसा उठ खड़ी हुई। उसे अपने प्रश्न का ध्यान भी न रहा। उसने खड़ी होकर सामने की ओर देखा, तब वह चौक उठी और अचरज-भरे स्वर मे बोली—देखो माँ, रास्ते में गाड़ी-घोड़े-पैदल जैसे हजार-हजार आदमी किस तरह भागे चले जा रहे है! हमलोग कैसे जा सकेंगे? ओह, कैसी आफत है!

—आफत क्या है मंजु?—माँ ने कहा—देर-सबेर घर ही तो पहुँचना है! प्रतिमा-विसर्जन के बाद वैसा ही होता है। चलो, हम-लोग गाड़ी पर बैठें! चलो, चलें।

२

दो दिन का आनन्द भी क्या कुछ कम होता है ! दिहातों में जहाँ सुबह से शाम तक काम लगा रहता है, और काम के साथ चिंता भी, हाड़ पर चाम की तरह, चिपकी रहती है। देहातियो को इतना अवकाश कहाँ कि उन्हें आनंद छू तक जाय। पर नही, पर्व-त्योहार के दिन भी उनके जीवन में आते रहते है और उन्ही दिनो, कुछ क्षणों के लिए सही, वे खुलकर आनन्द उपलब्ध करने की चेष्टा करते है।

वसंतपंचमी का त्योहार कृषकों के लिए एक विशेष महत्त्व रखता है। उसदिन वे हल की पूजा करते हैं। उस दिन बैलो को सजा-सवाँरकर, हल की विधिवत् पूजाकर, उस वर्ष की खेती के लिए थोड़ो-सी जगह जोत कर, पहली मूठ लेते है और उसी दिन की सफलता असफलता पर, सगुन-असगुन पर, उस वर्ष का भविष्य कूतते है। और, जहाँ सरस्वती की मूर्त्ति बनाकर पूजा होती है, और उसी उद्देश्य से मेला लगाया जाता है, वहाँ उस दिन का वे अपना काम रोक कर, देवी के दर्शनो को जाते है और आनन्द मनाते हुए, मेले से, कुछ जरूरी चीजे खरीदते हुए, मिल-जुलकर

घर वापस आते हैं। इस तरह अपने उत्साह और जीवन को ताजाकर आगे के कामों के लिए अपने को वे तैयार करते है।

उस बार प्रतिमा-विसर्जन के दिन, मेला उठ जाने के विचार से, चार-पाँच कोस से आये हुए लोगों की भीड़ वहाँ टूट पड़ी थी और संध्या हो जाने पर, प्रतिमा का विसर्जन हो जाने के बाद, जब लोग घर लौटने को चल पड़े, तब राह पर भीड़ टूट पड़ने लगी। उस भीड़ के बीच गाड़ी-घोड़ों को निकलना दूभर हो गया। गाड़ियों की कतार पाँच कदम आगे बढ़ती, फिर उसे रुक जाना पड़ता। सड़क के दोनों ओर कुछ दूर तक घेरे हुए बाग-बगीचे पड़ते थे। इसलिए सकरी सड़क से भीड़ को निकलने में कठिनाई आ गई थी। पाँव-पैदल चलनेवाले धक्का-मुक्की करते हुए किसी तरह बढ़े जा रहे थे, पर गाड़ियों की कतार तो उस तरह बढ नहीं रही थी! जो भी हो, किसी तरह जब वे गाड़ियाँ उस सकरी सड़क को पार करके बाहर फैली-खुली सपाट मैदान में निकल आईं, तब उकताई हुई मंजु ने बिगड़ कर गाड़ीवान से कहा—देखो, रास्ता कटाकर गाड़ी को आगे करो! बाप रे बाप, जान निकल गई। ऐसी भी भीड़ होती है!

—भीड़ ही तो है मंजु—माँ ने कहा—दूर-दूर से लोग आये थे, उन्हे घर भी तो पहुँचना है, ठण्डी रात जो ठहरी।

पर मंजु ने कुछ उत्तर न दिया। उसका ध्यान दूसरी ओर लगा था। वह देख रही थी कि उसकी गाड़ी होकर एक तेज घुड़सवार बड़ी तेजी से घोड़ा दौड़ाये जा रहा है, जिसकी ओर वह टकटकी बाँध कर देख रही है और भीतर भीतर सोच रही है कि कहीं इस घोड़े से कोई कुचल न जाय! इसलिए वह मन-ही मन रोष मे उबल रही थी कि ऐसा क्या अंधाधुंध घोड़ा दौड़ाना है! और, कुछ ही क्षणों में कुछ दूर पर देखा कि सचमुच एक छोटा-सा बालक उस घोड़े की रपेट मे आकर गिर पड़ा और घोड़ा उस पर से निकल गया। घुड़सवार ने घोड़े को चुचकार कर जोर से

लगाम तानी, घोड़ा कुछ रुक कर पीछे मुड़ा और वह घुड़सवार उस बालक के पास उतर पड़ा और खीझ से दो चाबुक तानकर उस बालक की ओर झपटा......

और तभी मंजु चिल्लाकर बोल उठी—शैतान ! शैतान !!

मंजु की बात सुनकर उसकी माँ चौंकी, जाने वह भीतर-भीतर क्या कुछ सोच रही थी । वह बोल उठी—क्या है मंजु ?

—ओह, देखा नहीं माँ !—मंजु रोष में बोली—देखो, देख रही हो वह बालक, एक घुड़सवार ने घोड़े से रौंदा, फिर घोड़े से उतरकर दो चाबुक भी खींचकर मारीं ! कसूर अपना, फिर ऊपर से धौंस !

लोग कुछ रुके, फिर अपनी राह लगे । तबतक गाड़ी उस बालक के पास आ पहुँची थी, वह आगे न बढ सकी, जब भीतर से आवाज आई—रोको, गाड़ी रोको ।

गाड़ी की स्वामिनी नीचे उतर पड़ी, मंजु से भी बैठे न रहा गया । और जब वे दोनों उस बालक के पास आकर खड़ी हुईं, तबतक वह बालक अपने बदन से धूल झाड़कर अपने को संभाल चुका था; पर उसकी आँखें तमतमाई हुई थीं ! अपनी विवशता में असमर्थ व्यक्ति जिस तरह अपने रोष को भीतर-भीतर पी जाता है, ठीक वही अवस्था थी उस बालक की ! मंजु उस बालक को टकटकी बाँधकर देखने लगी तो आँख फोड़-फोड़ कर देखती ही रही, पर उसकी माँ का मातृत्व उतने ही क्षणों में उभर उठा । वह उस बालक की पीठ पर हाथ फेरते हुए बोली—बड़ी चोट लगी ? कहीं खून तो नहीं निकला ?

बालक ने सिर हिला कर धीरे से कहा—नहीं ।

—नहीं !—मंजु ने चाँदनी के प्रकाश में उसकी ओर देखकर कहा—देखो माँ, चाबुक के दाग कैसे चकचक कर रहे हैं ? कितनी बेरहमी से उसने चाबुक खींच मारी थी ! ओह, तुम अगर देखती माँ !

—सो तो देख रही हूँ मंजु ! मगर......

—तुम्हारे साथ के लोग और कोई नही है क्या ?—मंजु ने उस बालक से पूछा।

बालक ने सिर हिलाकर नाही बतलाया।

मजु कुछ क्षण गौर से देखने के बाद बोल उठी—माँ, एक बात कहूँ, कहूँ माँ, एक बात! फिर आप ही बोल उठी—कैसा अचरज है, मुँह-कान-सिर-आँख सब कुछ अपने कमल जैसा—लगता है, अपना कमल ही तो नही, हमलोगों से बिछुड गया हो ? देखती हो, माँ, ठीक से देखो तो भला।

और माँ को लगा कि मंजु कुछ झूठ नही कह रही है। कमल अब तक ऐसा ही हुआ होता! उसने तभी उससे पूछा—क्या नाम है तुम्हारा ?

—कमु ..छोटा-सा अस्पष्ट उत्तर मिला।

—क्या कहा ?—फिर मजु की माँ ने पूछा।

—कमु...

—कमु क्या, कुमुद तो नही ?

—हाँ, कुमुद—सिर हिलाकर बताया—नाम तो वही है, पर सभी कमु कहते है।

—सभी कौन ?—मंजु ने पूछा, फिर आगे कहा—तुम तो कहते हो, कोई नही है, फिर कौन कहता है।

—हाँ, मेरे कौन है ? कोई तो नही!

—तो अकेले मेला आया था ?

—और कौन आता!—सिर झुकाकर कमु ने कहा।

—और जाना कहाँ है ?

—सो कैसे कहूँ--कमु ने कहा, फिर राह की ओर देखते हुए कहा--लोग जा रहे हैं, मै भी जा रहा हूँ।

—तो चलो हमलोगों के साथ गाड़ी पर—मंजु ने कहा—जब कहीं जाना है तब हमलोगों के साथ ही चलो।

बालक ने मंजु की ओर देखा, फिर मंजु की माँ की ओर वह देखने लगा।

तभी मंजु की माँ बोली—आओ कुमुद, ठीक तो मंजु कह रही है। तुम्हे कोई तकलीफ न होगी।

पर कमु ने कोई उत्सुकता न दिखलाई, बल्कि वह दुविधे मे पड़ा रहा। स्वामिनी को यह समझते देर न लगी कि उसे साथ चलने में संकोच क्यों हो रहा है। तभी उसने स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरा, फिर उसकी उँगली थाम कर बोली—आओ, कुमुद, चलो हमारे साथ, रात भर रहना, फिर चाहे जहाँ इच्छा हो, चले जाना।

और ऐसा कह कर उसकी उँगली थामे माँ गाड़ी की ओर बढ़ चली।

जब गाडी चल पड़ी, तब मंजु अपने आप बोल उठी—माँ, एक बात कहूँ ?

—कहो।

—तुम जो कह रही थी, कामना पूरी होती है, सो ठीक ही कह रही थी।

माँ संपनी-गाड़ी के कोने में बैठकर कुमुद की ओर देख जाने क्या-क्या सोच रही थी, मंजु का बात सुनकर चौक पड़ी और बोल उठी—सो क्या ? फिर हँसकर बोली—कौन-सी कामना पूरी हुई मंजु ?

—क्यों कुमुद जो मिला !—मजु प्रसन्न होकर बोली- कमल नही, कुमुद ही सही।

कुमुद ने मजु की ओर चकित होकर देखा, पर वह कुछ समझ न सका। तभी मजु की माँ ने पूछा—तुम्हारा घर कहाँ है कुमुद ?

—नही मालूम।

—तुम्हारी माँ, तुम्हारे बाबूजी ?

—मेरे तो और कोई है नही ।

—तो !

उसके बाद मजु की माँ धीरे-धीरे कुमुद से घुल-मिलकर इस तरह बातें करती चली और कुमुद को उसके उत्तर में अपनी आप-बीती इस तरह सुनानी पडी कि किसी को कुछ पता न चला कि कब गाड़ी ड्योढ़ी के फाटक पर आ लगी है । गाड़ीवान उतर कर गाड़ी थामे सवारी के उतरने की अपेक्षा कर रहा है । तभी मजु बोल उठी—आ गये कुमुद, उतरो ।

सभी एक-एक कर उतर पडे । कुमुद ने उतर कर देखा कि बडे-बड़े आलीशान मकान है, चहारदिवारी से घिरे हुए । वह ठिठका-ठगा-सा विस्मित-चकित खड़ा रहा, जैसे वह सोच नही पा रहा हो कि वह कहाँ, कैसे और क्यों आ पहुँचा । रानीमाँ ने उसकी ओर देखा और बड़े स्नेह से उसने कहा—हमलोग आ पहुँचे है, कुमुद ! आओ, खड़े क्यों हो, भीतर चलो ।

मंजु ने भी उस ओर देखा, वह हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही बाली—डर रहे हो, क्यों ? नही, कुमुद, डरने की कौन-सी बात है, चलो ।

और मंजु ने उसका हाथ पकड़ा और उसे अपने साथ लिये भीतर की ओर चल पड़ी ।

भीतर आकर कुमुद की दृष्टि चारों ओर फिर गई । उसने भीतर के चारों ओर के कमरों को देखा, जो लैपों के प्रकाश में जगमगा रहे थे । उसी तरह उसने दो मंजले कमरों की ओर देखा । इस बार उसने रानी माँ की ओर अच्छी तरह दृष्टि डाली, फिर मंजु की ओर भी देखा । और ज्यों-ज्यों उसने देखा, त्यों-त्यों उसका विस्मय ही बढ़ता चला, त्यों-त्यों उसका कुतूहल और अधिक बढ़ता चला और ज्योंही चारों

ओर से लड़कियों का एक झुण्ड अपनी स्वामिनी के पास आ पहुँचा त्योंही वह अवाक्-विस्मय होकर जमीन की ओर दृष्टि गड़ाये पड़ा रहा। उसे समझ में न आया कि वह कहाँ आ गया है। उसकी दीनता, उसकी नग्न मलिनता और उसके मन की खिन्नता जैसे पूरे रूप में उभर कर उसकी आँखों में समा गई हो और इस तरह उसकी आँखें जैसे मात्र शून्य रह गईं हों, जैसे उन आँखों से शून्यता के गोल-गोल छोटे-छोटे निशान रोशनी में जल मरनेवाले फतींगों की तरह झड़ रहे हों! कोई उत्सुकता नहीं, कोई चंचलता नहीं! शून्य, निर्विकार!!

तभी रानीमाँ ने उन लड़कियों के झुण्ड की ओर देखते हुए कहा—देखो, थोड़ा पानी गरम करो और कुछ नये कपड़े का इंतजाम करो। फिर उस झुण्ड में से एक को लक्ष्य करके कहा—श्यामा, तुम पर इसका भार रहा। देखो, इसे गरम पानी से नहलाओ। तबतक मैं भी कपड़े बदल कर आती हूँ।

रानीमाँ ऊपर की ओर चली गई।

तभी उस झुण्ड में से एक दूसरी लड़की हँस कर बोली—क्यों मंजु बहन, मेले मे तुम्हें यही खिलौना मिला?

—खिलौना!—मंजु की भवें तन गईं, मुँह फुलाकर बोली—छोटा मुँह बड़ी बात! आदमी खिलौना होता है? शरम नहीं आती बोलते? यहाँ की जितनी लौंडियाँ है, ढीठ बन गई है! ऐसा माँ के चलते हुआ है! आने दो माँ को।

—दुहाई मंजु बहन—फिर वही लड़की गिड़गिड़ाकर बोली—रानी माँ तो रानीमाँ ही है। मै तो पूछ रही थी कि......

—चुप रहो—मंजु फिर बिगड़ कर बोली—मैं जानती हूँ, ये लौंडियाँ इसे रहने न देंगी! भला कोई किस तरह रहेगा? जहाँ आदमी को आदमी नहीं समझा जाता, वहाँ कोई किस तरह रह सकेगा!

—हाँ, नीद तो आ रही श्यामा ! देखो, बगलवाले कमरे में इसके सोने का इंतजाम कर दो। वही लिवाती जाओ।

—हॉ, मै इन्हे लिवाते हुए जाती हूँ, रानीमॉ !—श्यामा बोली—आप भी संध्या-आरती से फुर्सत......

—हाँ, चलती हूँ।

और जब श्यामा कुमुद को लेकर चल पडी तब रानीमॉ के मुँह से एक जोर की आह निकली और वह कुमुद की ओर चुपचाप टकटकी बॉधे देखती रह गई।

३

रियासतों की चर्चा नही, पर जहाँ-कही और जब-कभी वड़ी-वडी जमीदारियों की चर्चा उठती है, तब विक्रमगंज-इस्टेट की बात हुए विना नहीं रहती ! विक्रमगज-इस्टेट कब से बना, किसने उस इस्टेट की स्थापना की—वह आज अतीत के छिपे इतिहास की चीज रह गई है, पर लोगों को करीब सत्तर-पचहत्तर साल पहले की जो कहानी मालूम है, उससे पता चलता है कि आनंदमोहन चौधरी सिराजुद्दौला के मसनबदारों में से चौधरी-उपाधिधारी एक मसनबदार के वशजों मे हैं और इस जमींदारी का अधिकाश भाग सिराजुद्दौला से उपहार मे प्राप्त जागीर है । चौधरी आनंदमोहन का नाम इसलिए विख्यात रहा कि नीलकर अँगरेज साहबों से उनकी जानी दुश्मनी रही । अंत में उन नीलकर साहबों को कुछ कोठियाँ और उनके साथ अच्छी खासी जमीन, कुछ साधारण मूल्य लेकर चौधरी आनदमोहन के हाथ बेच देने को मजबूर होना पड़ा ।

चौधरी आनंदमोहन ने उस विजय के उपलक्ष मे बहुत बड़े यज्ञ का आयोजन किया । उस यज्ञ में सुना जाता है कि एक पखवारे

तक विक्रमगंज के आस-पास की नदियों की नावें डुबो देनी पड़ी, महज इसलिए कि, यज्ञ के भोज से कोई जाने नही पावे। पखवारे तक नाच-गान का जशन चलता रहा, नित्य विभिन्न प्रकार की मिठाइयाँ, विभिन्न प्रकार की नमकीने , तरह-तरह के आमिष, निरामिष, फल-मेवे-मुरब्बे चलते रहे; फिर भी भाण्डार खाली न हुआ।

और उस अन्नपूर्णा-भाण्डार की भी एक कहानी कही-सुनी जाती है। बीसवी सदी में चाहे उस कहानी का कोई महत्त्व न हो, पर जो सच्ची घटना कही जाती है, उसे कोई नजर-अंदाज कैसे कर सकता है!

जिस दिन नीलकर साहबो से आनंदमोहन ने कोठियाँ और जमीन रजिस्ट्री करवाई , उसी दिन संध्या के समय उन्होने 'बालम' नामक एक खास अरबी घोड़े की पीठ पर जीन कसवाई और हाथ मे बल्लम-बर्छा लेकर सवार हुए। और, उनकी इच्छा हुई कि पूर्णिमा की चाँदनी रात में एक बार अपनी जमीन्दारी की परिक्रमा कर ली जाय! आखिर यह पृथिवी-वसुधरा ही तो सजीव लक्ष्मी है—माँ है—आराध्या है, जिसका उद्धार उन्होंने विदेशियो के हाथो से किया है! जबतक परिक्रमा के रूप मे वे अपने हृदय का भक्तिपुरस्सर अर्घ्य निवेदित न कर लेंगे, तबतक वे अन्न-जल कैसे ग्रहण कर सकेंगे! यह उनकी टेक थी।

लोगों का कथन है कि यह परिक्रमा कुछ साधारण न थी। जमीन तो यो आबाद न थी कि घोड़े पर एक खुशी-खुशी की सैर रहे! जंगल भरे पड़े थे, अधिकाश नरकट थे, बेंत की लताएँ थी, झाऊ थे, जमीन की सतह ऊबड़-खावड़, ऊँची-नीची, दलदल से भरी—इतना ही नही, दस-बीस बीघे पर एक-न-एक नाला, और उन नालों में बडे-बड़े मगर, जो पकड़ना जानते है, छोड़ना नही—और वही हाल दो नदियो का था, जो उस नई खरीदी हुई जमीन के दो सिमाने पर पड़ती थीं! पर, आनंदमोहन भोगी ही नही थे, भोग के भीतर रहकर भी उनकी आत्मा

कुछ गुरु-गंभीर साधना से इतनी ऊँची उठी थी कि वे अपने को मात्र निमित्त ही कहते रहे, अधिकारी अपने मंगलमय प्रभु को ही समझा। और वे परिक्रमा में चल पड़े .. ....

परिक्रमा कैसी रही, उसके विषय में कहीं किसीसे नहीं सुना गया, पर इतना तो अब भी बड़े-बूढ़े कहा करते हैं कि उसी परिक्रमा में जब वे दूसरी ओर पर जा पहुँचे, तब उन्हें दीख पड़ा कि वहाँ नील की एक कोठी थी। नील का दादन खतम हो चुका था, साहब-सूबा कलकत्ते की घुड़दौड़ में चले गए थे। चारों तरफ सुनसान था। आनंदमोहन वहाँ घोड़े से उतर कर कोठी के सामने एक ऊँचे चबूतरे पर बैठे, बालम उनके पास सटकर खड़ा रहा। आनंदमोहन ने चारों ओर की निस्तब्धता में चाँदनी बिछी हुई देखी, ऊपर आकाश की नीली साड़ी में तारों के गोटे चमकते हुए देखे और उस साड़ी के बीच चाँद का परिपूर्ण विहँसता हुआ मुख-मण्डल देखा। उन्हें जान पड़ा कि वह जाने किस दुनिया में पहुँच गये हैं—जहाँ आनंद तो है, पर विषाद नहीं, जहाँ हँसी तो है, रुदन नहीं! आनंदमोहन ने अलक्ष्य के देवता के प्रति दोनों हाथों को सम्पुटकर सिर झुकाया.... ..

और उसी क्षण उन्हें कुछ दूरी पर कराहने का शब्द सुन पड़ा, पर उनके मन को विश्वास न जगा! निर्जन स्थान में मनुष्य के कराहने की आवाज! नहीं, यह भ्रम है---उनके मस्तिष्क ने कहा। पर, कुछ क्षण के बाद फिर वही आवाज! यह तो भ्रम नहीं, बिलकुल सत्य है। आनंद मोहन उठे, एक हाथ से घोड़े की लगाम पकड़ी और दूसरे हाथ से बर्छा सँभाला और जिधर से आवाज आती थी, आगे बढ़े।

आवाज सच निकली, चाँदनी के धौत प्रकाश में देखा कि चौड़े शिलाखंड पर एक व्यक्ति लेटा पड़ा है, शिला से हाथ बँधे हैं, कमर बँधी है, पर वह वृद्ध हैं, बिखरी हुई जटा और छाती को छूती हुई दाढ़ी, कमर

में कोपिन मात्र ! कहना व्यर्थ है, आनंदमोहन ने उस रात मे उनके लिए क्या-क्या नही किया ! उन्होंने उनके बंधन काटे, उन्हें उठाकर बैठाया, निकट के नाले से पानी लाकर उन्हे पिलाया, आँखों पर छींटे दिये; फिर अपने थैले से निकालकर फल और मेवे खिलाये । वे स्वस्थ हुए । दोनों में परिचय हुआ । आनंदमोहन ने बड़े विनम्र भाव से निवेदन किया कि वे साथ चलें और उन्हे सेवा का अवसर दें, पर वे राजी न हुए ! उन्होंने कहा—तुम्हारे द्वारा मेरा शाप-मोचन हुआ । जगत् मे सब पर क्लेश आता है, मुझ पर भी आया, वह मेरे पूर्व जन्म का संचित कर्म था । मुझे प्रसन्नता है कि तुम्हारी मति-गति भगवान की ओर लगी है । जाओ, तुम्हारा मंगल होगा, तुम्हारा भाण्डार अक्षय रहेगा, जबतक तुम्हारे मन में किसी तरह का कलुष प्रवेश न करेगा ।

और उस देव-तुल्य साधु का वरदान लोगों ने आनंदमोहन के जीवन में फलते-फूलते देखा ।

आनदमोहन, यज्ञ की समाप्ति के बाद, अपने पुत्र पर सारा भार सौप हिमालय की कंदरा मे चले गये ।

उनके पुत्र विनयमोहन ने उनके नाम की अक्षर-अक्षर रक्षा की । उनके दो पुत्र हुए—गिरीन्द्रमोहन और सुरेन्द्रमोहन । गिरीन्द्रमोहन ने अंगरेजी पढी और अंगरेजों के गुण को नही—दुर्गुणों को ग्रहण किया; पर सुरेन्द्र चौकस रहे । उन्होने पितामह के पक्ष का अनुसरण किया । सौभाग्य से उनकी पत्नी भी वैसी ही सुशीला और धर्मप्राणा निकली । सुरेन्द्र के दो संतानें हुईं—एक कमल नामक पुत्र और मंजुला नाम्नी कन्या । अल्पायु में—यही करीब ३२-३३ की अवस्था होगी—उन्होंने दोनो संतानों को पत्नी के हाथों सौपते हुए कहा--प्रभावती, ये मेरे प्रतीक रहे--सावधानी से पालन करना, अच्छा हो, तुम पुरानी हवेली मे ही रहना ।

प्रभावती को वे दिन रह-रहकर याद आते हैं, जब उनके प्राणोपम पति के साथ उसका अंतिम दैहिक मिलन था! प्रतीक के रूप में प्रभावती को जो दो रत्न पति ने सौंपे थे, उनमे कमल ने दो साल के बाद ही अपने पिता के पथ का अनुसरण किया, रह गई है एक मंजुला—या मंजु—जो यौवन के निदाघ में रूपसी प्रभावती के लिए शीतल प्रलेप का काम कर रही है। पर जो कमल उसके नेत्रों से ओझल हो चुका है, वह हृदय से दूर जा नहीं सका है···उसकी स्मृति आज उसके लिए एक सजग प्रहरी है···उसकी छाया से एक प्रबोध मिलता है, और उसके मन को उससे एक अपरिसीम बल!

और उसी प्रभावती ने उस रात, जब वह अपने पलंग पर पौढ़ी आराम कर रही थी, पाँव दबाने में संलग्न श्यामा से पूछा—देखा तुमने कुमुद को? क्या कमल··· ···

श्यामा भी कुछ कम दुविधाओं मे न थी! ऐसा साम्य क्या कहीं जगत् में देखा जाता है—उसका हृदय कह रहा था; पर मन कैसे माने कि जिसे उसने मरते हुए देखा, उसे फिर कुमुद के रूप में कैसे समझा जाय! मगर कुछ बातें अवश्य इस संसार में ऐसी भी देखी जाती हैं, जिन्हें मन नहीं मानना चाहता; पर उन्हें हृदय स्वीकार कर लेता है! श्यामा क्या उत्तर दे? पर जब उसने अपनी स्वामिनी को देखा कि उनकी खुली आँखें अब भी अपने प्रश्नों का उत्तर चाहती हैं, तब वह बोल उठी—अद्‌भुत साम्य है रानीमाँ, मै अभी-अभी, जब उसे सुलाने गई थी, देखा कि उसके मुख की गढन—क्या आँख, क्या नाक, क्या ललाट—यहाँ तक कि वे घुँघराले केश, और मुँह पर लटकी हुई लटें—सब-की-सब—कमल जैसी ही हैं! फिर तुरत रुक गई और धीरे से बोली—मगर···

—'मगर' रहने दो श्यामा!—प्रभावती ने तकिये के सहारे उठँग कर लेटते हुए कहा—मैंने जब पहले-पहल उसे देखा, जब कि एक घुड़सवार

के घोड़े की रपेट में वह आ चुका था और उस घुड़सवार ने उतरकर उसकी पीठ पर सपासप चाबुक लगाई, तब कुमुद रो नहीं सका। सिर्फ रोष के कारण उसकी आँखें छलछला आई! वह निर्बल का रोष—अपनी जान पर खेल गया और आक्रमणकारी के सामने अपने आँसू न गिरने दिये! जानती हो श्यामा, यह कैसा प्रतिकार था?

प्रभावती ने श्यामा का हाथ, अपने पैर से हटा कर अपने हाथ में लिया, फिर वह कहने लगी—श्यामा, तुम्हें कुछ याद आता है, वह प्रतिकार की बात?

—आप क्या कह रही हैं, रानीमाँ?

—पगली, तुम इतना भी नही समझती!—प्रभावती ने फिर से श्यामा की ओर ताका और बोली—अरी, याद नहीं है, कमल को एक दिन मारा था—और इसलिए मारा था कि वह एक बेगुनाह लड़के को मार आया था। वह कहता था कि उसे योंही नही मारा, उसने उसके कपड़े पर कीचड़ डाली, पर मैंने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया, उसे मारा और प्रतिकार के रूप में उसने क्या किया—जानती हो श्यामा?

—शायद दो दिनों तक भूखा रह गया!... ..

—'शायद' नहीं श्यामा, 'सचमुच' कहो—सचमुच कहो—प्रभावती आँख मूँद कर कहती गई—वह उसका प्रतिकार था! वह प्रतिकार में अपनी जान पर खेला गया, जैसा आज मैंने इस कुमुद को देखा... ... आकार का साम्य ही नही श्यामा, अद्भुत चकित-विस्मित करनेवाला विचार का साम्य......नही श्यामा, तुम क्या कहती हो?

—आप ठीक कह रही हैं, रानीमाँ!—समर्थन मे श्यामा बोली।

प्रभावती कुछ क्षण तक चुप हो रही। श्यामा पाँव दबाती रही। वह श्यामा जाने भीतर-भीतर क्या सोच रही थी, पर प्रभावती ने उसे चौंका दिया। वह जोर-जोर से पाँव दबाने लगी। प्रभावती ने पूछा—मंजु सो गई है?

—हाँ, सो गई है, रानीमाँ !

—जानती हो, मंजु क्या कह रही थी ?

—क्या कह रही थीं मंजुबहन ?

—कह रही थी यह कि—प्रभावती ने अँगड़ाई भरी, फिर अपने उभरे हुए वक्षस्थलों को अपने हाथों से मसलते हुए कहा—माँ, कुमुद को जाने नही देना कही। कुमुद तो सिर्फ बदला हुआ नाम है कमल का... मगर नाम बदलने से क्या होता है, रहे न वह कुमुद ; पर मेरे लिए तो वह कमल ही रहेगा··· ···मंजु बच्ची तो है, पर है कितनी बुद्धिमती ! नही क्यों, श्यामा ?

—सो तो है ही, रानीमाँ !—श्यामा हँसकर बोली—मंजुबहन आखिर हैं किनकी बेटी !

प्रभावती अप्रसन्न हो उठी, बोली—रहने दो ठकुरसुहाती बात ! ऐसी बात से मेरा कलेजा जल जाता है।

प्रभावती चुप हो रही। उसने आँखें मूँद ली। कुछ क्षण सन्नाटा रहा। फिर प्रभावती स्वयं ही बोल उठी—बुद्धिमती अपने गुण से है मंजु, श्यामा, मगर कम......

प्रभावती फिर चुप हो रही। श्यामा सोच रही थी कि कहाँ का भूला-भटका हुआ एक अनाथ बालक, और कहाँ एक इतनी संपत्तिशालिनी जमींदार-गृहिणी, जो किसी महारानी से किसी बात मे कम नहीं—न रूप में, न गुण में, न दया-दाक्षिण्य में, न मानवता में ! किस तरह झकझोर दिया है उस बालक ने इनके हृदय को.... .....

और तभी प्रभावती हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही कहा—एक बात पूछूँ श्यामा, उत्तर दोगी ?

—भला आप पूछें और मै उत्तर न दूँ !—श्यामा ने गंभीर होकर कहा—आप स्वामिनी है, आप से मेरा क्या दुराव !

—तुम्हें संतान की कामना नहीं होती, श्यामा ? सच-सच कहो ।

—कामना करने से ही क्या होता है, रानीमाँ ?—श्यामा ने फिर सिर झुका कर कहा । उसका हृदय किसी अचिन्त्य विचार से धड़क उठा ।

—क्या नही होता भला, मै जानूँ तो ? कहो; चुप क्यो हो गई ?

—मगर—श्यामा लजा गई, वह आगे न बोल सकी । उसने मुँह दूसरी ओर फेर लिया ।

—मगर क्या श्यामा ? मै पूछती हूँ, जानना चाहती हूँ कि मै गलती पर तो नही हूँ ? मै भी नारी हूँ—तुम भी नारी हो । और, कोई दूसरा कारण नही । मै परिहास नही कर रही । मै यथार्थ जानना चाहती हूँ—मै सच को पकड़ना चाहती हूँ......

प्रभावती ने श्यामा की ओर आँखें गड़ा दी । श्यामा को कहना पड़ा । उसने कहा—मगर, मेरा विवाह ही कहाँ हुआ है, रानीमाँ !

—ओह, तो क्या तुम अबतक कुमारी ही हो ?

—हाँ, कुमारी हूँ, रानीमाँ ! क्या आप नही जानती ?

प्रभावती कुछ क्षण चुप हो रही । जाने उस क्षणिक मौन-स्तब्धता मे किस अतलतल में वह जा पहुँची हो । फिर कुछ क्षण के बाद वह स्वयं मुस्करा उठी और बोली—मै जान गई, श्यामा, मै सच को पा गई । अच्छा, मै तुम्हारे विवाह का सारा भार अपने ऊपर लेती हूँ । नारीत्व की मर्यादा संतान मे है—सृष्टि मे है—इसलिए नारी महीयसी है . ... अच्छा, श्यामा, जाओ, रात अधिक हो गई, मुझे भी सोने दो ।

श्यामा उठकर खड़ी हुई । फिर अपने हाथों से प्रभावती के बदन पर मखमली रजाई डाल कर, रोशनी धीमी कर दी और दरवाजे के पल्ले को धीरे से सटा कर वह अपने कमरे की ओर चल पड़ी ।

प्रभावती ने करवट बदली । खिड़की की राह वह कुछ क्षणो तक आकाश मे बिछी सघन तारिकाओं की ओर देखा, पर उनसे उसका मन

हलका न हो सका। वह बिछावन से उठ बैठी । उसने रोशनी की बत्ती जरा तेज की, फिर वह कमरे से निकल कर बरामदे पर टहलती रही। टहलते-टहलते ही वह कुमुद के कमरे के पास पहुँच कर ठहर गई और किवाड़ के पल्लों में कान सटाकर भीतर की आवाज सुनने में लगी रही। भीतर से श्वास-प्रश्वास की बहुत धुँधली-सी आवाज, जिसे कान नहीं, कल्पना ही सुन सकती है--सुनी और उसे विश्वास हुआ कि नींद की गंभीरता में जा पहुँचना स्वस्थता का स्पष्ट निदर्शन है। फिर भी उसके मन में हुआ कि एक बार अभी, जब वह बेसुध सोया पड़ा है, देख क्यों न लिया जाय !

प्रभावती ने दरवाजे के पास धीमे प्रकाश की लैंप उठाई और पल्लों को इतना आहिस्ते-आहिस्ते हटाया कि कहीं उसकी नींद टूट न जाय। वह लैंप के साथ भीतर घुसी। उसने जरा बत्ती और तेज की और उस तीव्र प्रकाश में उसने पाया कि श्यामा ने कुछ गलत नहीं कहा है— ठीक ही कहा है--नाक, कान, मुँह, आँख, सब-के-सब अवयवों में विलक्षण साम्य !

प्रभावती उसकी आकृति की ओर झुकी; पर वह जाने क्यों स्पर्श न कर सकी। फिर उसने एक गहरी दृष्टि डाली, जैसे उस दृष्टि के द्वारा ही वह उस मूर्त्ति को अपने अंतर के छिपे कंदरे में, सूम के धन की तरह, रख छोड़ना चाहती हो।

४

प्रभावती ने अपने वैधव्य जीवन में, अपने लिए कुछ नियम बना लिये थे। उनमें एक था कि उषा के पहले शय्या-त्याग कर पाँव-पैदल ही अपने पितामह श्वसुर-निर्मित 'आनन्द-सागर' सरोवर में जाती, स्नान करती और उधर से लौटती बार चण्डी-मंडप मे जाकर, बाहर दरवाजा बंदकर, देवी के चरणो में पुष्पाजली अर्पित करते हुए पूजार्चना करती; फिर एकातनिष्ठ भाव से एकासन पर बैठ ध्यान मे निमग्न हो पड़ती। उस समय उसके बदन पर दुग्ध-फेन की तरह उज्ज्वल मसृण वस्त्र होता, वक्षस्थलों पर एक हल्की-सी कंचुकी बँधी रहती, सद्यःस्नात सुचिक्कण केश-राशि पृष्ठभाग को आच्छादित करती हुई उसके स्थूल नितंब को घेरे रहती, शृंगार सज्जा-विहीन निराभरणा प्रभावती की यौवन से दीप्त मुख-श्री पर एक सहज सुकुमार लावण्य, नेत्रों में मादकता नही—चिर अचंचलता की सीमा पर पहुँचा देता। इस रूप में वह जिस पथ से निकलती, वहीं, उस पर पड़नेवाली दृष्टि श्रद्धा से अवनत हो जाती, वह पृथुल नितंब-भार से नत, मंदगति से उस पथ पर बढ़ जाती।

सूर्योदय के पूर्व, पूजार्चना से अवकाश पाकर वह अपने महल में आती। महल में गृहदेवता की प्रतिमा को अपने हाथों स्नान कराती, पूजा-अर्चना करती, आरती उतारती और वही तुलसीदल के साथ नैवेद्य जल का एक घूँट पान कर कही बाहर निकलती।

इतना-कुछ हो लेने के बाद उस दिन का कार्य प्रारंभ हो जाता। मंजु का मुँह धुलाया जाता, धारोष्ण दूध का एक भरा ग्लास और कुछ मेवे और सूखे फल उसे जलपान में मिलते। श्यामा और पारो उसकी सेवा में सन्नध रहती। उसे तेल-मर्दन कर नहलाया जाता, उसके कपड़े बदलाए जाते, उसका केश-विन्यास किया जाता। उसके बाद उसे मंदिर के चतुःशाल में संस्कृत पढने के लिए भेज दिया जाता। मंजु की शिक्षा के लिए प्रभावती ने संस्कृत-वाङ्मय को ही उपयुक्त और आवश्यक समझा था, क्योंकि वह स्वयं संस्कृत की शिक्षार्थिनी अपने बाल्य-जीवन में रह चुकी थी।

प्रभावती, तब, एक बार महल के सारे कमरो में घूम जाती, दहलीज मे आती, जहाँ कुछ चुनी हुई गौएँ बँधी रहती; उन्हें देखती, बछड़ो की पीठ सहलाती, फिर वहाँ से निकल कर गोशाला में जाती, फिर घुड़साल की ओर जाती और सबसे अंत में पिलखाने की ओर। यद्यपि पिलखाने के वे पिछले दिन नही रह गये थे, तथापि अब भी 'गंगा' हथिनी और 'बादल' हाथी उन दिनों की याद दिलाने के लिए मौजूद थे। प्रभावती वहाँ जा पहुँचती, पिलवान—धन्ना और अशरफ—हाथियों को मलते नजर आते; पर स्वामिनी को देखकर वे चावलों की टोकरियाँ उठा लाते और अलग-अलग टोकरी के चावल, उन दोनो हाथियो के सामने रखकर, उन्हें खिलाया जाता।

प्रभावती जमीदारी का काम, दीवान को बुलाकर, समझा दिया करती, जहाँ जिस कागज पर उसके दस्तखत की जरूरत होती, वहाँ वह

अपना दस्तखत बना देती और जिस किसी विषय पर जो कुछ सम्मति देनी होती, दीवान जी को वह दे दी जाती ।

दीवान वृद्ध थे, पर वह थे पुराने लोग, जमाना देखे हुए, सज्जन, स्पष्टवादी, मगर अपने काम में रत्ती भर भी टस-से-मस न होनेवाले! उनके नीचे खजाची, मुंशी, पटवारी, गोडायत और सिपाही—जो किसी भी जमीदार के लिए आवश्यक होते है, सब थे। मगर सबसे स्वामिनी का सीधा सम्बन्ध नही था, फिर भी सभी की जुबान पर स्वामिनी की सदाशयता का मानो हर घड़ी कीर्त्तन चढा रहता ।

उस दिन सबसे पहले प्रभावती के दैनिक कार्यक्रम में थोड़ा-सा व्यतिरेक उपस्थित हुआ । सूर्योदय के पहले प्रभावती की स्नान-पूजार्चना समाप्त हो चुकी थी; पर उस दिन मंजु की ओर ध्यान न देकर कुमुद की ओर वह लपक पड़ी । कुमुद की नीद टूट चुकी थी, वह पलंग से नीचे उतरकर खिड़की के पास पहुँच बाहर की ओर देख रहा था । उसकी आकृति पर रात-जैसी भय-विह्वलता नही थी, पर यह भी नही था कि उसके मन पर कोई अज्ञात आशका न हो . . . .

प्रभावती कमरे मे प्रवेश कर चुपचाप उसकी ओर निहारती रही, पर वह बाहर की ओर देखने में, अथवा मन की अचिंतनीय बोझ के कारण, इतना अचंचल थी कि उसे किसीके आने का कुछ पता ही नही चला । पर प्रभावती कबतक इस तरह खडी-खडी उसे देखती रहती। इसलिए वह धीरे से उसके पास बढ़ी और स्थिर-शात भाव से बोली—अरे, कबतक खड़े रहोगे कुमुद ? रात तो कोई कष्ट नही हुआ ?

—कष्ट !—कुमुद के गले से क्षीण आवाज निकली, जिसे प्रभावती ने केवल अनुमान से ही जाना । कुमुद ने अपने सामने एक महीयसी रूपसी नारी को देखा और आँख फाड़कर देखता ही रहा ।

प्रभावती ने उसकी निश्छल आँखों में जो कुछ देखा, उससे वह

अधीर हो उठीं; पर अपनी अधीरता को अपनी मुसकान में छिपाकर बोली—कुमुद, देख क्या रहे हो इस तरह ? मुझे देख रहे हो ? क्या मुझे तुम पहचान नहीं रहे ?

कुमुद ने मात्र सिर हिलाकर अपनी स्वीकृति की सूचना दी।

—फिर—प्रभावती ने सहज भाव से पूछा—तो क्या तुम्हें मुझ से भय हो रहा है ?

इस बार भी सिर हिलाकर ही कुमुद ने स्वीकृति जतलाई ।

प्रभावती अबतक खड़ी थी, पलंग के एक सिरे पर बैठकर बोली—सचमुच तुम्हें भय हो रहा है ? मगर, भय...मुझसे भय खाने की कौन-सी बात है कुमुद ? सच कहो, मै तो तुम्हें बाँधकर रखना नहीं चाहती। जब कहोगे, जहाँ कहोगे--मै वहाँ भेज दूँगी। मैं तुम्हारा अनिष्ट नही चाहती। फिर मुझसे क्यों तुम भय खा रहे हो ?

कुमुद ने प्रभावती की बातों को सुना जरूर,पर कुछ समझा, कुछ नहीं भी समझा, फिर भी उसकी आकृति पर कुछ भोलापन खिंच आया और सहज भाव से वह बोल उठा--वह भी तुम-जैसी थी, मुझे रोक लिया था अपने घर..........

—रोक लिया था अपने घर !—प्रभावती चक्कर में पड़ी, कह क्या रहा है यह ?—रोक लिया था अपने घर....कौन...किसने रोक लिया था—वह जो तुम-जैसी थी . प्रभावती को एक रहस्य-जैसा लगा। वह उत्सुक हुई, कुछ उसकी नारी-मर्यादा पर उसने ठेस लगने का अनुभव किया, पर अपने सारे मनोभावों को दबाकर, ओठों पर एक मुस्कुराहट की रेखा खींचते हुए बोली—वह कौन थी कुमुद ?

--क्या जाने वह कौन थी ।

--मगर थी वह कैसी ?

--देखने में मन को अच्छी लगती थी--कुमुद स्वाभाविक भाव स

बोल गया—बड़ी अच्छी थी, हँसती थी, खूब खिलाती थी, अपने साथ सुलाती थी.......

कुमुद आप-ही-आप रुक गया, फिर कुछ क्षण बाद बोल उठा—हम बाहर जायँगे वहाँ, वह तलैया है न ?

प्रभावती चौंक उठी, पर उसे स्मरण हुआ कि प्रात कृत्य के लिए कुमुद को रोक रखना उचित नहीं हुआ। इसलिए वह पलंग से उठती हुई बोली—तलैया के पास किसी समय जाना, कुमुद ! अभी तो यहीं के शौचालय में निपट लो.. ...

कुमुद ने अपनी ओर से समर्थन में कुछ भी नहीं कहा, पर वह प्रभावती के साथ बाहर आया। प्रभावती ने पारो को बुलाकर कहा—कुमुद को शौचालय दिखला दो और उसके नहाने-धोने का भार तुम पर रहा।

पारो कुमुद को लेकर शौचालय की ओर चल पड़ी।

प्रभावती वहाँ से चलकर अपने कमरे में आई ; पर उस समय भी उसके मस्तिष्क में कुमुद की रहस्यमयी बातें ही चक्कर काट रही थी। वह सोचने लगी कि कुमुद के हृदय से यह भय की भावना किस तरह दूर की जा सकती है, उस सुकुमार हृदय से, जिस पर पूर्व की रहस्यमयी नारी का अज्ञात ममत्व या उस नारी का रोमांचक निष्ठुर व्यवहार, अब भी निर्मल भार बना हुआ है। वह कैसी थी नारी, जिसे बालक के सरल सुकुमार हृदय पर अपने विश्वास की मुहर न लगा पाई ? प्रभावती जाने और कहाँ तक सोचती ही रह जाती; पर सोच न सकी, श्यामा उसके सामने आकर कपड़े का एक छोटा-सा बंडल आगे की ओर बढ़ाती हुई बोली—नरेश बाबू ने दिया है, और कहा है कि नाप वगैरह तो कुछ थी नहीं, छोटे से कसबे में सिले-सिलाए कपड़े भी तो नहीं मिलते, जो-कुछ मिल सका है, वे लेकर आये है।

प्रभावती ने उत्सुकता से बंडल खोलकर देखा—देखा कि जो कपड़े कुमुद के लिए मँगाये गये हैं, उनसे काम तो चल सकता है; पर वे ऐसे नही है जो यहाँ पहने जा सकें। प्रभावती का मन उतर आया, मुख की रेखाएँ कुछ सघन हो उठी, और अस्फुट शब्दों में बोली—बस, ये ही मिले ?

—शहर-बाजार तो कुछ है नही, रानीमाँ!—श्यामा ने परिस्थिति को सँभालते हुए कहा—गँवई गाँव ठहरा! जहाँ जिस चीज की खपत होगी, वही तो मिलेगी। मगर, काम चलाने के लिए क्या बुरा है! शहर तो किसी-न-किसी को जाना ही पड़ता है। नरेश बाबू कह रहे थे कि यदि रानीमाँ चाहेंगी तो फिर शहर से कपड़े, पसंद के लायक, चले आयेंगे।

प्रभावती ने एक बार फिर उन कपड़ों की ओर देखा, फिर वह बोल उठी—ठीक है, देखा जायगा; ले जाओ, इन्हे पारो को दे दो। वह क्या कर रही है, कुमुद स्नानघर में ही होगा... ..

श्यामा ने कपड़े उठाये और बाहर चल पड़ी, पर प्रभावती ने फिर से पुकारा—श्यामा!

—जी, रानीमाँ—श्यामा लौट पड़ी और सामने आकर खड़ी हो रही।

—सुनो श्यामा—प्रभावती बोलकर रुक गई, फिर बोली—कुमुद मुझसे भय खा रहा है। मै नही चाहती कि उसे मैं छेड़ूँ। बच्चा है वह, नादान है! शायद उसके नन्हे-से दिल पर कोई सदमा है। लगता है, वह सताया गया है, और शायद सतानेवाली हम-तुम-जैसी कोई नारी हो सकती है। ऐसी हालत मे, समस्या बड़ी जटिल दीख पड़ती है कि उसका सदमा उसके दिल से कैसे दूर किया जाय।

प्रभावती चुप हो रही। श्यामा सोचने लगी कि बच्चे के दिल को

बहलाना कौन-सा भारी परबत है, जो उठाया नही जा सकता । पर उसे सोचने का अधिक अवकाश न मिला। प्रभावती स्वयं बोल उठी—श्यामा, देखो, मैं तुम्हीपर सारा भार डालना चाहती हूँ उसका, पारो नटखट है,, शैतान है। वह चाहे तो उसका मन खूब बहला सकती है। एक मंजु है, उमर में कुमुद से कुछ बड़ी है; फिर भी कुमुद के साथ वह खुलकर खेल कती है। सिर्फ तुम्हें देखना यह है कि उसके दिमाग पर ऐसी कोई बात जमने न पावे, जिसमें अभिमान भरा हो । जानती हो, बालकों मे एक स्वाभाविक प्रवृत्ति पाई जाती है कि वे समानता को पसंद करते है, समान रहन-सहन में उनके मन को परितोष मिलता है । मुझे लगता है कि असमानता ही एक ऐसा कारण है, जिससे वह हमलोगों के बीच खुल नहीं सकता। मगर उस खोलना होगा, श्यामा ! हाँ, खोलना होगा।

—आपने सच ही कहा है, रानीमाँ !—श्यामा ने स्वाभाविक ढंग से ही कहा—मगर आप इसकेलिए चिंता न करें। कुमुद को आप कुछ ही दिनो में पायँगी कि वह हमलोगों से भिन्न नहीं है।

श्यामा बोलकर बाहर निकल पड़ी। आँगन में ही उसे मंजु से भेंट हो गई। मंजु का मन बड़ा भारी दीख पड़ा। श्यामा ने उससे पूछा—क्यों मंजुबहन, तुम उदास क्यों हो ? कुमुद से भेंट नहीं हुई है क्या ?

—भेंट—मंजु की भवें तन गईं; वह रुखाई के स्वर में बोली—किसको इतनी चिंता पड़ी है कि उसे उलटकर देखे भी ! कुमुद तो आखिर कुमुद है, वह कमल तो है नहीं ! आज कमल होता तो कलकत्ते से रेशमी कपड़ों का अम्बार लग गया होता; मगर यह तो कुमुद है, नहाने के घर में घुसा है तो बाहर निकलने का नाम नहीं लेता ! सुना है, कोई बाजार गया है; पर बाजार में कहाँ अटक गया—कौन उसका हिसाब लेगा !

--ओह, तुम कपड़े की बात कह रही हो न, मंजुबहन ?—श्यामा ने अपने हाथ का बंडल उसके हाथ पर रखते हुए कहा—अटक कैसे सकता है कोई, मंजु बहन ? देखो, जो-कुछ मिल सके. ....

मंजु ने उलट-पलट कर उन कपड़ों को देखा--देखा कि दो कमीज हैं धारीदार, दो नीकर हैं नीले रंग के, दो बनियान है गुलाबी रंग के,एक अंगोछा है लाल जमीन पर नीले-पीले चेक कटे हुए।

मंजु की भवें सीधी से वक्र हुईं। श्यामा ने समझा कि वह जाने अब क्या कह बैठेगी। इसलिए उसके बोलने के पहले ही श्यामा ने कहा—यहाँ तो बाजार है नहीं और कपड़ा की जरूरत सिर पर ! अच्छे दर्जी भी तो नहीं पाये जाते। ट्रंकों में कपड़ो की क्या कमी है मंजुबहन ! अधिक नही–दो-चार दिन ही सही, इनसे काम तो चल ही जाएँगे।

—मै नादान नही हूं श्यामा !--मंजु बोलकर कपड़े लिये हुए स्नान-घर की ओर दौड़ी और पल्ले को आहिस्ते से हटाते हुए हाथ बढ़ाकर बोली--कुसुद, यह रहे कपड़े ! पकड़ो और तुरत पहन कर वाहर आओ। सुनते नही–डुगडुगी की आवाज ! भालू और बंदर की कुश्ती होगी दरवाजे पर ! सुन रहे हो न ?

--हाँ, सुन क्यों नहीं रहा !—भीतर से कुमुद बोला—मगर कपड़े तो जरा पहन लूँ।

५

महल के पिछवाड़े में एक सघन बागीचा था, जो चहारदिवारी से घिरा हुआ था। उसमें बाहर से आने का दरबाजा न था, इसलिए उसमें किसी बाहरी आदमी का प्रवेश संभव नही था। दीवारें इतनी ऊँची थीं कि उन्हें कोई छलाग मारकर भी पार नहीं कर सकता था। उन दीवारों के सिरे पर काँच के सघन टुकड़े गथे थे, जिनपर कोई पॉव धरने की हिम्मत तक नहीं कर सकता था। इस तरह के सुरक्षित बागीचे में तरह-तरह के आम, लीची, जामुन, अमरुद, शरीफे, केले, बेर और इसी तरह के अनेक फलों के सघन वृक्ष थे—जो दूर-दूर देशों से, पसंद के अनुसार, मँगवाकर लगाये गये थे। दीवारों की चारो तरफ नारियल, सुपारी और साबूदाने के पेड़ थे, जिनके सुडौल लंबे, लचकीले धड़ों पर हरे-कचूर पत्ते, हवा मे सौ-सौ बल खाते हुए दीख पड़ते थे। उस बागीचे की विशेषता थी कि हर ऋतु मे, हर मास मे, दो-चार तरह के पके मीठे फल जरूर मिल जाते थे।

बागीचा क्या था, राजघराने के लोगों केलिए आनंद-निकेतन था! महल के भीतर से ही उसमें प्रवेश का पथ था। जब कभी मन बहलाने

की जरूरत महसूस हुई, बागीचे मे चले गये–और नही तो झूले पर दो पेंग दे आये, अथवा लुका-छिपी ही खेली, या पेड़ों पर चढकर फलों को कुतर-कुतर कर चखा ।

और वह बागीचा ही कुमुद के मन-बहलाने का सफल कारण सिद्ध हुआ। महल के भीतर जो कुमुद मुर्झाया रहता था, वही जब बागीचे में जा पहुँचता, तब उसकी मानसिक चेतना सजग हो उठती । वहाँ तो उसकेलिए रोक-टोक थी नहीं। वह जिस तरह अपने छोटे-से जीवन में यायावर–जैसा घूमने में एक सुख का अनुभव कर चुका था, उसी तरह जब वह बागीचे में जा पहुँचता, तब उसे लगता कि जिस आनंद केलिए उसका मन छटपटा रहा था, वह आनंद उसे यहाँ सहज-प्राप्य है। फल यह होता कि वह अवसर की तलाश में रहने लगा और ज्योंही उसे वह अवसर मिल जाता, त्योंही उस बागीचे में हाजिर। जैसे बागीचे के भ्रमण के प्रलोभन में ही वह वहाँ अटका पड़ा हो।

दिन की दुपहरी में, जब घरेलू काम-धंधों से अवकाश मिलता और जब प्रभावती पलंग पर आराम करने को पड़ी होती, पारू, श्यामा, गौरी, चंपी और अक्सर मंजु भी बागीचे में ही पहुँचतीं। सब-की-सब हम-उमर थीं--दो-चार साल की ऊँची-नीची--राजघराने की दासियों में जो एक तरह की ठसक होती है, उसमें सब-की-सब उन्नीस नहीं–बीस तो जरूर थी। आराम की जिन्दगी, न खाने-पीने का दुख, न ओढ़ने-पहनने की कसक, और उस अवस्था में, जब मन कुलाचें भरता है, तन किसीको छूने की ओर लपकता है और हृदय में कुछ पीर महसूस होती है; पर वह पीर क्या है, जिसे समझने की कोई आवश्यकता भी नहीं समझी जाती। वे सभी मिलकर वहाँ धमाचौकड़ी मचातीं, झूलों पर पेंगें भरी जातीं, रस से सने गीत गाये जाते—हँसी और अट्टहास का कल्लोल

मचा रहता ! स्वर्ग का सुख यदि पृथिवी पर कही दीख पड़ता था, तो मानो वह यही बागीचा था।

और उस बागीचे में जब झूले पर पेंगें भरी जा रही थी, और उन पेंगों के साथ लोकगीत की एक कड़ी रह-रह कर मन में उल्लास भर रही थी, तब कुमुद–जैसे बालक का मन, जिसने घुमंतू जीवन के उल्लास का आस्वादन अनायास ही उपलब्ध किया था किसी दिन, किस तरह एकांत शात पड़ा रह सकता था ? वह उस ओर बढ़ चला, पर वह ठिठककर एक सघन वृक्ष की आड़ में खड़े हो, अपने ओठों-ओठों में, उस कड़ी को गुनगुनाने लगा। वह साधु-बैरागियों के उस समाज में रह चुका था, जिसने जीवन को गीतो में ही बाँधकर आकाश और पृथिवी के झूले में एकरस कर डाला था ! फिर बालक के गले का मधुर स्वर !

और उस मधुर स्वर की लहरी हवा से छनकर, प्रतिध्वनि के रूप मे, उन झूलों के आसपास मडराने लगी, तब वह कानों के द्वारा भीतर पैठकर उल्लास-स्थल को गुदगुदाने लगी, पर उस गुदगुदी के भीतर-भीतर भी भय का संचार भी हुए विना न रहा—कदाचित् किसी असभ्य ने बागीचे के अंदर प्रविष्टकर अशिष्ट आचरण दिखाने की धृष्टता तो नहीं की है !–अंतःपुर की सेविकाएँ होकर इस धृष्टता को किस तरह क्षम्य समझ सकती थी ! पर वह भय अभी अचेतन मन पर तिर रहा था, उसने अभी तक निश्चित स्तर का स्पर्श तक नहीं किया था। इसलिए पेंगों के साथ गान चल रहे थे सहज गति में, व्यवधान के विना ही।

पर, रह-रहकर आनेवाली प्रतिध्वनि जब अचेतन से सचेतन स्तर पर आ लगी, तब पारो की दुष्टता का रूप उग्र हो उठा। वह अचानक झूला रोककर कूदी और आनेवाली उस प्रतिध्वनि की दिशा की ओर लपक पड़ी। उसका झूला रोककर कूदना और लपक पड़ना इतना त्वरित हुआ कि किसीने उस ओर जैसे लक्ष्य ही न किया हो ! पर जिस

त्वरित गति में चलकर प्रतिध्वनि-निर्माता को उसने जा पकड़ा, उस गति की चपलता में उसे अपने साथ लाकर जब उसने छोड़े हुए झूले पर उसे बलपूर्वक उठाकर बैठाते हुए, किंचित् रोष के स्वर में कहा—सिर्फ कड़ी उड़ाना ही जानते हो या कुछ अपना भी ? तब पारो का इस तरह से कुमुद को पकड़ लाना और झूले पर उसे बिठलाकर कड़ी उड़ाने या अपना गीत सुनाने की बात कहना—सभी केलिए रहस्य बनकर न रह सका। सभीकी दृष्टि कुमुद पर पड़ी। उन सभीके बीच उस दिन मंजु भी वहाँ मौजूद थी। मंजु अपने झूले से उतरकर उसके सामने आई और उसके झूले की रस्सी पकड़कर बोली—पारो ठीक ही तो पूछ रही है कुमुद ! यहाँ तो सभी अपने हैं, तुम लजाकर क्यों पेड़ की आड़ में छिपे थे ?

—पेड़ की आड़ मे छिपा ही कहाँ रहा बेचारा !—चंपी ने अपनी मुस्कुराहट रोककर कहा—पारो की नजर से कोई बच सकता है कैसे ? क्यों, पारो, ठीक है न !

पारो और चंपी हम-उमर थी, इसलिए इन दोनों में जितना ही सौहार्द था, उतनी ही नोकझोंक भी ! दोनो वय में ही नहीं, स्वभाव में, सौंदर्य में, आकार-प्रकार में भी सम थी। पर वह सम जब विषम की सीमा का अतिक्रमण कर बैठता, तब माधुर्य की वहाँ सृष्टि हो जाती। इसलिए जो उन दोनों से पूर्णतः परिचित थे, वे उन्हें विषम अवस्था पर ही खड़ी देखना पसंद करते थे। इसलिए चंपी का यह कहना कि 'क्यों पारो ठीक है न'—सभीके कानों में रस-सृष्टि कर गया। तभी पारो ने उसके उत्तर में कहा—तुम्हारी फिकर जो रहती है चंपी, मैं न ध्यान रखूँ तो क्या तुम......

सभी ठहाका मारकर हँस पड़ीं; पर उसी हँसी के बीच चंपी कुछ कहना ही चाहती थी कि मंजु ने कहा—चुप रह चंपी, पारो-जैसी

अकलमंद होती, तो फिर क्या कहना ! मगर, कुमुद, तुम कुछ भी न बोलोगे ?

कुमुद के ओठ हिले और उसने मंजु की ओर देखा।

—देख क्या रहे हो, बोलो ?

—क्या बोलूँ ?—कुमुद ने सिर झुका लिया।

—कुमुद को यह भी नही मालूम कि वह क्या बोले !—इस बार श्यामा ने अपने झूले पर बैठे अपने लंबे, हवा में तिरते, केशों को सँभालते हुए कहा—कुमुद, यहाँ के गाने तो तुम सुन चुके और हम-सब को यह पता चल गया कि तुम्हारा गला मधुर और मँजा हुआ है। तुम जरूर गाते हो। क्यों तुम गाते नही हो ?

—गाता था कभी—लजाते हुए कुमुद बोला—पर अब तो नही।

—जो कभी गाता था, वह अब भी गा सकता है—पारो ने कहकर कुमुद की ओर ताका—मै समझती हूँ, चंपी के गले के साथ कुमुद का गला खूब मेल खायगा।

—नही ?—इस बार मंजु बोली—पुरुष के गले से स्त्री के गले का मेल, यह क्या कह रही हो पारो ! किसीके गले से नहीं—यहाँ तक कि तुम्हारे गले के साथ भी नही !

मंजु फिर कुमुद की ओर ताकते हुए बोली—अच्छा, कुमुद, तुमने झूले पर कभी पेंग भरी है ?

—मुझे याद नही—शायद कभी नही।

—तो झूलना पसंद करोगे ?

—पसंद !—कुमुद कुछ अनिश्चित भाव से बोला। मगर पारो ताड़ गई कि कुमुद संकोच और दुविधे के बीच डोल रहा है। इसलिए वह सजग हो उसी झूले पर उछलकर बैठते हुए एक पेंग भरकर बोली—

डरो नहीं—डरो नहीं कुमुद, मै जो हूँ। एक हाथ से रस्सी थामे रहो—चाहो तो दूसरे हाथ से मुझे भी पकड़ सकते हो ...

कुमुद मुँह से कुछ बोल न सका; पर उसने बायें हाथ से रस्सी थामी और दायें को पारो की पीठ से अछूता रख दूसरी रस्सी तक पहुँचाया; पर वह स्पर्शमात्र ही कर सका, पकड़ की पहुँच तक न आ सका।

फिर यथास्थान सभी बैठ गईं और झूले पर चलने लगीं पेंगें! इसबार गान की दूसरी कड़ी बदली—पहले से और भी सरस, और भी मधुर....

पेंगों का दौर क्रमशः बढ़ चला और उस दौर के साथ कड़ी की लहर हवा में तिरने लगी....

अनभ्यस्त कुमुद उन पेंगों मे भयत्रस्त हो चुका और अनजान मे ही उसकी दोनों भुजाएँ पारो मे सम्पुटित हो गईं...

गीत की कड़ी के साथ झूलों की पेंगें—फिर उन पेंगों के साथ झूलनेवालियों के तरंगायित हृदय का संवेदन...

कुमुद जो अबतक बंद था, उस दिन के झूलों ने उसे बतलाया कि जिसके आस्वादन से अबतक वंचित था, वह उसके जीवन केलिए काम्य हो सकता है. वह त्याज्य नहीं, गृहणीय है, पर ग्रहण और त्याग कुमुद केलिए सोचने-समझने का विषय नहीं था। वह तो उस हवा के साथ, जिसमें कुछ क्षण पहले उसके साँस लेने में अवरोध हो रहा था, अब बहते जाने में एकरसता का अनुभव करने लगा। तब वह हर पेंग के साथ अपने आनंद का केन्द्र विस्तृत हुआ-सा पाने लगा और उस परिपूर्ण आनंद के भीतर झूलों के गीत की कड़ी के साथ उसका स्वर-संयोग, इस तरह आप-से-आप जुट जाने लगा कि उसे उसका स्मरण तक नहीं रह गया।

जैसे लगा कि वह स्वर-संयोग मानो प्रवहमान काल से आ रहा हो ...

और उस झूले का आनंद न केवल कुमुद के लिए ही सीमित था, वरन् उन सबकेलिए भी बिलक्षण था, जो पूर्व से अभ्यस्त थी, पर अभ्यस्त आनंद में इतनी तीव्रता और तन्मयता का क्या कारण हो सकता है, इसका अनुभव तब हुआ, जब अचानक मेघों की गडगडाहट के साथ नारिकंठ का स्वर टूट जाने पर भी पुरुष-कंठ की कडी उस समय तक हवा मे तिर रही थी

समय का परिवर्त्तन उन्ही कुछ घंटो में किस तरह संभव हो सका— किसी ने न जाना। जहाँ चढ़ती धूप थी, वहाँ रूई के फाहों-से उड़ते-फिरते बादल-खंड एकत्र होने लगे और वे इकत्रित खंड, एकाकार होकर, इतने सघन हो उठे कि उनसे सारा आकाश-मण्डल परिव्यात हो उठा, हवा में नमी आई—और उसकी गति में तीव्रता! झूले के आनंद में, इस वातावरण का भी, अज्ञात रूप में, कुछ कम हाथ न रहा था, पर गड़गड़ाहट ने उस आनंद मे अचानक व्याघात डाला। झूले रुक गये, झूलों के साथ गीत की कड़ी रुक गई—फिर भी दो क्षण केलिए उस कड़ी के पुरुषकंठ की स्वर-लहरी हवा में तिरती रही ...

और उस स्वर-लहरी के साथ उस गायक की तन्मयता मे आबद्ध हुई पारो ने ज्योंही अनुभव किया कि क्यों उसे झूले के आनंद में उल्लास का भाग अधिक रहा है, त्योंही अन्य सहेलियो का ध्यान बरबस उस झूले की ओर गया, जिसपर कुमुद पारो को अपनी दोनों भुजाओं मे बाँध पड़ा है, और उसके गले के गीत की कड़ी अब भी मुखर है।

पर सब-की-सब बागीचे में पड़ी हैं, आकाश के सघन बादलों की गड़गड़ाहट, हवा में नमी—ऐसी कि अब बूँदें गिरें! श्यामा ने सबसे पहले अनुभव किया कि रानीमाँ जरूर प्रतीक्षा कर रही होंगी! अब तो

यों रुका नहीं जा सकता। इसलिए वह झूले से उतरकर कुमुद को ओर बढते हुए बोली—बड़ा आनंद मिला कुमुद ! तुम्हारा स्वर इतना मीठा होगा—हमें नही मालूम, क्यों नही, पारो ?

अबतक कुमुद जैसे तंद्राच्छन्न अवस्था में पड़ा था, पर ज्योंही उसने सुना कि श्यामा उससे ही पूछ रही है—'तुम्हारा स्वर इतना मीठा होगा, हमें नहीं मालूम', त्योंही उसे बोध हुआ कि श्यामा उसके प्रति ही कह रही है। और यह सुनते ही उसकी दोनों भुजाएँ आपसे-आप शिथिल हो पडी और तुरत वह कुछ सोच नही सका कि उत्तर में अब क्या कहा जाय। पर, पारो की आकृति पर जाने क्यों लालिमा छा गई। वह लालिमा लज्जा का थी या व्रीड़ा की—इसका उसे भी पता न चला; पर दुष्ट-स्वभावा पारो झूले से उतर कर बोली—मिठास तो स्वर में होनी ही चाहिए श्यामा। देखा नही, जब एकाकार हो पड़ा था वह, तब गुण का असर तो कुछ-न-कुछ होना ही चाहिए !

—चल हट !—श्यामा कुछ रोप से, कुछ चपल स्नेह से सन कर बोली—गुण का असर डाल रही थी डाइन ! फिर जरा रुककर कुमुद से बोली—हाँ रे कुमुद, तुम्ही तो जरा बताओ, पारो का गला अच्छा है या तुम्हारा ? सच-सच बताओ तो देखूँ !

श्यामा ने कुमुद की ओर ताका। कुमुद के ओठ हिले और वह अनायास ही बोल उठा—मुझे तो वह कड़ी बेहद अच्छी लगी !

पारो थिरक उठी। जैसे वह बाल-बाल बच गई हो—और स्वयं वह बच जाने के उल्लास में बोली—कुमुद को भुलावे में डाल नहीं सकती श्यामा—मै ठोक कह रही हूँ। अब और ज्यादा छान-बीन करोगी, तो तुम स्वयं पकड़ी जाओगी। आज मुझे मालूम हुआ कि कुमुद न सिर्फ गाना ही जानता है, गान की परख करना भो जान गया है। क्या तुम

जानती नहीं कि कुमुद साधु-बैरागियों के बीच रहकर पक्का गायक हो उठा है ?

पर, पारो की बात मुँह में ही रह गई, जब फिर से आकाश के फटने का शब्द कानों में जाकर वज्र की चोट करने–जैसा लगा और उसी भयंकर गर्जन-तर्जन के साथ पानी की बौछार भी झड़ने लगी ।

वे सब-की-सब महल की ओर दौड़ पड़ीं और उस दौड़ के भीतर किसीको पता नहीं चला कि पारो कुमुद का हाथ पकड़कर पीछे-पीछे दौड़ चली है ।

महल के भीतर आते-आते किसीके कपड़े साबित न बचे । पारो अपने कमरे में आकर खड़ी हो अपने केशों से पानी पोंछते हुए बोली—तुम्हारे कपड़े भी तो भीज गये कुमुद ! वर्षा का बेमौसम पानी ! कह सर्दी न लग जाय ! रानीमाँ कहीं जान गईं कि तुम भी हमलोगों के साथ भीज गये हो, तो वे जमीन-आसमान को एक कर देंगी ! नहीं क्यों ?

—जमीन-आसमान को एक कर देंगी—कुमुद ने उसके कथन को बिलकुल नहीं समझा, इसलिए उसने आश्चर्य से कहा–सो कैसे ? जमीन को आसमान से एककर देंगी ?

—हाँ जी, हाँ !—पारो की आँखें मचल उठीं, कुछ रोष में आकर बोली—साधु-बैरागियों के साथ रहा; पर जमीन-आसमान को एक करना भी नहीं जाना ! वाह, खूब रहा साधु-बैरागियों के साथ !

कुमुद को जाने क्यों पारो की झुँझलाहट-भरी आकृति जितनी अच्छी लगी, उतनी ही उसकी रोष-सनी बातें भी । इसलिए वह हँसकर बोल उठा—तो क्या साधु-बैरागी जमीन-आसमान को एक करते हैं ? अगर करते होते तो मैं जरूर देखता; पर वैसा कभी तो नहीं देखा ?

इस बार पारो भी हँस पड़ी । वह उसके समीप आकर उसकी ठुड्ढी हिलाते हुए बोली—खैर, वहाँ न देखा हो तो यहाँ देखना ! लो, मैं तुम्हें

इसी तरह भींजे हुए रानीमाँ के पास ले चलती हूँ ! तुम खुद ही देख लेना कि किस तरह जमीन-आस्मान को वे एककर देती हैं।

—नहीं-नही, पारो—कुमुद रानीमाँ का नाम सुनते ही भीतर-भीतर काँप उठा और काँपते हुए स्वर में ही कहा—वे जरूर बिगड़ेंगी मुझपर ! उन्होंने मुझे वहाँ जाने न कहा था ! आज तो उन्होंने मुझसे बहुत-बहुत सी तसवीर बनाने को कहा था ! कहा था कि जो बहुत-बहुत-सी तसवीरें तुम्हे दे रही हूँ, उन सबको कागज पर उतरना, कमरे में बैठे-बठे; पर मुझसे वैसा हुआ कहाँ ? मैंने देखा कि वे सो गई है, तब मैं कमरे से बाहर निकला, देखा, कोई नहीं है ! मै नीचे उतरा, आँगन में चिलचिलाती धूप थी। मुझे लगा कि सब-की-सब बागीचे चली गई हैं। मै आखिर क्या करता, मैं भी चल पड़ा ..

कुमुद की आँखें आँसुओं से गीली हो गईं। पारो से यह छिपा न रह सका। उसने समझा कि रानीमाँ की चर्चा अभी उसे नहीं करनी थी ! कुमुद को अपने आप के बीच अपना बनाना ही होगा—रानीमाँ का यही संकल्प है, एक क्षण केलिए भी कुमुद को दुखी करना या उदासीनता में डालना ठीक न होगा—उसे बहलाकर रखना जो है ! इसलिए वह स्वयं प्रसंग बदलते हुए बोली—अच्छा, ठहरो, पहले मैं तुम्हारे सूखे कपड़ों को तो ले लाऊँ।

पारो जरा रुककर सोचती रही, फिर बरामदे से ही दूसरे कमरे की ओर दौड़ पड़ी।

· ६

प्रभावती का जीवन, कमल की मृत्यु के बाद. जिस गति से चल रहा था, उसमें कुमुद के आगमन से व्यवधान उपस्थित हुआ। वह जिस प्रकार अपनेआप को कर्म-कोलाहल में तल्लीन रखने का बराबर प्रयास करती रही, और अपने उस प्रयास में सफल भी रही, उसी प्रकार कुमुद के भीतर छिपे हुए, आँखों से ओट पड़े, अपने एकमात्र पुत्र कमल की देह-यष्टि के साथ-साथ उसके विचार-साम्य की बात पर उसकी अंतरात्मा में एक प्रचंड झंझा बह चली, जिससे उसके सुदृढ पग डगमगा उठे, हृदय में रह-रहकर प्रसुप्त आपत्य-स्नेह का निर्झर फूट पड़ा। वह सोचने लगी कि कुमुद को किस तरह वह अपना बनाकर रख सकेगी

प्रभावती ने एक बार ही नहीं, बार-बार सोचकर देखा और जितनी बार देखा, उतनी बार कुमुद को देखते रहने की आकांक्षा प्रबल से प्रबलतर ही होती गई। पर कुमुद से उसे मालूम हो चुका है कि वह किसी युवती सुन्दरी के यहाँ पहले भी रह चुका है, जो उसे गोद लेकर अपने हृदय की रिक्तता का भर लेना चाहती थी, पर जिस दिन उसके घर नवजात शिशु पुत्र का आगमन हुआ, उस दिन से वह दूध की मक्खी बना। क्यों बना,

इसका उत्तर कुमुद के न देने पर भी प्रभावती से वह अज्ञात न रह सका। बालक कुमुद जिस परिस्थिति की भयंकरता के बीच निश्चित स्थान से अनिश्चित पथ पर, जिस दिन, बढ चला होगा, उस दिन की कल्पनामात्र से उस प्रभावती का रोम-रोम लज्जा से सिहर उठा! क्या वह अमानुषिक हृदय-हीनता नारी-हृदय की कलुषता की प्रतीक नही?

प्रभावती इससे अधिक कुमुद के विषय में जानती नहीं, पर जानने का उत्साह भी पूर्ववत् नही रह गया है। रह-रहकर उसका मन आशंका से आच्छन्न हो उठता है और वह सोचने लगती है कि उसका बाल्य जीवन किन-किन विषाक्त आवरणों से आच्छादित रहा होगा, उस आच्छादन के भीतर उसके हृदय के आलोड़न का परिणाम उसके मन को झकझोर रहा होगा—उसकी कल्पना से प्रभावती की आकृति की रेखाएँ संकुल हो उठी, उसका हृदय अवसाद से भर उठा, वह शून्य दृष्टि से वातायन के बाहर देखने लगी . ..

मगर वातायन के बाहर जो कुछ वह देख रही है, वह कुछ उसके लिए नया नही है—दोपहरी की चिलचिलाती धूप से आच्छन्न कँकड़ीली ऊँची-नीची जमीन पर उगे टिटभाँट, बघंडी, आक और वनतुलसी के छोटे-बड़े पौदे, कही सघन-कही विरल, अपने नीरस जीवन की मानो साँस गिनते हुए-से दीख रहे हैं। उन पौदों के बीच सेमल के जहाँ-जहाँ पेड़ है, जिनके लाल-लाल फूल, उस चिलचिलाती धूप में, जान पड़ते हैं कि प्रकृति ने मानो अँगारों की होली खेली है! कहींसे कोई आवाज उसे सुन नही पड़ रही है; पर उसे लगता है कि धूप की गर्मी के कारण, थम रही हवा का अवरुद्ध निश्वास, दम तोड़ रहे रोगी के निश्वास जैसा, जाने किस तरह उसके भीतर घुसकर उसके मस्तिष्क के सूक्ष्म तंतुओं को छू रहा है..... ..

और उस वातावरण में प्रभावती की आँखों की दृष्टि जिस सीमा पर पहुँचकर रुक गई है, वहाँ वह पाती है कि एक छोटा-सा बच्चा विक्षिप्त

जैसा, कभी इधर, कभी उधर देखता हुआ, सरपट भागा जा रहा है, उसकी कमीज टूक-टूक हो गई है, कमर में एक फटाचिटा नीकर झूल रहा है, जिससे उसकी जाँघ की गोराई तक दीख रही है। वह बढ़ तो रहा है; पर बढ नहीं पाता, वही गिर पड़ता है। शायद दो-एक काँटे अपनी सुकमार उँगलियों से निकालकर फिर सरपट दौड़ लगाता है ...... तभी वह देख पाती है कि एक ओर से दो शियार आपस में एक दूसरे को दाँतों से प्रहार कर, खें-खें करते हुए, भाग निकलते हैं, सेमल के एक पेड़ से डर कौआ काँव-काँव कर उठता है; पर वह बच्चा दौड़ रहा है, फिर भी वह दौड़ नही पाता, जब वह सामने देखता है कि एक अरनाभैंसा चिग्घाड़ मारता हुआ, प्यास से व्याकुल हो, पानी की तलाश में, दौड़ता हुआ आ रहा है। वह घबराकर वही गिर पड़ता है ....

पर वातायन से यह-कुछ देखना प्रभावती के स्वप्नलोक की बातें हैं। वह नीद में चौक उठती है! उसका हृदय उस बालक केलिए इतना अधीर हो उठता है कि उसे अपनेआप का भी बोध नही रह जाता। वह बिछावन से कूदकर उस कमरे के दरवाजे पर आती है। तब उसे स्मरण हो आता है कि वह तो तंद्रिल अवस्था मे सोई थी। उसने जो कुछ देखा है, वह इस ससार की नही, स्वप्नलोक की घटना है!

पर वह बालक तो और कोई नही—कुसुद ही तो है। प्रभावती वातायान के पास, बाहर देखती हुई, सोचने लगती है—और तब वह पाती है कि आकाश बादलों से आच्छादित हो चुका है। रह-रहकर मेघों के टकराने की गड़गड़ाहट हो उठती है। हवा में तीव्रता आ गई है और वातावरण में तरलता ......और देखते-न-देखते पानी की बौछार झड़ने लगती है। वह वातायन से हटकर, तेजी के साथ बाहर बरामदे में आकर, नीचे देखने लगती है और तभी उसे स्मरण हो आता है कि कुमुद को चित्रकारी का काम सौपा गया था। वह अपने कमरे में बैठकर

अपना काम कर रहा होगा। वह पुकारती हुई उसके कमरे के पास पहुँचकर देखती है कि कमरा खुला ह और कमरे की टेबुल पर एक ओर चित्र की पुस्तक खुली हुई पड़ी है और उसीके पास रेखाकन की कापी और पेंसिल अव्यवस्थित रूप में पड़ी है ....

प्रभावती को लगता है कि कुमुद आँखें बचाकर भाग निकला है, पर भागकर वह गया कहाँ ? फिर भी उसे समझने में देर नहीं लगती। वह समझ जाती है कि वह जरूर बागीचा गया होगा। हाँ, वह बागीचा ही गया है, जहाँ सब-की-सब लड़कियाँ इकट्ठी होकर धमाचौकड़ी मचाया करती हैं... ...

प्रभावतो को पहले खीझ होती है, अन्य किसीपर नही, अपने आप पर, और वह इसलिए कि वह एक अपरिचित बालक को लेकर इतनी परीशान क्यों रहा करती है ? उस बालक को अपनी जगह, जहाँ वह चाहे, क्यों नही पहुँचा देती ? उस बालक के प्रति उसे मोह क्यों हो ? क्यों वह उसकेलिए रात-दिन इस तरह बेचैन रहा करे ? जो अपना नहीं है, उसे अपना समझना पागलपन नहीं, तो और क्या है ? क्या उसके लिए, जो अपने जीवन की रंगीनियों से ऊपर उठकर धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों में अपने आप को उत्सर्ग करने का स्वप्न देख चुकी है, यह अशोमन नहीं कि व्यक्ति के पीछे समष्टि को तिलाजली दे दे !

व्यक्ति और समष्टि !—प्रभावती यहाँ आकर उलझन में पड़ जाती है। उसके हृदय को लगता है कि उसके चिंतन में कहींसे व्याघात आ पहुँचा है ! व्याघात ? वह फिर नये सिरे से सोचने लगती है कि समष्टि है क्या पदार्थ ? एक-एक व्यक्ति को एकत्रकर देने पर ही तो समष्टि बनती है ! फिर व्यक्ति को छोड़कर समष्टि की ओर दौड़ने का क्या अर्थ ? व्यक्ति यदि स्वयं अपने आप बन जाय, तो समष्टि स्वयं बनी-बनाई तैयार मिलेगी ! व्यष्टि का दूषण ही तो समष्टि का विष बन

जाता है ? नही, वह नहीं चाहती कि उसके द्वारा विष का सृजन हो ! यदि ऐसा ही हुआ तो प्रभावती का न होना ही अच्छा ! प्रभावती है और हव रहेगी—और तब यह भी निश्चित है कि व्यक्ति बनकर रहेगा और वह इसलिए कि समष्टि की पुष्टि, उसका विकास और श्रेय व्यक्ति के प्रेम के आवरण में ही निहित है · ···

पर यह क्या, सब-की-सब कहाँ से भागती-भींजती, सहमती और सिहरती हुई उसके सामने आ खड़ी हैं ! उसकी चिंतन-धारा अवरुद्ध हो जाती है । जो गुप्त था, वह उसके मस्तिष्क से हट जाता है, और जिनका उसे स्मरण तक नही, वे सब-की-सब अयाचित उपस्थित !

—ओह, कहाँसे दौड़ी आ रही है—भीजती हुई ?—प्रभावती ने सघन प्रत्येक पर एक सदय दृष्टि डाली, पर उसके गालों की लालिमा और भी सघन हो उठी, नीलाभ नेत्रों के कोर पर किंचित् रोष प्रतिफलित हो उठा। वह बोलकर कुछ क्षण चुप हो रही। फिर उन सबकी ओर एकएक कर दृष्टिपात करते हुए बोल उठी—मगर, यह तो बताओ कि, कुमुद है कहाँ ?

कुछ ही क्षणों से पानी का बौछार बढ चला है। लगता है, आज छोड़कर कल बरसेगा ही नही ! बादल लटक गये है, हवा सन-सन बह रही है ! प्रभावती को लगा कि अब वह बरामदे पर, नमी के कारण, रुकी नहीं रह सकती । पर जिनके कपड़े भीग गये है, उनपर क्या बीत रही होगी। जो अचानक उनके सामने मुजरिम की हालत में आ खड़ी हुई हैं, उन्हें न तो वहाँ से टलते बनता है और न कुछ कहते !

प्रभावती स्वभाव से ही दयालु है। वह समझ रही है कि भय-विह्वलता ही एक ऐसा कारण है, जिससे उसे किसी ओर से उत्तर नहीं मिल रहा है । पर, उसे उत्तर मिलता है, और वह मिलता है । मंजु की ओर से

वह कहती है—कुमुद भी वहीं था माँ ! आ गया है, शायद पारो के साथ है वह !

और उसी समय पारो भी बरामदे पर दौड़ती हुई दीख पड़ती है। प्रभावती उसे देखकर कहती है—कुमुद को कहाँ छोड़ आई पारो ?

—सीढ़ी के नीचे खड़ा है रानीमाँ—पारो भयभीत स्वर में कहती है—भीज गया है न ! उसीकेलिए ही तो आई हूँ ! उसकी कमीज चाहिए, नीकर चाहिए, बनियान चाहिए—अगर कोट मिल गया तो वह भी चाहिए। पारो बोलकर कुछ क्षण चुप हो रही, फिर बोली—वह तो किसी दूसरे के सामने कपड़े पहनेगा नहीं, इसीलिए तो मुझे उसके कपड़े चाहिए।

इस बार प्रभावती हँस पड़ी और हँसते हुए ही बोली—हाँ, मैं सब समझती हूँ, पारो, सब समझती हूँ ! कुमुद तुमसे हिलमिल-सा गया है न !

—हाँ, बात भी सही है, माँ—मंजु ने अपनी टिप्पणी जड़ी—आज तो मैं ही नहीं, सभी जान गईं कि कुमुद अब कहीं नहीं जा सकता—भागना चाहेगा भी, तो वह भाग नहीं सकता ! मंजु कहकर माँ की ओर देखती रही, फिर वह बोली—जानती हो माँ, पारो के सुर में कुमुद का सुर कितना फिट बैठता है। तुम सुनोगी तो बड़ा खुश होगी।

—तो क्या कुमुद गाता भी है ?—प्रभावती ने मंजु से पूछा।

—गाता है ! यह क्या कह रही हो माँ—मंजु ने बड़े उल्लास में माँ की आँखों में अपनी आँखें डालते हुए कहा—वह गाता ही नहीं, लगता है, वह गान विद्या का गायक ही नहीं—पारखी भी है वह ! जरूर उसने साधु-बैरागियों के साथ सीखा है यह सब।

नमी के कारण प्रभावती को सिहरन-जैसा बोध हुआ। तभी उसने उन सबसे कहा—खड़ी-खड़ी सुन क्या रही हो तुम सब ? कपड़े, जाकर, बदल

डालो ! आज वर्षा थमेगी नही ! अंधियाला घिर उठा हैं। कपड़े बदल कर अपना-अपना काम देखो।

कुछ क्षण रुक कर फिर वह पारो की ओर आँख उठाकर देखते हुए बोली—मैं अपने कमरे में जाकर बैठती हूँ, तुम कुमुद को वहीं लिवाते आना ! हाँ, और सुनो, उसके कपड़े तुम सँभाल लो—और देखो, सूखे कपड़े पहन लेने के बाद तुम उसे पुचकारकर लिवाती आओ।

—आ रही हूँ रानीमाँ, लीजिए—मै अभी आ चली !

पारो वहाँ से दौड पड़ी। उसके बाद सब-की-सब चल पड़ी। प्रभावती ज्यो-की-त्यों वही खड़ी हो रही—उत्सुक प्रतीक्षा में ! क्योंकि पारो कह गई है—जरूर लेकर आऊँगी—अभी-अभी आ चली, रानीमाँ !

प्रभावती उत्कंठित नेत्रों से पारो के पथ की ओर निहारने लगी।

७.

मंजु का अनुमान कुछ गलत नहीं था। पारो के मन के साथ कुमुद के मन का मेल किस सतह पर आकर जुटा, इसका जवाब न पारो दे सकती है और न वह कुमुद से पूछने पर ही मिलेगा। पर, जो बात सबकी नजरों पर सत्य होकर उतरी, उसे कोई इनकार भी कैसे कर सकता है? शायद पारो भी नहीं कर सकती, कुमुद भी नहीं कर सकता।

पारो, जैसा कि कहा जा चुका है–दुष्ट है, नटखट है, शरारत करना चाहती है, दूसरों को बनाती रहती है, अपना कम सुनाती, मगर दूसरों की अधिक सुनती है। वह जब हँसती है, तब उसका हँसना जल्दी रुकना ही नहीं जानता। काम करती है तो कमर कसकर लगी रह जाती है। जो कुछ करती-धरती है, वह साधारण स्तर पर रहकर नहीं करती—सच तो यह कि वह साधारण होकर रह नहीं सकती—वह असाधारण है और असाधारण होकर रहना चाहती है। पर असाधारण वह क्यों है, स्वयं वह नहीं जानती, फिर भी इतना अवश्य उसे लगता है कि असाधारणता में वह अपने आप को सँभालकर जिंदा रख सकती है, जो साधारण में रहकर उससे संभव नहीं हो सकता।

पारो के वंश-परिचय का यहाँ प्रयोजन नही; पर वह भी अपने जीवन में अनाथिनी रही है, पिता का मुँह देखने का सौभाग्य उस अनाथिनी को नही मिला, माता का स्नेह उसे मिला था; पर उस स्नेह के साथ उत्पीड़न की मात्रा इतनी अधिक थी कि वह स्नेह धूमिल हो पडा और जिसदिन उसकी माँ ने सदा केलिए दम तोड़ डाला, उस दिन वह विषाद के इतने अतल तल मे डूब-सी गई थी कि उसके मुँह से रोने का एक शब्द तक न निकला। वह अनाथिनी बनकर कहाँ रहेगी, कौन उसे खिला-पिला कर आवश्यक कपड़ो से उसकी लज्जा को आच्छादित रख सकेगा—उसे मानो इन सारे प्रश्नों की ओर कभी ध्यान ही नहीं गया। पर, संसार में जिसे जीना है, उसे कोई-न-कोई सहायक मिल ही जाता है! पारो मे चाहे कुछ न भी हो; पर उसके भीतर कुछ-न कुछ ऐसी वस्तु छिपी हुई अवश्य है, जो सदैव उसकी सहकारिणी सिद्ध हुई है·······

आज कुमुद नौ-दस साल का बालक है। पारो भी इसी आस-पास की उम्र लेकर, अनाथिनी के रूप में, आश्रय की झोली लेकर रानी प्रभावती देवी की सेवामें जब आ खड़ी हुई, तब उनकीझोली का संपूर्ण अंश रानीमाँ के मिठास-भरे आश्वासन से ही भर उठा। पारो में कुछ ऐसा आकर्षण था, और उसकी आँखों में कुछ ऐसी खूबियाँ थीं कि प्रथम दृष्टि में रानीमाँ ने अपनी वाणी से उसे आप्यायित करते हुए कहा—आज से तू यहाँ की सेविका बनी। मुझे यह कहते प्रसन्नता हो रही है कि तुझे यहाँ किसी प्रकार का संकट नहीं रह जायगा—और यदि वह संकट, किसी कारण तेरे सामने उपस्थित हो भी जाय, तो उसे भगवान के वरदान के रूप में ग्रहण करना होगा। है तुझे पसंद? रह सकेगी यहाँ?

—आप रखेंगी और मैं रहना नहीं चाहूँगी, ऐसा कैसे हो सकता है! —पारो निःशंसय होकर बोल उठी थी—मैं जरूर रहूँगी, रानीमाँ!

और यहीं रहकर पारो, आज तरह-चौदह की होकर भी, लगती है कि जैसे उसका शैशव, उसके दामन को छोडकर, उससे हटना नहीं चाहता।

पहले वह गूँगी-जैसी रहती, पर अब तो वाचालता में सबसे पहले उसीकी ओर संकेत किया जाता है। रूप में, गुण में, शील और सौहार्द में—यहाँ तक कि लड़ने-झगड़ने में भी—किसीकी प्रधानता वह स्वीकार नहीं कर सकती ! प्रभावती को इसीलिए उस पारो से अगाध-स्नेह है··· ··

और उस पारो के समक्ष जिस दिन कुमुद आया, उस दिन वह सबसे पहले अनुमान कर सकी कि नवागंतुक ठीक उसीकी तरह कोई अनाथ बालक ही होगा। हवेली के भीतर और जो भी लड़कियाँ थीं, वे सेविका होकर भी प्रतिष्ठित माता-पिता की संतान है और वे माता-पिता जीवित हैं, जिनसे उन्हें मिलते-जुलते रहने का यदा-कदा सौभाग्य अवश्य मिला करता है। कुमुद को उनसबने किस रूप में ग्रहण किया, वह पारो के ग्रहण से सर्वथा भिन्न था, पर कुमुद के लिए वह कुछ और रही········

और प्रभावती को एक दिन जब यह पता चला कि कुमुद में जो उत्फुल्लता दीख रही है, उसका कारण मात्र पारो है, तब वह खूब प्रसन्न हुई। उसने अपने एकात कक्ष में पारो को बुलाया और उससे पूछा—उसके बाद और क्या मालूम हुआ, पारो, क्या कुछ और नई बात ?····

पारो समझ गई कि स्वामिनी के अंतर में कुमुद की कहानी का वह अंश उद्वेलित हो उठा है, जो उस मायाविनी युवती से सम्बन्ध रखता है। पारो भीतर से चंचल हो उठी। उसके गालों का रंग और भी गाढ़ा हो उठा। उसकी आँखें चमकने लगीं और वह बोल उठी-ओह,,उस डाइन की बात पूछ रही हैं रानीमाँ, जिसने उसे गोद लेने का विचार किया था ?

—हाँ, उसीकी बात ! क्या उसने गोद लेना चाहा था उसे ?—प्रभावती बोलकर पारो की ओर जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखने लगी।

—गोद ! यह तो आपका अनुमान है, रानीमाँ,—पारो जरा रुक-रुककर बोली—कुमुद तो ऐसा नही कहता। वह तो जानता भी नही कि गोद लेना कौन-सी वला है और सच पूछें तो मै भी नही जानती कि गोद कहते किसे हैं। पर, यह तो विचित्र बात है—क्या यह विचित्र बात नही है, रानीमाँ, कि एक सधवा जवान औरत, जिसके पति है, किसी सुंदर-खूबसूरत बच्चे को उस हद तक प्यार करे, जिस हद तक वह अपने बेटे को प्यार करती हैं ? कुमुद कहता है, उसी तरह से प्यार करती थी वह, मगर उस प्यार का···मगर प्यार भी क्या मर जाता है, रानीमाँ ?

प्रभावती बड़े ध्यान से पारो की बात सुन रही थी; पर उसने जब बात को खतम कर पारो को जिज्ञासा-भरी दृष्टि से अपनी ओर ताकते हुए देखा, तब वह भी जैसे सजग हो उठी और लगा कि पारो का अंतिम प्रश्न उसके मस्तिष्क मे अब भी चक्कर काट रहा है । प्रभावती अपनी गंभीरता को अपनी सहज मुस्कान से तरल बनाते हुए बोली—प्यार-प्रेम-स्नेह तो शाश्वत है, पारो, वह कभी मरता नही—जान पड़ता है कि उसका वह प्यार नहीं—मोह था, जो प्यार-जैसा ही ऊपर से दीख पड़ता है ।

प्रभावती कुछ क्षण चुप हो रही, वह फिर अपनेआपमें गंभीर हो उठी, फिर जाने क्या सोचकर बोल उठी—कुमुद को कितनी गहरी चोट लगी होगी, जिस दिन उसे पता चला होगा कि उसके प्यार में अतर आ गया है । छोटा-सा बालक, जिसने कभी अपनी माँ का प्यार जाना नहीं, दूसरे का प्यार पाकर भी उसे पा नही सका······प्रभावती चुप हो रही, उसकी आकृति पहले से और भी कठोर हो उठी । फिर वह पलंग से उठ कर टहलते-टहलते ही बोली—सुना कि उस युवती के जबसे अपना पुत्र हुआ, तभी से उसके प्यार में बहुत बड़ा अंतर आ गया । क्या वह यही कह रहा था न ?

पारो को कुमुद की बात याद हो आई ; पर प्रभावती की बातों को न समझकर वह कुमुद की बात को ही दोहराने की चेष्टा करती हुई बोली—उसका कहना कुछ और था रानीमाँ ! वह कह रहा था कि वह नवजात शिशु देखने में इतना सुन्दर था कि लगता, जैसे उसे देखता ही रह जाऊँ ! मन में होता—अगर उसे उठाकर अपनी गोद में ले लेता ! पर यह समझकर कि अभी तो वह बिलकुल बच्चा है, ठीक से वह उठाया भी तो नही । जा सकता ! क्या हुआ—आज न सही, कभी तो वह बढ़ेगा ही उस दिन उसके साथ खेलने में कितनी खुशी होगी ? मगर...

प्रभावती का अंतर हाहाकार कर उठा । उसने पारो की बात काटते हुए कहा—मगर की अब जरूरत नहीं पारो ! पराये का बच्चा अपना बनाकर जिसने उसे घर से बाहर करने मे जरा भी आगा-पीछा नहीं सोचा, जिसने इतना भी नही सोचा कि उस बालक की आकांक्षा से भरा हुआ मन नवजात शिशु को गोद में लेने को तरसता रहा, और उसकी तरस कभी मिटाने की ओर जिसने जरा भी ध्यान नहीं दिया, वह पशु हो सकती है, जो अपने बच्चे की हिफाजत मे सींग झाड़ा करती है, दूसरे के प्यार का मूल्य कुछ जान नहीं सकती । हाँ, वह पशु हो सकती है—नारी हर्गिज नहीं ।

—हाँ, मैं भी यही समझती हूँ, रानीमाँ !—पारो को और कुछ याद हो आया । वह कहने को बिलकुल उत्कंठित होकर गंभीर भाव से बोल उठी—अगर वह नारी ही होती तो फिर दुख काहे को होता, रानीमाँ ! अपना हित-अनहित कौन नही पहचानता ! बतलाइए तो भला ? मैं समझती हूँ कि कुमुद बालक है तो क्या, वह जानता है कि सम्मान के साथ रूखी-सूखी रोटी भी भली । पर जहाँ पग-पग पर अपमान का हो खतरा हो और ऊपर से पकवान-मिठाई ही क्यों न खिलाई जाय,

उसका एक-एक कौर जहर होता है रानीमाँ ! कुमुद की यह बात जब मैंने सुनी, तब मैंने उसकी पीठ ठोकी और कहा—तुम वहाँसे भाग निकले कुमुद, यह तुमने बहुत अच्छा किया ! तुम सम्मान-रक्षा में इतने खरे उतरोगे—इससे मेरी छाती फूल उठती है ! उस अवस्था में तुम्हारा भागना ही उचित था—और तुमने भागकर यह सिद्ध कर दिया कि तुम में बड़प्पन का कितना ध्यान है ! क्या यह बात सही नहीं है, रानीमाँ ?

प्रभावती का मुख आनंद से उद्भासित हो उठा; पर ओठों पर अब भी रोष की रेखा, ज्यों-की-त्यों, खिंची हुई दीख पड़ी ! उसने पारो से कहा —बिलकुल सही है; उसका भाग निकलना ही उचित हुआ ··· प्रभावती घूम-फिरकर एक सोफे पर बैठती हुई कुछ क्षण के बाद बोली—पर भाग निकलने में उसने जान को कितना जोखिम में डाला, कैसे-कैसे कष्ट सहे ! यह एक ऐसा गुण है कि उसके लाख कष्ट सह लेने पर वह आग में तपाये सोने की तरह सदा चमकता रहेगा ! बेचारे को साधु-बैरागियों के बीच रहकर भी चैन नहीं मिला······

—चैन नहीं मिला—सिर्फ यही बात नहीं है, रानीमाँ !—पारो ने यहाँ भी कुमुद की बात को ही रखने का ठीक-ठीक प्रयत्न करते हुए कहा—मैंने उसे खोद-खोदकर जितनी बार पूछा है, उसने उतनी बार कहा है कि वह कामों से जरा भी नहीं घबराता, उन साधुओं ने बैल की तरह उसे जोता हर काम में, यह बिलकुल सही है, पर उसका कहना है कि काम के एवज में कुछ खाने को उसे मिल जाता था, जिसे वह समझता था कि वह उसकी कमाई थी, उसका पावना था, जो उसे मिलना ही चाहिए था; पर उसकेलिए वह भागता नहीं, भागने का जो कारण हुआ, वह तो बतला भी नहीं सकता ! कहता है—तुम लड़की हो, उसका न सुनना ही अच्छा ! साधु-बैरागी भी जब अपने ईमान को गँवा बैठेंगे, तब यह धरती टिकेगी कैसे ? कुमुद की यों कोई बड़ी उमर

नहीं है, मगर घाव खा-खाकर उसका मन बहादुर-जैसा बलवान बन गया है।

—और उस बलवान को तुम नचाया करती हो—प्रभावती हँस पड़ी और पारो की ओर एक बार देखकर वह हँसती हुई ही बोली—क्यों ठीक है न, पारो? तुम्हीं बतलाओ न, बलवान वह है या तुम हो?

—मैं! मैं!! यह क्या कह रही हैं, रानीमाँ!—पारो भी हँस पड़ी—मैं कैसे बलवान हो सकती हूँ! नहीं-नहीं, मैं उसे कहाँ नचाती बल्कि, यह कहिए कि उसके लिए मुझे खुद नाचना पड़ता है। वह हरदम बंद रहनेवाला जिद्दी तबीयत का आदमी ठहरा, जो मार को सह सकता हो, कष्ट को झेल सकता हो, जिसने माँ का प्यार नहीं पाया, जिसने पिता की सूरत नहीं देखी, जो राजकुमार-जैसा प्यार पाकर आँसू-जैसा धरती पर लोट गया, भागा, जाने कहाँ-कहाँ की खाक छानता रहा, जो बैरागियों की जमात में अपने काम का जौहर तो दिखला सकता; पर उनकी अनुचित-अनैतिक इच्छाओं को पूरी न कर, अपने बचाव के लिए जंगल-जंगल मारा-मारा फिरता रहा—क्या अब भी आप उसे बलवान न कहेंगी, रानीमाँ?

पारो बोलकर चुप हो रही। वह मन-ही-मन सोचने लगी कि कुमुद की प्रशंसा में वह जो-कुछ बोल गई है, वह उसकी वकालत करना कहा जा सकता है। संभव है कि कहीं उसका दूसरा अर्थ न समझ लिया हो! वह भी तो ठीक-वैसा ही अपने माता-पिता से वंचित हो उठा है। रूप-रंग, आकृति-प्रकृति में कमल की जितनी दैहिक और प्रकृति-गत समता है, उतना ही पारो की सहृदयता— उसके मन का अद्‌भुत मेल-मिलाप और उतना ही दोनों के बीच गहरा स्नेह—इतना कि उसके नीचे उतरना और किसीसे शक्य नहीं। स्वयं रानी प्रभावती से भी शक्य नहीं।

पारो और भी सोचती है कि राजमहल में आकर जिसका मन

उलझता नहीं, जिसे न किसी भोज्य वस्तु के आस्वादन के लिए कोई आकांक्षा ही रह गई है, उसको बाँध रखना भी बड़े हिमाकत का काम ही सकता है। उसका क्या है—रहा रहा, न रहा, न रहा। वह है—इसलिए है कि प्रभावती को उससे अपनापन का मोह है—इसलिए है कि उसके साथ उसकी मातृत्व-भावना मानो फिर से जीवित हो उठी है; पर वही तो वह कमजोर है और कुमुद बलवान ! पर पारो किस मुँह से इस बात को प्रकट करे अपनी स्वामिनी के सामने !

प्रभावती के अंतर की मातृत्व-भावना को कुमुद की बलवत्ता पर जहाँ प्रसन्नता मिली, वहीं उसके नारी-हृदय में, संशय ने बड़े जोर से आक्रमण कर, हलचल मचा दी ! वह सोचने लगी कि जो अपने-आप में इतना बलवान है, जो सम्मान की रक्षा में एक सुन्दरी पुत्रवती के मान का मर्दन कर सकता है, जिसका जीवन कष्ट के घर्षण से घिसकर निर्मल-धौत हो उठा है, उसके सामने संसार के प्रलोभनों का कौन-सा-मूल्य ! वह आखिर टिका कैसे रह सकता है ! उसके प्रति स्नेह का जो-कुछ खेल क्यों न रचाया जाय, चोट खाया हुआ, छला हुआ उसका मन किस तरह रम सकता है। रम भले ही जाय कुछ क्षणों के लिए-कुछ महीनों के लिए; पर संपूर्ण जीवन के सामने उन महीनों का, उनक्षणों का मूल्य ही क्या !……पर कमल के रूप-गुण-स्वभाव-सौष्ठव को लेकर जो अनायास, अयाचित—भगवान के बरदान की तरह—प्राप्य है, उसे वह किस तरह आँखों से ओझल कर सकेगी—उस दिन क्या वह वह रह सकेगी ? नारी की सार्थकता ही क्या, जब वह अपने हृदय के अक्षय दान से, दाक्षिण्य की पावनता से, पृथिवी के कण-कण को मधुमय न कर दे ! कुमुद तो बालक है, नारी कहाँ नहीं विजयिनी रही है ? नहीं, कुमुद को एक दिन स्वीकार करना ही पड़ेगा कि संसार की सभी नारियाँ उस युवती की तरह नहीं हो सकतीं, जिसने प्यार के साथ व्यभिचार किया है ! शारीरिक व्यभिचार नगण्य है, क्योंकि वह बाहरी है, अंतर का नहीं…

प्रभावती को सोचने में व्याघात उत्पन्न हुआ। श्यामा ने उसी समय आकर कहा—दीवान जी आपके दर्शनों की प्रतीक्षा कर रहे हैं, रानीमाँ! आज्ञा हो तो······

—प्रतीक्षा कर रहे है—प्रभावती चौंककर बोली—कौन, दीवान जी? अच्छा, कहो कि वे मेरे आफिस-कमरे में बैठें, मैं वहीं आ रही हूँ!······फिर कुछ रुककर पारो से उसने कहा—अच्छा, तुम भी जाओ, देखो, कुमुद तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा होगा—जाओ!

श्यामा और पारो दोनों एक साथ नीचे की ओर चल पड़ी।



वृद्ध दीवानजी पर प्रभावती की अटूट श्रद्धा है और वह श्रद्धा इसलिए नहीं कि उन्होंने उसकी ज़मींदारी की न केवल रक्षा ही की है, उसे बहुत हद्तक बढाया भी है; वरन् उस श्रद्धा का कारण है अपने पति के जीवन-काल से प्रवहमान नैष्ठिक साधुता-पूर्ण सेवा-परायणता के साथ उसके प्रति उनके द्वारा पुत्रीवत् समझी जानेवाली भावना। दीवानजी पर जमींदारी का कार्य न्यस्त है, उनकी इमान्दारी और कार्य-पटुता पर प्रभावती को भरोसा है; फिर भी दीवानजी की ओर से, सदा-सर्वदा, यह देखा गया है कि जहाँ उनकी बुद्धि डगमगा उठती है, वहाँ उनकेलिए अपनी स्वामिनी का परामर्श लेना आवश्यक हो उठता है और जब-कभी ऐसा अवसर उपस्थित होता है तब वह स्वामिनी समझ जाती है कि अवश्य ही कोई गूढ़ प्रसंग आ गया है, जहाँ उसके परामर्श की नितात आवश्यकता है।

दीवानजी के साथ प्रभावती खुलकर बातें करती है। उस समय स्वामी का जो कर्त्तव्य होना चाहिए, उसका निर्वाह प्रभावती की ओर से तो होता ही है, दीवानजी कभी पीछे पैर खीचनेवाले नहीं होते।

प्रभावती की उनकेप्रति सम्मान और समादर की भावना है और वह बडे संभ्रम के साथ उनसे मिलती है।

उस दिन दीवानजी प्रभावती के आफिस-कमरे मे बैठे ऊँघ रहे थे। उनकी आकृति की रेखाएँ सघन हो उठी थी। जान पड़ता था, कोई गूढ समस्या उनकी दृष्टि के सामने प्रत्यक्ष हो उठी हो। आँखो पर चश्मा पड़ा हुआ था; पर जब-कभी आँख खोलकर वे बाहर की ओर देखने लगते, तब लगता कि जैसे वे सामने की चीजों को देख नही रहे हों। वे जिस अतल तल में पहुँचकर सोच रहे थे, वह उनकी आँखों से स्पष्ट जाना जा सकता था! पर, उन्हें सोचने में व्याघात उत्पन्न हुआ, जब उन्होंने किसीके आने की आहट सुनी। आनेवाला और कोई नही—उनकी स्वामिनी थीं--रानी प्रभावती। प्रभावती ने कक्ष के भीतर प्रवेश करते ही बैठे हुए दीवानजी के प्रति दोनों हाथों को सिर से लगाकर प्रणाम किया, फिर मुस्कुराकर कहा—आपको बड़ा कष्ट हुआ, कहिए कुशल है न?

दीवानजी स्वयं बैठे न रह सके। अपनी स्वामिनी को अचानक प्रवेश करते हुए देखकर, वे हड़बड़ाकर उठ खड़े हुए और स्वामिनी के अभिवादन को सिर झुकाकर स्वीकार करते हुए कहा—सब कुशल है, आपकी कृपा है, रानीमाँ!

दीवानजी क्षण भर खड़े रहे। फिर स्वामिनी के आसन-ग्रहण कर लेने के बाद उन्होंने पहले कुर्सी से लगी छड़ी को, जो उठते समय जमीन पर गिर पड़ी थी, नीचे से उठाया; फिर धीरे से सँभलकर कुर्सी पर बैठे। फिर उन्होंने नाक पर ठीक से चश्मा-बैठाते हुए अपनी स्वामिनी की ओर देखा और गंभीर स्वर में बोले— कुछ आवश्यक विषयों के संबंध में आपसे निवेदन करना चाहता था; पर इधर रक्त-चाप की अधिकता के कारण सेवा में उपस्थित न हो सका। अब कुछ स्वास्थ्य मे सुधार हुआ है, फिर भी ऐसा न हो सका है कि ....

—आप तो योंही कष्ट उठाया करते है—प्रभावती ने नीची निगाह से एक बार उन्हें नीचे से ऊपर तक देखा ! उसे लगा कि दीवानजी की आकृति मे वह तेज नहीं रह गया है । आँखें पहले से कुछ अधिक धँस गई है और दृष्टि में भी वह प्रखरता नही रह गई है। वह मन-ही-मन खिन्न हो उठी और करुण-मधुर स्वर मे बोली—काम देखने के लिए आदमियों की कमी नहीं है; पर मै यह अत्याचार देख नही सकती, जो आप अपने प्रति कर रहे हैं। मै समझती हूँ कि आप कुछ दिनों के लिए वायु-परिवर्त्तन के खयाल से पहाड़ पर जायँ ! सारा व्यय इस्टेट वहन करेगा। कहिए, आप कब जा रहे है ?

दीवानजी को अपनी स्वामिनी की सदाशयता का ज्ञान है; पर उससे भी अधिक उन्हें अपने कर्त्तव्य का भी ध्यान रहता आया है। यों तो प्रभावती जबसे इस्टेट की स्वामिनी बनी है, तबसे रिआया भी शात और संपन्न है—कही किसी तरह का हंगामा—किसी तरह की अव्यवस्था—का नाम नही ! कोई भी, इस शान्त वातावरण मे, शासन-व्यवस्था सँभाल सकता है; फिर भी दीवानजी के समक्ष एक गुरुतर समस्या आ खडी हुई है, उसका समाधान तो उन्हे ही करना होगा। इसलिए वे अपनी स्वामिनी की ओर देखते हुए बोले—मै कब जा रहा हूँ—इस सबंध मे तो पहले सोचा नही था, रानीमाँ, कैसे कहा जाय ! चिंता तो एक नही है ! आपको शायद मालूम होगा कि बाबूसाहब पर महाजन ने नालिश ठोक दी है ....

—नालिश ? महाजन ने ? कैसी नालिश ?

—हाँ, महाजन ने नालिश की है।

—मगर कैसी नालिश ?—प्रभावती उद्विग्न हो उठी, वह जिज्ञासा भरी दृष्टि से दीवानजी की ओर देखने लगी !

—शायद आपको मालूम नही होगा !—दीवानजी रुक-रुककर कहते

चले, मानों उन्हे एक-एक शब्द अपनी स्वामिनी के सामने रखने में कष्ट का अनुभव हो रहा हो। दीवानजी ने सिर झुका लिया, और बोले—विलास की वासना जब प्रबल हो उठती है, तब ऐसा ही होता है। यह न अस्वाभाविक है और न इसे दैव-दुर्विपाक ही कह सकते हैं। बाबूसाहब ने एक सेठ से ऋण लिया था, जाने कितना लिया था, कब लिया, या किसलिए लिया था······

दीवानजी चुप हो रहे, पर स्वामिनी चुप न रह सकी, बोली—नालिश की है एक महाजन ने—एक सेठ ने! प्रभावती मौन होकर सोचने लगी, फिर वह अचानक पूछ बैठी—दावा कितने का किया गया है, दीवानजी?

—दावा!—दीवानजी सोचने लगे, फिर दबी जबान में बोले—ठीक-ठीक तो नहीं जानता; मगर सुना है कि कोई पचहत्तर हजार का है।

—पचहत्तर हजार!—प्रभावती आश्चर्य-चकित होकर दीवानजी की ओर देखती रही—कह क्या रहे है?

—आपसे अनर्गल तो नहीं कहा जा सकता, रानीमाँ—दीवानजी उच्छ्वसित हो पड़े—आनंदमोहन की जमीन्दारी, उनका नाम, उनकी प्रतिष्ठा· बंश जब बिगड़ने को होता है, तब उसमें कचा पैदा होता है! बाबूसाहब ने भोग को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाया! जो लक्ष्मी का निरादर करता है, उसकी अंतिम दशा यही होती है!····· और सबसे दुःख की बात तो यह है कि सारी जमीन्दारी उस सेठ के पास बंधक पड़ी है·· ···

—बंधक पड़ी है ······जमींदारी?

—इतने-इतने रुपये उधार तो नहीं दिये जा सकते, रानीमाँ! ऋण लगानेवाला इतना मूर्ख कैसे हो सकता है? रुपये डूबने का खतरा तो योंही मोल नहीं लिया जा सकता!

प्रभावती सिर झुकाकर सोचने लगी। आनंदमोहन को उसने कभी देखा नहीं था, पर आज उसे लगा कि जैसे उन्हे वह अपने सामने 'बालम' नामक घोडे की पीठ पर सवार देख रही है और देख रही है–उनके भरे-उभरे मुखमण्डल पर काली-सफेद ऐंठी हुई मूँछे है, सिर पर वासंती फेंटा बँधा है, उस फेंटे के नीचे गर्दन तक उनकी जुल्फें कटी-छँटी और मुड़ी हुई दीख रही है। गालो पर बालो के घने गलपट्टे है. आँखो मे तेज और ओठों पर मधुरिमा खेल रही है—यह है बाबू आनंदमोहन चौधरी—विक्रमगंज जमीदारी के संस्थापक! प्रभावती ने अपना सिर ऊपर उठाया, उसने चमकती हुई आँखों से दीवानजी को देखा और बोल उठी—और बाबूसाहब क्या सोच रहे है, क्या आपसे उन्होंने कुछ कहा है?

—मुझसे?—दीवानजी ने चश्मा को ठीक से नाक पर जमाते हुए कहा—मुझसे तो उन्होंने कुछ नहीं कहा, और न उनके मुख पर कुछ विषाद की रेखा ही देखी! वहाँ तो नित्य नया-नया रंग है, उनके साहबजादे उनसे किसी बात में उन्नीस नही—बीस ही रहना चाहते हैं! मुँह में गालियाँ भरी रहती है, आँखो मे अहकार का नशा चढा रहता है··· दीवानजी चुप हो रहे, उन्होने बायें हाथ से अपनी छाती दबाई और फिर धीरे-धीरे कहने लगे—मेरा कुछ पूछना उनके सम्मान में चोट पहुँचाना होता। इसलिए मे पूछ कैसे सकता था रानीमाँ? मगर मैं वहाँ से बगैर जाने खाली हाथ लौटता कैसे! लक्ष्मी आती है और चली जाती है—इससे कोई भी दुःख नही, पर दुःख तो तब होता है जब कोई उस लक्ष्मी के प्रति जान-बूझकर अत्याचार कर बैठता है! बाबूसाहब आज उस सीमा पर पहुँच चुके है···

—मगर आपने जाना कैसे, दीवानजी?—प्रभावती ने उत्कंठित भाव से पूछा—क्या किसी और····

—हाँ, किसी और ने नहीं—दीवानजी रुक-रुककर कहने लगे—मिस्टर जोशी से भेंट हो गई अचानक ! शायद वे मुझसे ही मिलने को चल पड़े थे—कह तो यही रहे थे, खैर ! दीवानजी जरा रुके, फिर गला साफकर बोले—मुकदमा साफ है, कर्ज का गिर्वीनामा दायर है—दावा है पचहत्तर हजार का ! मगर बाबूसाहब कहते हैं, उन सालों में देख लूँगा ! चले हैं दावा दायर करने ! बनिया-बक्काल दावा करेंगे जमीन्दार पर—खानदानी जमींदार पर ! मुकदमा हाईकोर्ट जायगा, प्रिवीकौंसिल तक जायगा । जमींदारी लुट जायगी, मगर सालों को जमींदारी का एक तिनका तक न मिलेगा······

दीवानजी चुप हो रहे । प्रभावती भी सिर झुकाकर मौन साधे रही, पर उसके अंतर में जो हलचल मच रही थी, उसका परिणाम स्पष्टतः उसकी आकृति पर अंकित दिखाई देने लगा । प्रभावती ने गंभीर स्वर में पूछा—जमींदारी का जो पुराना अंश सिराजुद्दौला की दी हुई जागीर है, वह तो इजमाल में ही पड़ा हुआ है, उसकी सनद भी तो अपने पास नहीं है, दीवानजी ? मुझे तो यही याद आता है । कभी तो इतने दिनों में उन-सब चीजों को देखने-सुनने का अवसर मिला नहीं ! याद है कुछ ?

—सब-कुछ याद है, रानीमाँ, सब-कुछ याद है—दीवानजी बोल कर चुप हुए, फिर कहने लगे—सिर्फ जागीर ही इजमाल में नहीं है—बहुत-कुछ और जमींदारी का प्लाट भी इजमाल में पड़ा हुआ है ! उनका जोर है कि वे उससे भी खजाना पूरा-का-पूरा उगाह लेते हैं, पर हमें उसका हिस्सा तक नहीं देते······

—छोड़िए हिस्सा !—प्रभावती ने सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए कहा—उनका खर्च बड़ा है, कुछ उनकी तरफ रह गया, तो कौन पहाड़ टूट पड़ा !

—मगर वे तो पाई-पैसा-गंडा सबका-सब चुका लेते हैं हमसे !—दीवानजी सँभलकर बैठते हुए बोले—यह तो हिसाब-किताब की बात

ठहरी ! रानीमाँ, लेना-देना साफ होना ही चाहिए ! जहाँ ऐसा नहीं होता, वहाँ अव्यवस्था आ जाती है, और धीरे-धीरे ऐसी बान पड़ जाती है कि छोटी रकम से चलकर बड़ी रकम पर बात आकर मन में ही मैल नहीं डालती, खजाना भी खोखला हो जाता है ·····हिसाब हिसाब है—वह भावुकता से नहीं चला करता·····

दीवानजी की बात खरी थी, सत्यता से पूर्ण थी, पर प्रभावती ने उसकी उपेक्षा कर दी। फिर अपने मन के भाव को मन में ही पचाकर वह आप-ही-आप हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही बोली–आपने जो कुछ कहा है, सही कहा है, पर मुझे लगता है कि पाई–पैसा का, अपनी जगह, चाहे जितना महत्त्व हो; पर उस महत्त्व के सामने उसका मूल्य नगण्य है, जिसके बिना मनुष्य, मनुष्य नहीं रहकर, पशु बन जाता है ! हमें देखना होगा कि हम पशु की ओर तो नहीं झुक रहे हैं, हम ····

दीवानजी अनुभवी थे। वे तुरंत ताड़ गये कि उनकी स्वामिनी को उनकी बातें अरुचिकर जँची। इसलिए वे भी हँसी की एक क्षीण रेखा अपने ओठों पर खींचते हुए बोले—मैं यहीं तो आपसे परास्त होता हूँ, रानीमाँ ! आपकी दृष्टि में जो नगण्य है, उसे मैं नगण्य कैसे मानूँ ! यहाँ तो अंतर-अंतर में ही विरोध है······

पर, आपसे मेरा कोई विरोध नहीं है, दीवानजी—प्रभावती ने गंभीर होकर ही कहा—आप सच मानिए, मैं उस विरोध की कल्पना भी नहीं कर सकती। मैं आपका हाथ रोकना नहीं चाहती, क्योंकि मैं जानती हूँ कि आपको इस इस्टेट से ममत्व है, और वह ममत्व एक ऐसे आधार पर आश्रित है, जो अपनेआप में पुष्ट है !

प्रभावती कुछ क्षण चुप हो रही, फिर गंभीर होकर बोल उठी—यह पुरखों की अर्जित संपत्ति पर काला बादल छा गया है। उसकेलिए आपने क्या कुछ विचार किया है, दीवानजी ?

—विचार ?—दीवानजी अपने आप में चोंक उठे, फिर भीतर-भीतर अपनेको सँभालकर बोले—विचार तो कुछ करना ही होगा, पर अभी कुछ विचार करना समय से बहुत पहले विचार करना समझा जायगा। फिर भी उस ओर ध्यान तो रहेगा ही! देखिए, आगे क्या होता है, कैसा अवसर आता है! मगर आपका क्या खयाल है—यह तो मुझे मालूम न हो सका, रानीमाँ!

प्रभावती इसबार फिर से हँस पड़ी। जैसे उस हँसी में अपने खयाल को डुबो रखना चाहती हो। फिर बोल उठी—मेरा खयाल क्या आपसे छिपा रह सकता है, दीवानजी?

प्रभावती इस बार उठकर खड़ी हो गई। दीवानजी अपने-आप में अस्तव्यस्त होकर उठ पड़े और उठते हुए बोले—इधर कई दिनों से कुमुद को नहीं देखा, रानीमाँ! क्या उसकी तबीयत यहाँ रम गई तो?

—तबीयत रमने में क्या देर लगती है, दीवानजी, फिर एक बच्चे की तबीयत ही तो ठहरी!

प्रभावती और दीवानजी आगे-पीछे कमरे से बाहर हुए। प्रभावती कुछ क्षण रुक गई, फिर बोल उठी—हाँ, दीवानजी, आपने अच्छी याद दिलाई! कुमुद जब अपने बीच आ ही पड़ा है अभागा, तब हमारा भी तो उसके प्रति कुछ कर्त्तव्य होना ही चाहिए।

—अवश्य-अवश्य। वही अभागा सनाथ होने से क्यों वंचित रह जाय!—दीवानजी बोलकर हँस पड़े।

जाय, तो वह यहाँ रखा भी जा सकता है । जरा इस ओर भी आपका ध्यान रहे। क्यो, आप क्या सोच रहे है ?

—ठीक तो है; आपने उचित ही विचार किया है—दीवानजी ने समर्थन करते हुए कहा—अच्छा, तुरत ही उसका प्रबंध हो जाता है। पढ़ाना तो आवश्यक हो ठहरा। कुछ स्थायी सबल तो होना हा चाहिए।

इसके बाद दीवानजा ने विदा माँगते हुए कहा—अच्छा, तो अब आज्ञा मिले।

प्रभावती ने नमस्कार करते हुए कहा—जरा उस ओर भी ध्यान रहे, दीवानजी! बीच-बीच मे जताते रहने का कष्ट कीजिएगा।

—कष्ट नही, वह तो इस वृद्ध का कर्त्तव्य ही ठहरा, रानीमाँ! उसे भुला कैसे सकता हूँ ।

दीवानजी अंतःपुर से बाहर निकले। प्रभावती अपनी जगह पर एकात खड़ी हो, जाने क्या सोचने लगी।

६

जिस दिन कुमुद को गाड़ी पर बैठाकर रामपुर के माध्यमिक विद्यालय में नाम लिखाने के विचार से दीवान जी रवाना हुए, उस दिन प्रभावती ने उसे अपने हाथों कपड़े पहनाते हुए कहा—अब तो तुम कुछ समझने-बूझने लायक हो चुके हो, कुमुद, इसलिए मुझे यह आशा बँधती है कि तुम यह नहीं सोचोगे कि तुम ठगे जा रहे हो। मैं जानती हूँ कि जो एक बार ठगा जा चुका होता है, उसे फिर से न ठगाये जाने के लिए सजग होना पड़ता है। यह स्वाभाविक भी है। मगर अपने हित-अनहित का विचार तो होना ही चाहिए। मैं चाहती हूँ कि तुम पढ़-लिखकर मनुष्य बन सको। इसी उद्देश्य से आज तुम्हें स्कूल भिजवा रही हूँ। यों घर पर भी गुरुजी पढ़ाने केलिए आ सकते हैं। पर स्कूल में तुम्हें और लड़कों के साथ पढ़ना होगा। उनलोगों से तुम्हें पढ़ने की प्रेरणा भी मिलेगी, वे तुम्हारे साथी भी बनेंगे, उनके साथ खेल-कूद भी रहेगी या तुम स्कूल जाना पसंद करोगे?

उसके मुख की ओर देखा, तब कुमुद को लगा कि उसे कुछ उत्तर देना ही चाहिए। कुमुद ने प्रभावती के भीतर कुछ ऐसी बात का अनुभव अनायास ही कर पाया था, जो उसके पुराने कटु अनुभवों से सर्वथा भिन्न था। उसकी समझ में यह बात आ गई थी कि जिस सुन्दरी युवती ने उसे प्यार का मीठा घूँट पिलाकर अंत मे दूध की मक्खी की तरह अपने घर से बाहर जाने को एक दिन बाध्य किया था, वह सुन्दरी हो सकती है, पर उसके भीतर राक्षस छिपा बैठा था। आज वह योगायोग से जहाँ आकर टिका है, वहाँ भी एक नारी ही है। वह भी सुन्दरी है, युवती है, अपने महल की आप स्वामिनी और अपनी दिशा मे अपनी इच्छा की अनुगामिनी है; पर इन दोनों में जो अतंर दीखता है, वह तो कुछ साधारण नहीं! एक ओर जहाँ राक्षसी उसे दीख पड़ती है, वहीं उसे दूसरी ओर ऐसी स्नेहमयी देवी दिखाई पड़ती है, जिसके मुस्कान में फूल खिलते हैं और जिसकी हँसी में मोती बिखर उठते है! कुमुद का अनुमान कुछ गलत नही था! आज जब उसे प्रभावती अपने हाथों कपड़े पहना रही है, तब भी वह मन-ही मन उसीके बारे में सोच रहा था, पर ज्योंही कुमुद ने उसकी बाते शेष होने पर उसे अपनी ओर निहारते हुए पाया, त्योंही वह लजाते हुए बोल उठा—क्यों नही पसंद करूँगा? मगर, आप ऐसा क्यों कर रही है?

—अरे, कह क्या रहा है—प्रभावती ने उसकी ठुड्ढी डुलाते हुए कहा—जो कर रही हूँ, सो तो तुम देख ही रहे हो? क्यों तुम चाहते हो कि मै ऐसा न करूँ?

—उसने भी तो मुझे स्कूल में बिठलाया था! मगर मै पढ सका कहाँ? गुरुजी कहता था कि तुझे विद्या नहीं आयगी।

प्रभावती हँस पड़ी और हँसकर ही बोली—वह कोई मूर्ख ही होगा कुमुद, नहीं तो वह ऐसा नहीं कह सकता! माँ सरस्वती इतनी कठोर नही

—वह तो बड़ी दयालु माँ हैं न। पर वह सेवा कराना चाहती हैं और जो उनकी सेवा करता है, उसे ही वह विद्या भी देती है। समझे कुमुद, वह तुम्हें जरूर ही विद्या देगी।

—हाँ, आप ठीक कह रहा है, रानीमाँ!

—रानीमाँ नहीं—माँ कहो, कुमुद!

—नहीं-नहीं, माँ नहीं, आप तो रानीमाँ हैं, सब तो रानीमाँ ही कहा करते हैं।

प्रभावती उसका उत्तर नहीं दे पाती, वह सिर घुमा लेती है और कुछ क्षण तक बाहर ही देखती रहती है। पर उसी समय वहाँ मंजु आ पहुँचती है और कुमुद से कहती है—देखो, कुमुद, दीवानजी तैयार होकर तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठे हुए है। स्कूल जा रहे हो न? देखो न, एक तुम हो कि स्कूल भेजे जा रहे हो और एक मैं हूँ कि ठाकुरबाड़ी में, देवता की मूर्त्ति के सामने, लंबी चोटी और तीनफटाका तिलक चढ़ाए, कृशकाय ब्राह्मण से मुझे लट-लिङ-लुंङ,-लृट घोंकना पड़ता है! यह लट-लुंङ-लृट कौन-सी बला है, मैं नहीं जानती; पर घोंके जा रही हूँ। ब्राह्मण देवता कहते हैं—मैं पंडिता बनूँगी! पर मैं खण्डिता भी बनूँ, तो समझो—बहुत बनी!

—मंजु की बातों पर सब-के-सब हँस पड़े, कुमुद भी खिलखिलाकर हँस पड़ा।

कुमुद की खिलखिलाहट सुनकर मंजु फिर से मुँह बनाकर बोल उठी—हँस लो, कुमुद, हँस लो! तुम स्कूल जा रहे हो न! तुम क्या समझोगे कि माँ अपने बच्चों को किस-किस दृष्टि से देखती है!

—हाँ, किस-किस दृष्टि से, मंजु?—प्रभावती की आँखें बिहँस उठीं और उन्हीं आँखों से वह मंजु की ओर देखती रही।

—जाओ, मै तुमसे नही बोलती—मंजु तुनककर बोल उठी—संस्कृत मे तुम्हे इतना स्नेह है, तो कुमुद को संस्कृत घोंकवाने के लिए टोल मे क्यों नही बिठलाया ? इसलिए कि कुसुद पुत्र-स्थानीय है, संस्कृत पढकर राजकाज तो सँभाला नही जायगा, स्कूल में उसे पढना ही चाहिए। यही न ? बहुत ठीक, मै भी समझती हूँ !

मंजु कुछ क्षण रुकी, फिर कुमुद का हाथ पकड़कर खीचते हुए बोली—चलो कुमुद, दीवानजी कह रहे थे कि उन्हें देर हो रही है। जानते हो, उनपर कितना काम पड़ा रहता है। आज तुम जाओ कुमुद, वहाँ से आकर बतलानाकि स्कूल मे पढने का क्या मजा है।

प्रभावती हँसती हुई उठ खड़ी हुई और झपटकर कुमुद के सामने खड़ी हो, काजल का एक छोटा-सा टीका उसके मस्तक मे लगाकर बोली—अब जाओ कुमुद, और देखो, मजु के बहकावे मे न पड़ना ! वह तो तुमसे ईर्ष्या कर रही है न !

मंजु कुछ दूर आगे निकल गई थी, सुनकर वह वही रुक गई। फिर वही से बोली—कुमुद, कान खोलकर तुम भी सुन लो माँ की बात ! मै तुमसे ईर्ष्या करने लगी हूँ ! और, मेरे बहकावे में न पड़ना !

वे दोनों अत.पुर से बाहर निकले। प्रभावती कोठे पर गई, पर वहाँ जाकर निश्चित न हो सकी। वह वातायन के निकट खड़ी हो बाहर की ओर देखने लगी।

और कुछ ही क्षणो के बाद प्रभावती ने देखा कि सामने की सड़क पर संपनीगाड़ी जा रही है, जिसके भीतर एक ओर कुमुद बैठा है और दूसरी ओर दीवानजी बैठे है—दोनो आमने सामने है। लगता है, दीवानजी कुछ कह रहे है और कुमुद बड़े मनोयोग के साथ सुन रहा है !

प्रभावती ने एक लंबी साँस खीची और मुँह से तो कुछ बोली नही; किंतु उसके अंतस्तल में जैसे-कोई कह रहा हो कि आज यदि कमल रहता, तो क्या मंजु उसे भी पुत्रस्थानीय कहकर पुकारता !

तो क्या मंजु समझ गई है कि वह पुत्रस्थानीय हो चुका है ? पुत्र-स्थानीय से उसका क्या अभिप्राय है ? यह तो नही कि जो स्थान पुत्र के अभाव में रिक्त हो चुका है, वह कुमुद से भरा गया है ? अथवा यह तो नही कि जिसके पुत्र नही रहता, वह किसीको पुत्र मान लेता है ? मंजु का अभिप्राय किससे है—प्रथम से या द्वितीय से ? प्रभावती बड़े ध्यान से इस विषय पर सोचने लगी। पर उसके सोचने में व्यवधान उपस्थित हुआ। पारो जाने कहाँ से झपटती हुई आकर बोली—कुमुद तो आज स्कूल चला गया, रानीमाँ, दोपहर का जलपान क्या उनके पास स्कूल में भिजवाना होगा ?

प्रभावती ने अन्यमनस्क होकर उसकी बात सुनी, फिर उसकी ओर ताकते हुए बोली—क्या कह रही है, पारो ?

—कह रही थी यह कि- पारो फिर से रुक-रुककर बोली—कुमुद तो हड़बड़ में कुछ खा नहीं सका ! हड़बड़ भी कहना ठीक नही है ! बात यह है कि उसने जबसे स्कूल में भेजने की बात सुनी, वह भीतर से डर गया। और, जब मैंने उससे पूछा कि अब तुम स्कूल में पढ़ने को बैठाये जाओगे, तब उसने डरकर कहा कि मैं क्या पढ सकूँगा पारो ? वहाँ भी तो मैं बैठाया गया था पढने, मगर गुरुजी ने बताया कि तुम पढ नहीं सकोगे। चंचल लड़के पढ नही सकते। गुरुजी रह-रहकर लड़कों की पीठ पर बेंत खींचते रहते थे ! बेंत का डर मुझे इतना अधिक लगा कि मैं फिर से स्कूल नहीं जा सका ! इसलिए... मगर जब वह पढने को भेजा गया है, मैं चाहती थी कि उसे दोपहर का जलपान......

हाँ, अच्छी याद दिलाई--प्रभावती ने उसकी बात का समर्थन करते हुए कहा—ठीक कह रही हो ! क्या वह भरपेट न खा सका ? तुम कह क्या रही, पारो ?

--कहाँ खा सका, रानीमाँ !—पारो बोली—थाली का भात थाली में ही पड़ा रहा। सच कहा जाय तो कहना पड़ेगा कि उसने मुँह ही जुठाया, कुछ गले से उतार नही सका वह ! डर गया था न।

पारो की बाते सुनकर प्रभावती सोचने लगी कि अवश्य पारो यदि नही रहती, तो कुमुद का टिकना कठिन हो उठता ! पारो में उसने ऐसी आत्मीयता पाई है, जो अन्यत्र उसे मिल नहीं रही ! उसे अपने आप पर वितृष्णा हो उठी। उसे लगा कि कुमुद अबतक उसका अंतरंग क्यों न बन सका, जितना वह पारो का बन चुका है ! क्यों नही वह पारो बन सकी ? पारो मे कौन-सी विशेषता है, जो उसमे नहीं ! पारो तो मात्र एक सेविका है, वह जितना सबको देखती है, उससे अधिक वह अपनी स्वामिनी की सेवा में तत्पर रहती है ! उसकी सेवा में, कुमुद के आ जाने पर भी, कोई अंतर अबतक न देखा गया ! प्रभावती जाने इस तरह कब तक सोचती रहती, पर पारो ने अपनी स्वामिनी का मौन-भंग करने के विचार से कहा—क्या उसके लिए जलपान न भेजा जायगा, रानीमाँ ? मैं जानती हूँ कि कुमुद के पढ़ने चले जाने पर आपको कुछ अच्छा नहीं लग रहा है ! पर, लड़के का पढ़ना तो जरूरी है न, रानीमाँ !

इसबार प्रभावती के लिए कुछ उत्तर न देना संभव न हो उठा। वह अपने ओठो पर स्वाभाविक मुस्कराहट लेकर बोल उठी—पारो, तुम ठीक सोच रही हो। हाँ, लगता है, कुमुद के चले जाने पर कुछ अच्छा नही लग रहा है। पर अपने अच्छा लगना-न लगना तो कुछ अर्थ नही रखता। बहुत बार ऐसा देखा जाता है कि मन में न भाने पर भी बरबस कुछ करना ही पड़ता है। कर्त्तव्य ऐसा ही कठोर हुआ करता है। आखिर उसके साथ कर्त्तव्य की जो शृंखला जुट गई है, वह तोड़ी कैसे जा सकती

है ! ... मगर तुम जलपान भेजने की बात कह रही थी न ! ठीक याद दिलाई ! हाँ भेज देना, किसीके हाथ भेज देना ।

पारो की आकृति खिल उठी, पर कुछ ही क्षण के बाद गंभीर होकर बोली—और जा ही सकता है कौन ? क्या मैं नहीं जा सकती रानीमाँ ?

प्रभावती पारो की बात पर हँस पड़ी और हँसती हुई बोली—जानती हूँ । उसके चले जाने से तुम मुझसे भी अधिक बेचैन हो उठी हो । अब जान सकी हूँ कि क्यों वह कुमुद तुम्हें इतना अधिक चाहता है ! खैर, तुम्हीं चली जाना । बस, अब तो ठीक रहा ?

प्रभावती की बातों में प्रच्छन्न जो एक सच्चाई थी, वह पारो से छिपी न रह सकी । उसे लगा कि वह अपनी स्वामिनी से पकड़ी गई है ! इसलिए वह सोच रही थी कि अब उसे वहाँसे हट जाना ही चाहिए, पर स्वामिनी तो उसे हट जाने को कह नहीं रही है, फिर बिना उनकी आज्ञा पाये वह हट सकती है कैसे ? इसलिए आज्ञा पाने के विचार से उसने एक बार सिर उठाकर अपनी स्वामिनी की ओर देखा; पर तुरत ही उसने अपनी आँखें झुका ली । प्रभावती ताड़ गई, इसलिए झटपट बोल उठी—क्या तुम्हें और-कुछ कहना है ?

इस बार पारो वहाँ से हटी, पर उसकी डगों में वह स्फूर्त्ति नही थी। फिर भी आज्ञा का पालन तो उसे करना ही था, इसलिए दम साध कर वह वहाँ से धीरे-धीरे हट गई।

दो पहर हुआ; पर गाडी लौट न सकी! पारो रह-रहकर आँखें बचा बाहर निकलती और कचहरी-घर के पास चक्कर काटकर चुपचाप लौट पड़ती! उसे गाड़ीवान पर भी गुस्सा हो आता और मन-ही-मन कहने लगती—जितने यहाँ के नौकर-चाकर है, सब-के-सब बदमाश बन गये है। डर तो किसीका है नही। सिर्फ काम में फॉको देना जान गये है। क्या इतनी ही दूर में गाडी उलट गई, या बैलो को कुछ हो गया? आखिर, बात क्या है कि गाडी लौटकर आ न सकी!

मगर उस पारो को राजकाज का क्या पता? दीवानजी तो फॉकी देनेवाले है नहीं! उनको लेकर गाडी गई है। सभव है, स्कूल में कुमुद को पहुँचाकर दीवानजी और कहीं चले गये हों! पर यह बात पारो के दिमाग में आई नहीं! क्यों नही आई, पारो यहाँ तक सोच न सकी।

दोपहर तो योंही बीता, तीसरा पहर भी बीत चला। इतने में पारो कई बार आकर कचहरी-घर की परिक्रमा कर गई! इस बार उसे ध्यान आया कि दीवानजी के कमरे को तो एक बार देख लिया जाय! यदि वे लौट आये हो, तो उनसे इतना तो पता चलेगा ही कि कुमुद लौटेगा कब? ऐसा भी क्या स्कूल होता है, जहाँके मास्टर इतना भी नही समझते कि बच्चों को ज्यादा भूख लगा करती है? वे पराये के बच्चे होते है न! अगर मास्टर का अपना बच्चा इतनी देर तक भूखा रहता, तो उन्हें कुछ पता भी चलता।

पारो का गुस्सा अपने-आप में उबल उठा। उसके नथुने रह-रह कर फूल उठते, उसकी आँखें और भी अधिक अस्वाभाविक ढग से चमकने लगती। उसके कान की जड़ें गरम हो उठती और उसकी साँस जैसे

रुक-रुक कर चलने लगती ! उसकी आकृति से साफ पता चलता कि वह सख्त नाराज है ! पर, यह नाराजी किसपर अधिक है---स्कूल पर, या मास्टर पर, गाड़ीवान पर या दीवानजी पर; कुमुद पर या स्वयं स्वामिनी पर अथवा इन सारे समुदाय पर, या अपने आप पर ?—पारो खुद नहीं जानती, पर पारो का रोम-रोम गुस्से से भींज उठता है ! यह कैसा गुस्सा ?

और उस गुस्से में भीज कर पारो ने जब मन-ही-मन कसम खाई कि अब वह हर्गिज उसकी टोह में बाहर न निकलेगी, तब वह कमर में अपने अंचल का फेंटा बाँधकर झाड़ू देने लगी। झाड़ू देना अपने कमरे से उसने शुरू किया , पर जब अपने घर में दे चुकी, तब बगल में जो कमरा पड़ता था, उसके सामने जाकर भी वह अन्दर घुस न सकी। फिर वह दूसरी ओर मुड़ी , पर इसबार श्यामा से उसकी आँखें चार हुईं और श्यामा ने विहँस कर पूछा—क्यों पारो, आज क्या है कि इतनी सबेर झाड़ू दे रही हो ! क्या कोई तुम्हारे घर मेहमान आनेवाले हैं ?

—मेहमान !—पारो का रंज भीतर-भीतर घुटने लगा और उसी घुटन में वह बोल उठी—हाँ, मेहमान के लिए ही तो झाड़ू दे रही हूँ, मगर मेरे नहीं—तुम्हारे मेहमान जो आनेवाले हैं, शामूदीदी ! मेहमान बसाने का जब दिन आयगा, तब मैं तुमसे पूछ लूँगी ! क्यों , ठीक रहेगा न ?

—मैं सब जानती हूँ पारो, सब जानती हूँ—श्यामा व्यंग कसती हुई बोली—मगर मेहमान मेहमान ही रहेगा, आखिर ! जिस पंछी को डैना लग चुका है, उसे तुम किसी भुलावे में रोक नहीं सकती !

—मैं नहीं, तो तुम तो रोक ही सकती हो, शामूदीदी !—पारो बात में चूकनेवाली न थी, उसने जरा तरल होकर ही कहा—क्या तुम जानती नहीं कि जो तोता एक बार पिंजड़े में रह चुका होता है, वह डैना रहते हुए भी, पिंजड़े से उड़ा देने पर भी, कहीं बिलम नहीं सकता !

अफीम का नशा इसे ही कहते है, शामूदीदी ! और, वह अफीम घोलना तुम अच्छी तरह जानती हो !

श्यामा को तुरत उत्तर देते नहीं बना, पर उसने ज्योंही घूमकर दूसरी ओर देखा, वह ठक् से हो रही—यह क्या, आप—आप, नरेन बाबू, आज रास्ता कैसे भूल पडे ?

—रास्ता भूलकर नही, ढूँढकर आया हूँ, श्यामा—आगंतुक ने उत्तर में कहा—जानता हूँ कि रास्ता बनाये बनता है ! और जब कभी उस रास्ते पर जमदूत की तरह अकड़कर कोई खड़ा हो जाता है तब उसे धक्का देकर भी रास्ता बनाना जरूरी हो उठता है !

इसका जवाब श्यामा से देते न बना , पर जवाब मिला ऊपर से ! प्रभावती रेलिंग के सहारे किसीकी प्रतीक्षा में ही जैसे खड़ी थी ! उसने आगंतुक और श्यामा के बीच की सारी बातें सुनीं और ऊपर से ही उस आगंतुक के प्रति कहा—जिस तरह सरस्वती-मेला के दिन तुमने रास्ता बनाया था, नरन ! तुम ठीक कह रहे हो ।

नरेन बाबूसाहब का पुत्र है । देखने में सुन्दर, सजाहुआ गठीला बदन, जैसे वंश गौरव का सारा दर्प उसकी आकृति पर आकर छा गया हो ! उम्र कोई अठारह-उन्नीस साल की होगी—मैट्रिक में दो बार फेल कर अब संगीत-कला में निपुण होना चाहता है । आज जाने किस अभिप्राय से वह अपनी चाची से मिलने आया है । पर चाची के आदर-सभाषण की बात तो दूर, उसके घाव को ऐसी जगह और इस तरह उसने छू दिया कि उसका रोम-रोम वितृष्णा से भर उठा ! फिर भी अपने भाव को छिपाते हुए उसने कहा—हाँ चाचीजी, आपने कुछ झूठ नहीं कहा—ऐसा बनाना ही पड़ता है, चाचीजी ! पर,मैं आया था आपका आशीर्वाद लेने, उस आशीर्वाद को न देकर···

—आशीर्वाद तुम्हारे लिए सुरक्षित है, नरेन—प्रभावती हँस पड़ी और हँसकर ही बोली—सब तरह से सुरक्षित है ! पर यह क्या, रुक क्यों गये ! आओ, ऊपर आओ, चाची को प्रणाम करो, आये हो तो आशीर्वाद लो, मुँह मीठा करो, कुछ हँसो, कुछ हँसाओ। तुमसे और क्या कहूँ ! तुम चौधरी-वंश के दीप हो, नरेन !

नरेन सीढ़ियों की राह ऊपर की ओर बढ़ा। श्यामा चौके की ओर बढ़ी। वह समझ गई कि अचानक अपने घर जो मेहमान आ गया है, उसका मुँह मीठा कराना ही होगा। पर, पारो अब तक झाड़ू लिये हुए उसी जगह ज्यों-की-त्यों खड़ी है ! उसे, जैसा कि कई बार पहले मेले में घोड़े से कुमुद के कुचलने की बात सुन चुकी है, स्मरण हो आया। तभी उसे लगा कि कुचलनेवाला और कोई नहीं-यही नरेन हो, जो अभी अपनी स्वामिनी की बातों से स्पष्ट हो चुका है। तब उसके रोष की सीमा न रह गई, पर उसका रोष टिक न सका ! ज्योंही कुमुद ने अंतःपुर में प्रवेश किया, त्योंही पारो उसकी ओर दौड़ पड़ी और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर बोली—ओह, आ गये कुमुद तुम आ गये ! बड़ा मजा आया होगा तुम्हें, स्कूल के लड़कों के बीच बैठकर ! मगर आज तुमको भूख भी खूब लगी होगी ! कैसे हैं तुम्हारे मास्टर ? क्या वे भी बेंत लेकर बैठा करते हैं ?

कुमुद के सामने प्रश्नों की झड़ी-जैसे लग गई। वह जाने और कितनी देर तक पूछती, पर उसे ऊपर से स्वामिनी की आज्ञा सुन पड़ी—पारो, कुमुद को ऊपर लिवाते आओ, और सुनो—श्यामा से कह दो कि गरम-गरम जलपान की सामग्री दो रकाबियों में बहुत शीघ्र यहाँ आ जाय !

पारो कुमुद को लेकर ऊपर की ओर चल पड़ी।

१०

नरेन्द्र जब-जब अपनी चाची प्रभावती के घर आया है, तब-तब प्रभावती ने उसके आदर-सत्कार में अपनी ओर से कोई कोर-कसर नहीं रहने दी है। वह जानता है कि ऐसी स्नेहमयी चाची को पाकर उसके मन में आनंद-उल्लास की निर्झरिणी प्रवाहित होने लगती है। उसे न केवल उस चाची से स्नेह-संभाषण ही मिलता है, वरन् जब-तब उसे जिन चीजों की आवश्यकता पड़ती है, प्रभावती उसकी पूर्त्ति इतने उल्लसित हृदय से करती है कि नरेन्द्र का आनद मानो बाँसों फॉदने लगता है, जो बिलकुल स्वाभाविक ही है।

नरेन्द्र उस दिन भी किसी खास उद्देश्य से ही आया था। पर, अंतःपुर में प्रवेश करते ही उसके साथ जो संभाषण चल पड़ा, उसमें निहित प्रच्छन्न व्यंग से वह केवल क्षुब्ध-व्यथित ही नही हुआ, वह आश्चर्य-चकित हो सोचने लगा कि उसकी स्नेहमयी चाची इतना गहरा व्यग भी करना जानती है! इसकी प्रतिक्रिया कुछ दूसरे रूप में ही हुई! यदि वह हृदय का पवित्र और विचार का उन्नत होता, तो पश्चात्ताप के साथ स्वीकार लेता कि मेला में जो उसने धृष्टता की थी, वह अवश्य ही

अशोभन और उत्पीड़क रहा। पर, उसके हृदय में ऐसी बात आई नहीं, वरन् उसे लगा कि उस व्यंग के भीतर उसके पौरुष को जिसने ठेस पहुँचाई है, उसके भीतर मन का कलुष ही दीख पड़ता है,और-कुछ नहीं। फिर भी जो चाची इतने दिनों मे उसके प्रति सदय रही है, जिसने उसके मनुहार की कभी अवज्ञा न की, जिससे वह भविष्य में बड़ी-बड़ी आशाएँ पाले हुए है, उसका सहसा अनादर करके वह जा ही कैसे सकता है भला! ऐसा सोचकर ही वह ऊपर गया और अपनी चाची के प्रति दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन करते हुए क्षुब्ध होकर बोला—गरम-गरम जलपान की तो अब जरूरत नहीं रही, चाचीजी, वह तो आपकी गरम बातों से ही पूरी हो चुकी है।

प्रभावती ने उन बातों को सुनकर भी ऐसा भान किया कि जैसे उसने कुछ सुना ही नहीं हो। वह सिर्फ हँस उठी और हँसी बिखेरते हुए बोली—यह तो बताओ नरेन, दीदी अच्छी है न? तुम तो अच्छे रहे न?

- आपकी कृपा है, चाचीजी—नरेन का रोष भीतर में ऊधम मचा रहा था; पर बाहर से उसे वह बलपूर्वक रोकने की चेष्टा कर रहा था, बोला—मै अच्छा हूँ या नहीं—यह तो आप देख ही रही हैं। दीदी का अनुमान मुझसे ही लगा सकती है; पर यह तो बतलाइए कि आप क्यों दुबली दीख रही हैं?

—दुबली!—प्रभावती हँस पड़ी और बोली—यह तो तुमने खूब कहा, नरेन! जब मुझे तुम दुबली कह रहे हो, तब मोटी तुम किसको कहोगे—यही समझ में नहीं आता! जान पड़ता है कि दीदी भी ठीक इसी नजर से तौली गई होंगी।

—तौल तो मुझ-सा गँवार कैसे जान सकता है, चाचीजी! - नरेन कहता चला—उसका पता तो तब चलेगा, जब आप चलकर अपनी आँखों से उन्हें देख लेंगी! पर आपने तो जाने क्यों कसम खा ली है कि सारे संसार का आप चक्कर काटेंगी, पर वहाँ न जायँगी!

—क्या सारे संसार से वह स्थान भिन्न है नरेन ?—प्रभावती ने हँस कर पूछा ।

—भिन्न-अभिन्न तो मैं कह नहीं सकता, पर जिस दिन इन चरणों का रज वहाँ मैं देख पाता, उस दिन मैं कह सकता कि मेरा खयाल गलत था ! ••पर मुश्किल तो यह है कि मेरा खयाल कभी गलत नहीं हो सकता। क्योंकि मैं जानता हूँ कि आपकी नजरों में हमलोग अँगरेजी शिक्षा-दीक्षा पाकर पूरे म्लेच्छ हो गये हैं । हमलोग खाद्य-अखाद्य खाने में परहेज नहीं करते, छुआछूत का भूत हमलोगों से पाँच कोस दूर हट गया है—और आप हविष्य-सेवन करती हैं, मिट्टी और पत्थर को देवता समझकर पूजा करती हैं। पर आपके सामने जीवित प्राणी का कोई मूल्य नहीं। पत्थर को पूज-पूजकर जिस हृदय को आपने पत्थर बना लिया है, उस हृदय में मुझ-जैसे अधम प्राणी का विचार ही कैसे उठ सकता है !

इसबार प्रभावती ने कोई उत्तर नहीं दिया, पर उसकी तीखी बातों से रोष प्रकट न कर वह खूब जोर से खिलखिलाकर हँस पड़ी। लगा जैसे खिलखिलाती हँसी में उसके वचनों का सारा विष उसने डुबो दिया है।

नरेन का वाण तरकस में इस तरह खाली जायगा, इससे उसका छिपा हुआ दर्प उभर उठा। वह कुछ बोलना ही चाहता था कि पारो के साथ कुमुद के वहाँ आ पहुँचने पर उसका ध्यान उधर जा लगा।

कुमुद आज प्रसन्न था, पारो उसे नहला-धुलाकर, साफ कपड़े पहनाकर, कंघी से केशों को सँवार मनोज्ञ बनाकर लाई थी। आते ही उसने कुमुद की ओर से कहना शुरू किया कि इसे तो स्कूल बड़ा ही पसंद आया, खास कर बूढ़े गुरुजी की सज्जनता देखकर •••

—कुमुद, इन्हें प्रणाम करो—प्रभावती ने नरेन्द्र की ओर उँगली से संकेत करते हुए कहा—किसी सज्जन से भेंट होने पर अभिवादन करना चाहिए । यह शिष्टाचार है, जिसका पालन होना ही चाहिए।

कुमुद ने आँख उठाकर नरेन्द्र की ओर देखा; पर उसकी आकृति में कुछ ऐसी बात देखी, जिससे उचित रूप में वह अभिवादन तो कर नहीं सका, केवल उससे आज्ञा-पालन की रस्म ही अदा की गई।

पारो की आँखें विहँस उठी। पर उन विहँसती आँखों मे यह पता न चला कि अभिवादन करनेवाले की अज्ञता ही उसका कारण थी, अथवा अभिवादन जिसके प्रति किया गया था, उसके निरादर से उत्पन्न प्रसन्नता ही उसका कारण थी!

पर अभिवादन का निरादर नरेन्द्र के रोम-रोम से प्रकट हो उठा और जिस रोष के कारण वह बोलने-बोलने को होकर कुछ बोल न सका था, अब उससे चुप न रहा गया। वह बोल उठा—यह बालक, चाचीजी, यह बालक कहाँ से आया? इसे तो कभी यहाँ देखा नहीं। कौन है यह?

इसी समय श्यामा दो रकावियों में जलपान का सामान लेकर आ पहुँची। उसने एक को नरेन के सामने तिपाई पर रखा और दूसरी कुमुद के सोफा सामने की छोटी तिपाई पर रख दी!

प्रभावती ने नरेन से कहा—देखो तो नरेन, जलपान ठीक बना है या नहीं? बहुत दिनों पर आये हो, शायद पसंद होगा या नहीं—मैं कह नहीं सकती।

—आप बातों को टालना खूब जानती हैं!

—खूब जानती हूँ—प्रभावती ने अन्यमनस्क भाव से कहा—नहीं तो नरेन! तुम कुछ पूछो और मैं उसका उत्तर न दूँ—यह कैसे हो सकता है!

—तो क्या आपने कुछ सुना ही नहीं?—नरेन ने कहा—खैर, मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह कौन है, कहाँका है, किस जात का है, और किस उद्देश्य से यह यहाँ रखा गया है...क्या मैं जान सकता हूँ?

—क्यों नहीं—क्यों नहीं, नरेन !—प्रभावती ने निसंशय भाव से उत्तर में कहा।

—आप तो इसे जानते है, नरेनबाबू !—पारो बोल उठी।

—मै ? मै ?—नरेन के ओठ कुछ हिले, उनपर हँसी की एक झलक भी दीख पड़ी, पर वह झलक क्षण भर में जाती रही, और जरा रूढ़ होकर बोल उठा—जानने को संसार में बहुत-कुछ पड़ा हुआ है, मै इसे जानता होता, तो फिर पूछता ही क्यों ?

—अच्छा, जरा गौर से देखिए तो नरेनबाबू—पारो ने ही कहा—जान तो नहीं सकते, पर पहचानते तो जरूर हैं ! मै—मै......

प्रभावती ने बीच में ही बात काटकर कहा—पारो, जरा दौड़कर कुछ दो-चार तरह के मुरब्बे भी ले आओ। नरेन को मुरब्बा अधिक भाता है। क्यों नरेन ?

—जी, लाई !—कहकर पारो चलने को तैयार हुई, तभी नरेन बोल उठा— ठहरो, मुरब्बा मैंने बहुत खाया है, तुम्हे लाने की जरूरत नहीं ! मैं बुझौअल बूझने नहीं आया हूँ ! मगर मै जानना चाहता हूँ कि यह कौन है !

प्रभावती स्वय उठकर नीचे की ओर चल पड़ी।

—आप तो खूब है नरेनबाबू—पारो ने ही जवाब दिया —इसको अबतक नहीं पहचाना ? इतने दिनों में ही इसे भूल गये ? खूब जो भूलनेवाले ठहरे !

—भूलता हूँ ?

—हाँ, भूलते हैं, भूलते यदि नहीं, तो भुलाने का प्रयत्न जरूर करते हैं ! आपको याद है—आप सरस्वती मेला में रामपुर गये थे न ?

—गया क्यों नहीं था !

—क्या आपका घोड़ा मेले में भड़क उठा था ?

—हाँ, उठा था तो जरूर, मगर इसका मतलब !

इस बार पारो हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही कहा—भड़कने का परिणाम जिसपर मै गुजरा और जिसकी पीठ आपके चाबुक चलाने की गवाही.... ..

—ओह, तो क्या यह वही लौडा है ?—नरेन्द्र ने दाँतों से अपना ओठ दबाया।

—हाँ, यह वही लोडा है, जिसकी पीठ आपके चाबुक का इजहार अब भी कर रही है ! देखिए न जरा !—पारो हँस पड़ी और हँसकर ही कहा—शायद उस चाबुक का निशान अब भी आपमें दया ने आये !

पारो जरा रुककर फिर कुमुद से बोली—क्यों जी लौंडे, जरा नरेनबाबू को अब भी तो पीठ दिखलाओ ! जानते हो, अगर नरेनबाबू का चाबुक तुम्हारी पीठ पर नहीं पड़ा होता.... .

प्रभावती स्वयं एक तश्तरी में तरह-तरह के मुरब्बे लाकर नरेन के आगे रखती हुई बोली—वाह, यह तो खूब रहा, तुमने तो जलपान में हाथ भी नहीं लगाया, नरेन ? देखो, ठण्ढा हो गया; मगर छोड़ो उसे, ये मुरब्बे मैंने खुद अपने हाथों बनाये हैं, नरेन, जरा चखो भी तो !

—जिस घर में भिखमंगे को आसन दिया जाता है, वहाँ ... .. रहने दीजिए चाचीजी, इतना आदर मुझे नहीं चाहिए। जो सामने विराजमान है, उसे ही ये मुरब्बे मुबारक !

नरेन्द्र उठ खड़ा हुआ और बिना एक शब्द बोले ही वहाँ से चल पड़ा। उसी समय प्रभावती सहज सरल भाव से बोल उठी—तुम भूलते हो नरेन ! यहाँ न कोई भिखमंगा है, न राजा ही। कब किसके भाग्य में क्या बदा है, यह तो जाना नहीं जा सकता; जानने का कोई उपाय भी नहीं है। कब किस पर क्या गुजरेगा—यह तो हम-तुम जान भी नहीं

सकते, फिर किसीको छोटा समझना और किसीको बड़ा समझना—यह तो बुद्धि-दोष ही कहा जायगा। मनुष्य-मनुष्य समान है और सबको ऐसा ही समझना चाहिए।

पर नरेन्द्र को प्रभावती की बातें कुछ रुची नहीं। वह अपने ढंग में बोल उठा—जो जैसा है, उसे वैसा न समझना बुद्धि-दोष होगा, चाचीजी! आप उल्टा ही अर्थ लगा रही है! मै देखता हूँ कि आपमें बड़ा परिवर्त्तन हो गया है! आपने अपने मन में निश्चय कर लिया है कि चौधरी-वंश की जो मर्यादा आजतक चली आई है, उसे आप विनष्ट करके ही दम लेंगी! आज जब एक भिखमंगा आपके घर सम्मान पा सकता है, जिसके गोत्र-वंश का भी ठिकाना नहीं, तब आपने कुछ कहना ही निरर्थक होगा!

प्रभावती के मुख का भाव सहसा कठोर हो उठा। उसने इसबार कुमुद की ओर दृष्टि फेरी और उसके अंतर के हलचल की प्रतिक्रिया उसकी आकृति पर अंकित देखकर वह मर्माहत हो उठी। प्रभावती को लगा कि उसके अंतर के भावों में द्वन्द्व आ छिड़ा है, जहाँ एक ओर अपने वंश का प्रतिनिधि दुर्धर्ष नरेन्द्र है और दूसरी ओर नाम-गोत्र-हीन एक ऐसा बालक, जिसके अंग-प्रत्यंग और प्रत्येक भाव-विचार मे उसका औरस कमल प्रतिभात हो उठा है—यह द्वन्द्व उसके लिए असाधारण हो उठा! पर जिस नाम-गोत्र-हीन बालक ने उसके मन और मस्तिष्क को मथ डाला है, वह भिखमंगा हो, चाहे जो भी हो—एक मनुष्य के नाते क्या कोई मुँह पर उसका अपमान कर जाय और उसकी अभिभाविका मौन-धारण कर उस अपमान को प्रश्रय दे—यह प्रभावती के लिए असह्य हो उठा। वह अपने आपको संयत रखते हुए सहज सरल भाव से बोली—निरर्थक-सार्थक मै कुछ नहीं जानती, नरेन! मैने उस दिन देखा कि तुम्हारे घोड़े की लपेट में आकर जो बालक जीवित बच गया, तभी मुझे भगवान का स्मरण हो आया कि वह कितने दयालु हैं। और जब

तुमने घोड़े से उतरकर सपासप उस बालक की पीठ पर चाबुक दे मारा; पर वह निर्दोष बालक न रो सका और न मारनेवाले से उसने कुछ गुहार ही की, तब मुझसे न रहा गया। उस समय मैंने यह भी नही जाना कि मुझे इस अवस्था में क्या करना चाहिए। मैं बढ़ी, उससे नाम-धाम पूछा और यह जानकर कि उस रात में निस्संग-निरुद्देश बालक कहाँ-कहाँ की खाक छानेगा—मैं उसे अपने साथ लिवा लाई! मैं सार्थक-निरर्थक कुछ नही जानती, मैं इतना ही जानती हूँ कि मैंने जो-कुछ किया है, या जो-कुछ मैं कर सकूँगी—वह अपनी इच्छा से नही, अन्तःप्रेरणा से ही हो सकेगा! नरेन, तुम तो अपने हो और अपने रहोगे भी; पर तुम जरा सोचकर देखो कि मेरी गलती है कहाँ?

नरेन्द्र हँसा, उस हँसी में उसका व्यंग चमक उठा। वह उठ खड़ा हुआ और चलने को उद्यत होकर उसने फिर से उस कुमुद की ओर रोषपूर्ण दृष्टि डाली। कुमुद अन्यमनस्क भाव से सिर झुकाये पड़ा था। नरेन बोल उठा—गलत-सही का फैसला मैं नहीं, और कोई करेगा! आप तो कुछ करती नहीं, अंतःप्रेरणा से वह आप-से-आप हो जाता है! वह अंतःप्रेरणा कौन-सी बला है—मैं यह भी तो नही जानता। अच्छा तो, आप आराम करें और मैं चला।

नरेन्द्र नीचे की ओर चल पड़ा। प्रभावती भी हड़बड़ाकर उठी और उसको मनाने के लिए आगे बढ़ती हुई चल पड़ी; पर नरेन तेजी से नीचे उतर चुका था, प्रभावती ऊपर से ही बोल उठी—इतना तुमने दुख मान लिया नरेन, कि चाची के हाथ का मुरब्बा भी तुम छू न सके! चाची को तुमने इतना पत्थर समझ लिया, नरेन?

—पत्थर नहीं,—साक्षात् देवता!—दूर से ही हवा में तिरता हुआ उसका स्वर प्रभावती ने सुना।

पारो नीचे थी, वह चुप न रह सकी, बोली—ठीक कहा नरेनबाबू, पत्थर नहीं, साक्षात् देवता! अगर आप इस देवता को पहचान पाते!

प्रभावती कुछ क्षण तक उस जगह ज्यों-की-त्यों खड़ी रही, फिर वहाँ से अपनी जगह लौट आकर बोली—कहाँ गई पारो, ले जा यहाँ से जलपान !

फिर वह प्रभावती मधुर मुस्कान लेकर कुमुद के पास आकर बोली—क्या तुम भी रंज हो कुमुद, जलपान तो तुमने योंही पड़ा छोड़ दिया है ?

—मैं अकेला कैसे खाता।

—देखो न, व्यर्थ की झड़ी लगा गया वह—प्रभावती बोली—तुम बड़े भूखे होगे, कुमुद ! ठहरो, ये सारी चीजें ठण्ढी पड़ गई; गरम-गरम मँगवाती हूँ। अरी, पारो ! •

—नहीं, गरम-गरम की जरूरत नहीं, भूखे पेट में यह भी क्या कुछ कम मीठा लगेगा —कुमुद ने कहा—मेरी तो आदत है, इससे भी ठढा .

—नहीं-नहीं,—प्रभावती उसकी बातें समझ गई, इसलिए उसे आगे कहने का अवसर न देकर बोली—देखो, फिर वही बात ! पुरानी बातें छोड़ो कुमुद ! मैं तो तुमसे कई बार कह चुकी—जब जैसा तब तैसा ! इतना ही सदा खयाल रखो। पारो......

पारो ने दूसरी तश्तरी में जलपान की चीजें लाकर कुमुद के सामने रखी और पहले की दोनो तश्तरियाँ लेकर चल पड़ी।

कुमुद खाने लगा। प्रभावती उसके मुँह की ओर निहारने लगी। प्रभावती के मन का द्वन्द्व कब और क्योंकर शांत हुआ, उसे उसका कुछ पता भी न चला।

११

रामपुर में एक पाठशाला बहुत दिनों से चली आ रही थी। उसे वहाँ के नन्दलाल गुरुजी ने स्थापित किया था। वह खानगी तरह की पाठशाला थी। पीछे चलकर बाबूसाहब की संतान-प्राप्ति की खुशी में, विक्रमगंज इस्टेट से भी गुरुजी के लिए एक वृत्ति मिलने लगी। यों गुरुजी की आमदनी प्रत्येक लड़के की फीस तो थी ही, शनिवार को सभी लड़के पाठशाला को गोबर से लीप-पोतकर गणेशजी की पूजा करते और अपने-अपने घर से उस पूजा में अक्षत-बतासे-केले के साथ-साथ नकद एक पैसा भी लाते, जिसे शनिचरा का पैसा कहा जाता। गुरुजी को मासिक फीस के अलावा, प्रत्येक शनिवार को, बँधा हुआ 'सीधा' मिलता, जिसमें सेर भर चावल, दाल, नमक और आलू-परवल, लौकी, या जो सामयिक तरकारी होती, रहते थे। इस तरह गुरुनंदलाल को खाने-पीने में एक पैसा भी अलग से खर्च नहीं करना पड़ता। उसके दिन बड़े आनंद और हँसी से कट रहे थे....

पर वह स्वभाव से ही साधु-प्रकृति व्यक्ति था। उमर के साथ-साथ विद्यार्थियों के प्रति उसकी करुणा भी बढ़ती चली और बड़ी दौड़-धूप के

बाद, अपनी ओर से रास्ते का खर्च उठाकर, कुछ किरानियों मे पान-पत्ते के खर्च का भी प्रबंधकर, वह पाठशाला अपर प्राइमरी में परिवर्तित हुई। अब एक की जगह तीन शिक्षक नियत हुए--उनमें दो, ट्रैंड शिक्षक के नाते, ऊपर दर्जे में रहे, और नंदलाल गुरुजी पहले-जैसा बाल-वर्ग के बीच ही पड़ा रहा! बोर्ड-स्कूल हो जाने पर तनखाह तो कुछ जरूर बढ़ी; पर छात्रो की फीस और बाहरी आमदनी में हिस्से लगने लगे—यहाँ तक कि उसे जो सीधा मिला करता, उसमे भी खलल पड़ा। उसके स्वार्थत्याग का फल यह हुआ कि जो लड़के, लोअर दर्जा पास करने पर, घर बैठ जाते थे, वे अब ऊँचे दर्जे में पढ़ने को उत्सुक हुए। नंदलाल गुरुजी को, आर्थिक क्षति होने पर भी, प्रसन्नता ही मिली, कुछ दुख नही हुआ......

कुछ दिनों के बाद, जब अपर प्राइमरी के कुछ लड़को को परीक्षा-बोर्ड से छात्रवृत्ति मिली और सिर्फ दो लड़कों को छोड़कर सभी परीक्षोतीर्ण हुए, तब उस नन्दलाल गुरुजी को चिंता सवार हुई कि उस स्कूल को माध्यमिक अँगरेजी स्कूल कैसे बनाया जाय। सरकारी अफसरो से, दौड़-धूप करने के बाद, मालूम हुआ कि नकद पाँच सौ रुपये रिजर्वफण्ड मे जमा कराने के बाद मकान और फर्निचर यदि पब्लिक की ओर से बना देने का प्रबंध किया जाय, तो सरकार स्कूल खोलने की इजाजत दे सकती है। नन्दलाल ने सुना तो उसकी हिम्मत पस्त हो गई, पर धुन का पक्का आदमी चुप कैसे रह सकता था? तुरत गुरुजी ने दरवाजे-दरवाजे की फेरी लगाई और बाबूसाहब के यहाँ दरबार करना शुरू किया। फल यह हुआ कि मकान केलिए सामान मिल गये, फर्निचर के लिए शिशम और आम के वृक्ष मिले और नकद पाँच सौ बाबूसाहब से नहीं, रानी प्रभावती से गुप्तदान में मिले, आगे चलकर और जो आर्थिक कठिनाई आई, वह भी प्रभावती के दिये गये द्रव्य से दूर हुई।

नंदलाल गुरुजी की पाठशाला अब मिडल इंगलिश स्कूल में परिवर्तित

हो चुका थी। बाहर से रोबदार हेडमास्टर और शौकीन तबीयत के सेकण्डमास्टर एवं हेडपण्डित और सेकण्ड पण्डित नये-नये आये; पर प्राइमरीपाठशाला का नंदलालगुरुजी अपनी जगह अचल-अटल था, न कोई उसकी गद्दी का हकदार समझा गया और न उसकी जमी हुई प्रतिष्ठा पर किसीने उँगली उठाई।

पर नंदलाल में विद्या का चाहे जितना अभाव हो, उनका प्रखर बुद्धि और गहरे अनुभव का परिणाम यह हुआ कि रोबीले हेडमास्टर को समय-समय पर उसकी बुद्धि और अनुभव का सहारा लेने को विवश होना पड़ता। उस समय नंदलालगुरुजी अपने हेडमास्टर से कहता—जी सर, यह तो कुछ नहीं-कुछ नहीं, आपलोगों की संगति और सहवास का फल है! वे जो मिस्टर कैलासनाथ डिपटी थे न, वे तो आला अफसर थे, क्या मजाल कि कोई भी गुरु उनके सामने खाँस तो ले! मगर वे मुझसे इतने खुश थे कि मुझे अपने दौरे पर ले जाते और दूसरे स्कूलों के हेड-मास्टर से कहते—देखिए, नंदलालगुरुजी भी एक मास्टर हैं। इनसे सबक सीखिए कि किस तरह स्कूल जमाया जा सकता है.... और उसके हेडमास्टर अपने सहयोगियों के साथ मिलकर कहते—नंदलालजी, आप का क्या कहना, आप तो किंग-मेकर ठहरे!

नंदलालजी प्रसन्न हो उठता, उसकी आँखें आनंद से थिरक उठतीं और गद्गद् कंठ से कहता--यह तो आपकी सज्जनता है। आखिर मैं यों किस लायक हूँ!

और सचमुच वह अब पढ़ाने के लायक रह नहीं गया था। उमर पचपन के करीब हो चुकी थी, आँखों में मोतिया-बिंद हो गया था, दो-तीन दाँत के सिवा सारे दाँत टूट चुके थे, केश दूध-जैसा सफेद दीख पड़ते थे। उसके तीन-तीन जवान बेटे मर चुके थे, पत्नी थी, वह भी एक छोटी-सी लड़की छोड़कर स्वर्गवासिनी हो चुकी थी! बुढ़ापे के साथ-साथ

पुत्र-शोक और पत्नी-वियोग से उसका मानसिक संतुलन यदा-कदा क्षुब्ध हो उठता, अन्यथा उसकी सज्जनता में किसी तरह का कभी अंतर नहीं आया।

जीवन के अठारह साल से पचपन तक अखंड रूप से नंदलाल गुरुजी ने उस विद्यालय में जो धूनी रमाई, उसके भीतर उसका जो भी स्वार्थ हो; पर इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि उस स्वार्थ से अधिक परार्थ की भावना उसमें कूट-कूटकर भरी पड़ी थी! आज उस स्कूल में जो छात्र आते हैं, वे उसके शिष्यों के ही वंशधर आते हैं और उन बंशधरों का परिचय जब उससे कराया जाता, तो वह हँसकर कहता---अरे, यह बात है, तेरा दादा हरदेव इतना नटखट था कि क्या कहना! अच्छा-अच्छा, मेरे पास आया है, तो विद्या तो मिलेगी ही··· ····

और उस दिन जब रानी प्रभावती के दीवानजी की गाड़ी स्कूल के हाते में आकर रुकी, तब नन्दलाल गुरुजी ही उनकी अभ्यर्थना में उपस्थित हुआ। और जब उसने उनके साथ एक नौ-दस साल का बालक देखा, तब उसके राजकुमार-जैसे दिव्य रूप को देखकर कुछ क्षण विस्मित हो उठा! पर दीवानजी चतुर व्यक्ति ठहरे। उन्होंने अपनी ओर से ही कहा—कहिए, नन्दलालजी, कुशल है न।

नन्दलाल ने नमस्कार करते हुए बड़े विनम्र भाव से कहा—जी हाँ, किसी प्रकार जी रहा हूँ। आपकी कृपा है। आज आपने कैसे दर्शन दिये? क्या यह बालक ···

—हाँ, इसे ही भर्त्ती कराने आया हूँ!

—यह तो सौभाग्य की बात है, पर रानीमाँ के अपने पुत्र......

—नहीं-नहीं, नंदलालजी!—दीवानजी ने लंबी साँस लेकर कहा—आज यदि उनके पुत्र कमलकुमार जीवित होते······

—हाँ, सच तो कह रहे है, दीवानजी!—नन्दलाल ने फिर से उस

बालक की ओर गहरी दृष्टि डाली और कहा—वे तो कब स्वर्गवासी हुए—मुझे स्मरण हो आया। मगर मैं बड़े हैरत में पड़ गया हूँ, जब मैं इस बालक को देखता हूँ! मैं तो समझ रहा था कि कुमारकमल के सिवा यह और कौन हो सकता है! क्या मैं गलत तो नहीं कह रहा हूँ, दीवानजी? भगवान झूठ न बुलायें तो यकीन मानिए—मैं इन्हें देखकर कमल के सिवा और कुछ सोच भी नहीं सकता! पर, यह है कौन?

—अच्छा, बातें तो होंगी ही—दीवानजी ने कहा—देखिए, आपके कमरे में लड़के धूम मचा रहे हैं। आप अपने कमरे में जाइए। मैं तब-तक हेडमास्टर से·······

—बेशक-बेशक—नन्दलाल ने खुश होकर कहा—हाँ, नाम तो वे ही दर्ज करेंगे। चला जाय।

नन्दलाल आगे बढ़ चला। दीवानजी ने कुमुद की उँगली पकड़े हुए उसके पथ का अनुसरण किया। हेडमास्टर उस समय अपने आफिस-कमरे में बैठे बड़े ध्यान से एकाउण्टरजिस्टर देख रहे थे; पर नन्दलाल ने भीतर घुसकर उनके कान में कहा—दीवानजी आये हुए हैं!

हेडमास्टर ने नन्दलाल की ओर आश्चर्य-भरी दृष्टि से देखा, फिर उनकी दृष्टि दरवाजे की ओर गई, वे उठ पड़े और अभिवादन करके बोले—पधारिए-पधारिए, रुक क्यों गये! आइए·····

टेबिल की दूसरी ओर एक साधारण-सी कुर्सी पड़ी थी। हेडमास्टर का ध्यान उस कुर्सी की ओर गया, पर उनकी आकृति क्षोभ से धूमिल हो उठी। लगा कि इतनी साधारण-सी कुर्सी पर किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति को कैसे बैठाया जाय! उनकी कुर्सी अच्छी और नई थी, क्षोभ का यह भी बहुत बड़ा कारण था! इसलिए वे अपनी जगह से हटते हुए बोले—नहीं-नहीं, उस पर नहीं, इधर इस कुर्सी पर विराजिए! आखिर आप तो संरक्षक ही हैं न, माननीय संरक्षक।

दीवानजी उनके अनुरोध की रक्षा न कर सके, बोले--वह तो मेरे लिए नही, विद्वान की कुर्सी है। उसपर मेरा अधिकार नहीं।

पर आपतो इस समय अतिथि है न।--नंदलाल गुरुजी बोल उठा--शास्त्र में कहा है--अभ्यागतो गुरु। और यह तो भारतीय संस्कृति की बात है।

--आज्ञा शिरोधार्य है, नंदलालजी--दीवानजी हँसकर बोले--पर, मेरा अनुरोध है कि हेडमास्टरसाहब ही अपनी गद्दी पर बैठें, यहाँ तो कुर्सी है ही--और वे रखी हुई कुर्सी पर आसीन हुए।

हेडमास्टर को अपनी गद्दी स्वीकार करनी पड़ी। कुशल-प्रश्न के बाद उन्होंने दीवानजी से पधारने का कारण पूछा। उत्तर में दीवानजी ने कहा--रानीमाँ ने कुसुद को पढने के लिए भेजा है, उनका आदेश--नहीं, अनुरोध है कि जिस तरह सबके लडके पढ़ते है, उसी तरह इसे भी पढाया जाय!

--यह तो हमारा परम सौभाग्य और इस विद्यालय का गौरव है। हमें सेवा का अवसर उन्होंने दिया है, इसकेलिए हम उनके आभारी हैं! परंतु यह विद्यालय तो सरकारी कायदे पर चलता है। इसलिए आवश्यक होगा कि इसका नाम एडमीशन-रजिस्टर में दर्ज करवाया जाय! क्यों, दीवानसाहब, यह ठीक तो रहेगा?

--जरूर ठीक रहेगा--दीवानजी बोले--स्कूल का जो नियम-कानून है, उससे अलग कोई काम नहीं होना चाहिए! नियम नियम है, वह सब केलिए समान है!

हेडमास्टर ने एडमीशन-रजिस्टर निकाला, और उसके पन्ने उलटते हुए बोले--मेरा खयाल है, इसका 'टी-सी' तो नही होगा। 'टी-सी' का अर्थ है कि जो लड़के किसी सरकारी या अर्ध सरकारी स्कूल से नाम कटा-कर किसी दूसरे स्कूल में पढने की इच्छा रखता है, उसके लिए पहले स्कूल मे एक लिखित सार्टिफिकेट लानी पड़ती है....

—पर इसने तो कहीं पढ़ा नहीं है……

—तब तो फर्स्ट एडमीशन ही इसका किया जायगा।—मास्टर ने इस बार कुमुद की ओर देखा, फिर उससे पूछा—क्या तुमने किसी स्कूल में पढ़ा भी है, किस दर्जे तक पढ़ा है……

कुमुद ने कहा—दर्जे की बात मैं नहीं जानता। चार साल होता है, मैं एक पाठशाला में बैठाया गया था।

—चार साल पहले……पाठशाला में—हेडमास्टर रुक-रुक कर बोले, फिर नंदलाल की ओर देखकर बोले—क्यों नंदलाल जी, आप तो जानते होंगे?

—मैं तो आज ही इस बालक को देख रहा हूँ—नंदलाल बोला, फिर बालक की ओर दृष्टि डाली और उस दृष्टि को वहीं गड़ाकर कहा—चार साल पहले…किस पाठशाला में, चार साल पहले पढ़ता था? क्या उस पाठशाला का नाम मालूम है?

—मैं नहीं बता नहीं सकता, गाँव का नाम तो याद नहीं—कुमुद ने सहज सरल भाव से कहा।

—कितने दिन उस पाठशाला में पढ़ा—यह याद है?—नंदलाल ने पूछा।

—हाँ, याद है क्यों नहीं! कुल दस दिन तो पढ़ा था; मगर फिर पढ़ने नहीं गया!

—क्यों नहीं गया?—हेडमास्टर ने पूछा।

—जो गुरुजी पढ़ाता था, उसने एक दिन कहा—तुम्हारी बुद्धि बड़ी मोटी है, तुम्हें विद्या नहीं आयगी। मुझे बड़ा रंज हुआ, और मैं फिर से नहीं गया।

—वह गुरुजी नहीं—नंदलाल का उस अलक्षित अमूर्त गुरुजी के प्रति रोष उबल पड़ा, बोला—वह राक्षस होगा—सचमुच वह ब्रह्म-राक्षस

नंदलाल आश्चर्य-चकित हो बाहर की ओर कुछ क्षण देखता रहा। उसे वैदिकयुग की एक पुरानी कहानी याद हो आई। वह प्रसन्न हो उठा और बोला—यदि आज्ञा हो तो मैं एक कहानी कह सुनाऊँ; पर कहानी के पहले मैं कुमुद को अपने कमरे मे बिठलाकर सभीसे परिचय करा देना चाहता हूँ। फिर कुमुद से कहा—आओ कुमुद, चलो, तुम्हे अपना कमरा दिखलाता दूँ—कहकर उसे लिवाते हुए बाहर गया। फिर कुछ क्षण के बाद लौटकर आया और कहानी, विना भूमिका बाँधे, कहने लगा—

'उपनिषद में यह कहानी आई है! सत्यकाम नाम का एक बालक ऋषि के आश्रम में विद्या-प्राप्त करने के लिए गया। ऋषि को प्रणाम कर निवेदन किया कि मै विद्या-प्राप्त करने आया हूँ। मुझे विद्या-दान कीजिए। ऋषि ने कहा—आज तुम थके-माँदे आये हो, आराम करो, खाओ-पियो, मैं पीछे तुम्हे बुला लूँगा! बालक सत्यकाम ने वैसा ही किया। जब दूसरे दिन वह ऋषि के सामने पहुँचा और फिर से उसने अपना निवेदन कह सुनाया, तब उस ऋषि ने उसका नाम-गोत्र पूछा। नाम तो उसने बतला दिया, पर गोत्र के संबंध मे उसने माँ की कही हुई बात सुना दी। उसने कहा—जब मैंने गोत्र के संबंध में अपनी माँ से पूछा, तब माँ ने कहा कि तुम्हारा गोत्र तो मैं खुद नहीं जानती, बेटा। मै उस समय दासी का काम करती थी। मैं युवती थी, जाने कितने आदमी मेरे यहाँ टिकते थे, जाने कितने की मुझे सेवा करनी पड़ती थी, तभी तुम गर्भ में आये……इस तरह पिता का नाम तो मे भी नही जानती। जाओ, ऋषि यदि पूछें, तो कहना—मेरी माँ का नाम जावाला है और मेरी बातें सच-सच सुना देना……यहाँ आकर नंदलाल कुछ क्षण चुप रहा, फिर कहने लगा—बालक की बातें सुनकर ऋषि प्रसन्न हो उठे और बोले—वत्स, तुमने सारी बातें सच-सच कह दी, अपना नाम सार्थक किया। मैं जान गया कि तुम ब्राह्मण के भिन्न अन्य नही हो सकते। जाओ, मैं तुम्हें स्थान

देता हूँ, तुम्हें विद्या-दान भी करूँगा। आज से तुम जावालसत्यकाम कहलाओगे!'

नंदलाल गुरुजी गंभीर हो उठा, फिर हेडमास्टर की ओर देखकर बोला—कुमुद की आकृति और स्पष्टवादिता तो आपने देख ही ली है, सर, आपको यह भो पता चल गया कि करुणा की मूर्ति जो स्वयं सरस्वती है, ऐसी रानीप्रभावतीदेवी ने इस बालक को अपने पवित्र अक में जब स्थान दिया है तब इसके गोत्र का परिचय न भी मिले, यह बालक विद्या का पूर्ण रूप से अधिकारी है .....

—परंतु—हेडमास्टर बोलकर सोचने लगे।

—कहिए, क्या कहते है मास्टरसाहब!—दीवानजी गंभीर भाव से बोल उठे—मै यदि जानता होता, तो नाम लिखाने का भार मै अपने ऊपर नही लेता! 'परंतु' कहकर आप जो चुप हो गये, उसका अर्थ छिपा हुआ नहीं रहा, मास्टरसाहब! आप शायद कहना चाहेंगे कि पिता के खाने में कौन-सा नाम पड़ेगा, यही न?

—आपने ठीक ही समझा, दीवानजी—हेडमास्टर जरा लज्जित-व्यथित होकर बोले—सरकारी कानून-कायदे तो मानने ही होंगे। यह तो वैदिक युग है नहीं—युगधर्म के अनुसार वे बच्चे, जिनके माता-पिता अज्ञात रहते है, दूसरों की दृष्टि में उपेक्षित समझे जाते है। मै ··मै···

—मैं की जरूरत नही-नंदलाल ने निश्शंक-निर्भीक होकर कहा-कुमुद को और कोई नहीं, नंदलाल गुरुजी ही पढ़ा सकता है। आप नाम लिखें या नही, उसे इस स्कूल में पढ़ने का अवसर दें या नहीं—मैं उसके पढ़ाने का भार अपने-आप पर लेता हूँ। चाहे मुझे फिर से दूसरा स्कूल बनाना पड़े, मै केवल इसलिए कि पिता का नाम-गोत्र मालूम नही—उस बालक को पढ़ने नहीं दूँ, जो मेरे पास विद्या पाने कलिए आया है, तो मै ऋषि का वंशज नंदलाल गुरुजी नहीं, चमार, हूँ, वह चमार, जो सिर्फ चमड़े का ही कारोबार करता है......

नंदलाल उत्तर की प्रतीक्षा में खड़ा न रहा, वह अपने कमरे की ओर चल पड़ा।

दीवानजी असमंजस मे पडे। हेडमास्टर की बुद्धि भी उलझ उठी, वे गहरे अंतर्द्वंद्व में फँस गये! उनकी व्याकुलता का अनुभव कर दीवान जी बोल उठे—सोचकर देखिएगा, अभी जल्दी क्या है! कुछ दिन क्लास में तो यो बैठ ही सकता है! यदि उसकी तबीयत लग गई, तो कोई रास्ता निकल ही आयगा!

—मुझे तो किसी बात में आपत्ति नही—हेडमास्टर ने सकुचाकर कहा—आपका सुझाव बड़ा सुन्दर है, मैं भी समझता हूँ कि यही ठीक रहेगा! बस, यही ठीक रहा। कुमुद को बराबर भेजते रहेंगे—रोकेंगे नही! क्यों?

—नहीं, रोकूँगा क्यों?—कहकर दीवानजी बाहर निकले, नंदलाल भी उन्हें विदा कराने को सामने आया। उन्हें देखकर दीवानजी बोले—मैं दो घटे में यहाँ आ जाता हूँ, छुट्टी तो चार बजे होती है न?

—हाँ, चार बजे ही होती है—नंदलाल ने कहा—लौटती बार उसे साथ कर लीजिएगा! अभी तो वह मेरे कमरे में बैठा है! ठीक है, मै दिखला देना चाहता हूँ कि किस तरह सभीको विद्या-ग्रहण करने का अधिकार है। और उसे विद्याधिकार करना ही होगा।

दीवानजी चल पड़े।

१२

कुमुद, जो अबतक बंद पड़ा था, स्कूल के वातावरण में जाकर धीरे-धीरे खुलने लगा। उसके मन में, महल के अंतःपुर में रहकर, जो एक वितृष्णा का भाव सजग हो उठा था, प्रभावती के स्नेह का स्पर्श उसके अंतर्मन में जमे हुए जिस कलुष को प्रांजल न बना सका था, वह अनायास ही धुलने लगा। उसे लगा कि अब वह जी उठा है, उसकी साँस निर्द्वन्द्व भाव से, बे-रोक-टोक चल रही है। स्कूल जाने में उसे रस मिल रहा था—वह रस जो जीवन के लिए अपेक्षित है, जिस रस के लिए बालवय में एक आकांक्षा रहती है—एक बेचैनी रहती है। कुमुद अबतक मुक्त वातावरण में रहता आया है, वह साधु-बैरागियों के बीच, लाख कष्ट झेलकर भी, विचरन्ति महीतले का जो आनंद उपलब्ध कर सका है, वह आखिर स्वर्ण-पिंजर में आबद्ध रह भी कैसे सकता है! प्रभावती के अंत पुर में छलकता हुआ स्नेह-घट का आस्वादन मिलने पर भी, उसका हृदय रह-रहकर उन्मुक्त वातावरण के अभाव में, विरस हो उठा था। मगर प्रभावती-जैसी स्नेहमयी नारी इतनी साधारण-सी बात कैसे न समझती! स्कूल का वातावरण उसकी दृष्टि में एक ऐसा साधन जँचा,

जहाँ कुमुद खुल भी सकता था और भविष्य का पाथेय संचित भी कर सकता था। प्रभावती अपने लक्ष्य में कुछ दूर तक नक सफल भी रही।

कुमुद जिस राजवंश का तौक अपने गले मे लटकाकर स्कूल आता था, उसकी कामना कौन नही करता? पर, कितने की वह कामना पूर्ण हो सकी है! और जब वह कामना पूर्ण होती दिखाई नही देती, तब उसका उपभोक्ता बहुलाश मे ईर्ष्या का पात्र हो उठता है! वहीं द्वेष की सृष्टि भी होती है! पर कुछ ऐसे भी मनुष्य होते है, यद्यपि उनकी संख्या न्यूनतम होती है, जो उपभोक्ता के भाग्य की सराहना ही केवल नही करते, उसे अपने स्नेह-दान से प्रियपात्र भी बना लेते हैं। ठीक यही बात स्कूल मे भी देखने में आई। कुमुद ने अपने दर्जे के साथियों में ऐसे लड़के भी देखे, जो एक-दूसरे के कानों में फुसफुसाकर उसके प्रति कटूक्तियों की झड़ी लगाया करते और प्रत्यक्ष रूप में उसकी चापलूसियों से मरहम-पट्टी लगाने में द्विधा का भी अनुभव नही करते! कुमुद इतने गहरे में कभी नहीं उतरता, वह प्रत्यक्ष को अधिक सत्य समझता, और जो प्रत्यक्ष नही है—उसे सत्य कहकर स्वीकार नही करना चाहता। इसलिए उसकी दृष्टि मे स्कूल के साथी सच्चे साथी थे और उन साथियों से, अवसर-अनवसर मिलकर, दो बाते कहकर, उनके बीच अपने राजसी जलपान की चीजों को बाँटकर वह परम सुख का आस्वादन करता।

कुमुद यदि आभिजात्य वंशीय बालक होता, तो उसी श्रेणी के बालकों के बीच उसे परितृप्ति मिलती, उनके साथ मिलने में ही उसका अहं संतुष्ट होता। यद्यपि स्कूल के अन्यान्य बालक उसे उसी दृष्टि से देखकर, उससे खुलकर मिलने नहीं पाते, वरन् उसके भाग्य पर उनकी लघुता मूर्च्छित हो उठती, तथापि कुमुद की ओर से कभी ऐसा न देखा जाता, जो उनके साथियों केलिए वितृष्णा का कारण हो। कुमुद की आकृति और प्रकृति में आभिजात्य का सौंदर्य तो था; पर उसकी व्यावहा-

रिकता में वह ऐंठन नहीं थी, जो सर्वसाधारण से पृथक् कर सकती। कुसुद कुछ ही दिनों में, अपने स्कूल के लिए एक प्रश्न बन गया—ऐसा प्रश्न, जिसका हल करना सहज नहीं।

पर इस तरह का कुमुद, कुछ ही दिनों के बाद, अपने साथियों मे घुलमिल गया। सबसे अधिक उसके मन का साथी बना एक बालक, जिसका नाम था दयाल।

दयाल गोसाईं जाति का दस-ग्यारह साल का बालक था। साँवले रंग का, पतला एकहरा बदन, देखने-सुनने में ऐसा कि वह सुन्दर तो नहीं कहा जा सकता, पर आँखें उसकी उपेक्षा नहीं कर सकती। कुछ आकृति में ऐसी चीज थी और व्यवहार में वह कुछ इस तरह का था कि उससे कोई भी दो बातें करने को ललक उठता। गोसाईं जाति का पेशा भी कुछ अजीब था! वह खेती करती है, सितुही और घोंघे का चूना बनाकर बेचती है और अवकाश निकालकर करताल हाथ में लिये आसपास के गाँवों में गीत गा-गाकर भिक्षाटन भी करती है। उसके गीत कुछ खास तरह के होते है, जिसमे सरवन [श्रवणकुमार] का गीत ही प्रधान होता है। अधिकांश में इस जाति के पुरुष गेरुआ रंग के कपड़े पहनते हैं। समाज में इस जाति का कोई उल्लेखनीय सम्मान नहीं, भिक्षुक श्रेणी के लोग जिस दृष्टि से देखे जाते है, ठीक उतना ही।

दयाल को कभी-कभी अपने घर के कामों मे भी हाथ बटाना पड़ता। तालतलैयों के किनारे-किनारे वह सितुही और घोंघे इकट्ठे करता, मौका पाकर मछलियाँ मारता, खेत से घास काटकर लाता और समय-समय पर अपने पिता के साथ गेरुआ पगडी बाँधकर आसपास के गाँव में गीत सुनाते हुए भिक्षाटन भी करता। इतना कुछ कर लेने के बाद, पढ़ने की प्रवृत्ति रहने के कारण, पिता की अनिच्छा रहते हुए भी, वह स्कूल आना कभी नहीं

छोड़ता। अवश्य उसके आने मे देर भी हो जाती, जिसके लिए गुरुजी का उपहास भी उसे सुनना पडता, फिर भी वह पढ़ने-लिखने में, अपने वर्ग मे किसीसे पीछे रहता।

कुमुद को सबसे अधिक आकर्षित किया उसी दयाल गोसाई ने। दयाल के पास ही कुमुद बैठा करता। एक दिन कुमुद अपने स्लेट पर पहाडे लिख रहा था। दयाल ने उस स्लेट पर एक नजर फेरी और देखा कि कुमुद से लिखने में कुछ भूल हो गई है, इसलिए वह बोल उठा—जरा नौ का पहाड़ा पढो तो, कुमुद!

कुमुद कहता चला—नौ इकाई नौ, नौ दूना अठारह, नौ तिहाई सत्ताईस, चौका छत्तीस

—बस-बस—दयाल ने इशारा करते हुए स्लेट पर दिखलाया—देखो तो भला, छत्तीस ठीक लिखा गया है?

—छत्तीस!—कुमुद ने दयाल की ओर ताका, फिर अस्फुटशब्द में आप-ही-आप दुहराता चला—इकतीस, बत्तीस तेतीस······चौतीस फिर जरा रुककर बोला—ठीक कहा दयाल, यह तो छत्तीस हुआ नही—हाँ, यह तैतीस है!

कुमुद ने चट मे तीन मिटाकर छ लिख दिया, फिर वह बोला—अब देखो, दयाल, छत्तीस ठीक हुआ न!

—हॉ, अब ठीक है।

—मगर, मुझसे तो ठीक होता नही, दयाल—कुमुद ने निस्संकोच स्वीकार किया—इतना रटकर पहाडा क्यों याद किया जाता है, मेरी समझ मे कुछ नहीं आता!

—ठीक कहा कुमुद—दयाल ने बडे सयत भाव से कहा—बहुत सी बातें समझ में नहीं आती, और समझ मे आ भी नही सकती, क्योकि हमलोग तो अभी बच्चे ठहरे। मगर गुरुजीने कहा था एक दिन, कहा था कि विद्या घोंकने से ही आती है! जो जितना घोंककर उसे अपना बना लेता है,

आगे चलकर वह वहीं जम जाती है। विद्या तो इसी तरह मेहनत करने से ही आ सकती है, कुमुद !

—मगर, मेरे गुरुजी ने कहा था, दयाल—कुमुद को पुरानी बात याद हो जाती है और उसे वह रुक-रुककर कहने लगता है—उसने कहा था कि मुझे विद्या नहीं आ सकती। क्यों कहा था, मैं आज तक भी नहीं समझ सका।

—सो तो मैं भी नहीं कह सकता—दयाल ने समझदार लड़के-जैसा कहा—मगर मुझे लगता है कि उसने योंही कह दिया होगा। ऐसी तो कोई बात नहीं दीखती कि कोई मेहनत करे और मेहनत का फल नहीं मिले ! और मैं तो देखता हूँ कि तुम पढने में कोई बुरे नहीं हो ? इतने ही कुछ दिनों में बहुत-से पहाड़े पढ़ लिये, अक्षरों का भी ज्ञान हो चुका है। जोड़-जोड़कर बहुतों का नाम लिख लेते हो। मैं जरा भी झूठ नहीं कहता। अच्छा तो, तुम अपना नाम तो लिखो भला ?

—नाम ?—कुमुद को उत्साह हो आया और वह लिखने लगा—कु-मु-द ! फिर बोला—यह लो, मेरा नाम !

—ठीक !—दयाल ने कहा—अब, जरा मेरा नाम भी तो लिखो भला !

—तुम्हारा नाम ? तुम्हारा नाम ?—कुमुद लिखने लगा—द-आ-ल। फिर स्लेट दिखलाते हुए कहा—यह लो तुम्हारा नाम।

दयाल ने देखा, पर उसने जो भूल पकड़ी, उससे वह हँस पड़ा, बोला—हाँ, यह भी एक तरह से ठीक है, कुमुद ! मगर मेरा नाम द-या-ल है, द-आ-ल नहीं। दयाल और दआल में तुम्हें क्या कुछ भेद नहीं मालूम पड़ता ? जरा सोचकर देखो तो !

कुमुद कुछ गंभीर हो उठा और अस्फुटशब्दों में दोहराते हुए बोला—दआल-दयाल, दआल-दयाल ! और फिर उमंग में आकर हँसते हुए बोला—ठीक कहते हो, दयाल ! अरे, दोनों में भेद है ! मगर बहुत थोड़ा-सा भेद है। ऐसा कि जल्दी में पकड़ा नहीं जा सकता ! मगर, मैंने इसे

पकड़ लिया—देखो, अब लिखता हूँ--और ,उसने इस बार 'आ' को मिटाकर 'या' लिख दिया और दिखलाते हुए कहा—देखो, अब तो ठीक हुआ न ?

इस बार दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े। हँसने की आवाज नन्दलाल गुरुजी के कानों गई। नन्दलालगुरुजी उस समय कुर्सी पर झपकी ले रहा था। वर्ग के लड़के कुछ तो लिख रहे थे, अधिकांश छिपे-छिपे कुछ-न-कुछ खेल रचते थे। उन दोनों की हँसी ने उनके खेलों में व्याघात डाला। उधर गुरुजी के सजग हो जाते ही वर्ग में एक बार सन्नाटा छा गया, फिर लड़कों की पढाई का स्वर गूँज उठा। गुरुजी की दृष्टि कुमुद और दयाल की ओर गई। कुमुद को तो वह कुछ कह न सका; पर सारा आक्रोश दयाल पर जा पड़ा और वह डपटकर बोला—क्यों बे, पढता तो खाक नही, दाँत निपोड़ने में बड़ा बहादुर !

गुरुजी ने जिसके प्रति ये बातें कही, उसपर इन बातों का जैसे कोई प्रभाव पड़ा नही। लड़के ऐसी बातें सुनने के अभ्यस्त हो चुके थे। दयाल ने गुरुजी का आशीर्वाद ही समझा। उसने सिर झुकाकर पढ़ने में मन लगाया। उत्तर देने की वहाँ आवश्यकता ही क्या थी !

कुछ क्षण के बाद, दर्जे के सभी लड़के मनोयोग पूर्वक पढने में दत्तचित्त दीख पड़े, त्योंही वृद्ध गुरु नन्दलाल की नाक बजने लगी। लड़कों का सामूहिक स्वर आकाश से उतरकर धीरे-धीरे पाताल की ओर धसने लगा। उसी समय दयाल ने कहा—कुमुद, तुम्हें जरूर विद्या आयगी। तुम भाग्यवान् हो, तुम्हे जरूर विद्या आयगी।

कुमुद ने इसबार दयाल की ओर आँखें गड़ाकर देखा, मानो उन आँखों से वह उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाश कर रहा हो। जो वाणी से व्यक्त नही किया जा सकता, वह आसानी से आँखें व्यक्त करदेती हैं। कुमुद को आत्मविश्वास का थोड़ा-सा रस मिला। वह जरा उल्लसित होकर बोल

उठा—अच्छा, दयाल, दो-चार नाम कहो तो, देखूँ, मै लिख सकता हूँ या नही ?

—क्यों नही लिख सकोगे ? -दयाल ने कुमुद की ओर ताका फिर कुछ क्षण मन-ही-मन सोचता रहा। उसके बाद बड़े संयत स्वर से बोला-पहले-पहल जब लड़के को लिखना सिखलाया जाता है, तब उसे अपना नाम, फिर पिता-पितामह के नाम-धाम-पता ही लिखने को कहा जाता है। गुरुजी तुमसे ऐसा ही लिखने को कहेंगे। सो, तुम लिखो न, देखूँ, ठीक-ठीक लिख सकते हो या नही ।

दयाल बोलकर कुमुद की ओर देखने लगा, पर कुमुद सिर झुका कर जाने क्या सोच रहा था। कुछ क्षण दोनों चुप हो रहे, मगर दयाल अधिक चौकस था, बोला—कुमुद, चुप क्यों हो गये ? सोच रहे हो कि पिता-पितामह का नाम नही लिख सकोगे ? जरूर लिख सकोगे। कोशिश तो जरा करो।

—पिता का नाम नही जानता !-कुमुद ने सिर झुकाकर सकुचाते हुए कहा।

--अरे, नही जानते ?--दयाल सहज भाव से बोला-वाह, कुमुद, यह तो खूब रही—तुम्हें पिता का नाम भी नही सिखाया किसीने ?

—नही !

—तो पितामह का नाम ?

—वह भी नही !

—पिता का नाम नही, पितामह का भी नही-दयाल ने चिंतित और आश्चर्य-चकित भाव से कहा—यह बात है ! इतनी साधारण-सी बात तुम्हें किसाने नही बतलाई ! आश्चर्य ! मगर, गाँव का नाम-पता तो लिख ही सकते हो-यही लिखो न, कुमुद !

—नाम-पता भी मैं नहीं जानता ।

कुमुद की आकृति धूमिल हो उठी। उससे आगे और कुछ न कहा गया, उसने सिर झुका लिया।

दयाल ने शायद इस ओर कोई लक्ष्य नहीं किया। यदि किया होता तो वह समझ जाता कि उसका न पूछना ही कही अच्छा होता। पर उसे कुमुद के उत्तर से संतोष न हुआ। इसलिए उसने कहा—क्या राजघराने में इतनी-सी साधारण बातें भी बतलाई नही जातीं, कुमुद! हम-गरीबों के घर, और कोई न भी बतलाय, माँ-बाप तो अपने बच्चों को सारे परिवार का नाम बतलाकर, अड़ोस-पड़ोस के नाम भी बतलाने में जरा चूकते नही ....राजघराने में किसीने तुम्हें.. .....

—मैं तो राजघराने का हूँ नही ......

--तो... . .. आश्चर्य और विस्मय से दयाल उसका मुँह ताकने लगा।

—मुझे तो कुछ भी पता नही कि मैं—कुमुद की आँखें भर आईं, पर उसने अपने आपको सँभालकर कहा—माँ-बाप को तो मैं जानता नही, गाँव-घर भी नहीं जानता... ...

दयाल कुमुद की ओर अब भी ताक रहा था। कुमुद की बातें उत्तरोत्तर उसे अधिक आश्चर्य में डाल रही थीं। उसने कुमुद को बीच ही रोककर कहा—यह क्या कह रहे हो, कुमुद? क्या तुम राजघराने के नही हो? रानी प्रभावती ....

—रानीमाँ की दया है मुझ पर—कुमुद की आँखे फिर से डबडबा आईं। उसने इसबार दूसरी ओर अपना मुँह फेर लिया।

दयाल ने इसबार कुमुद की ओर दृष्टि डाली और उसके निकट घिसक कर बैठते हुए उसकी पीठ थपथपाकर कहा—ठीक कहा कुमुद, सुना है कि रानीजी बड़ी दयालु हैं। जो खजाना नही चुका सकता, उसे वह माँफ कर देती है। और, जो भी उनके सामने पहुँचकर अपना दुखड़ा रो-रोकर सुना देता है, उसकी माँग वह पूरी कर देती है! रानी होकर भी वह

किसीसे परदा नही करती, जो अपने घर उन्हें आदर से बुलाता है, वहाँ वह तुरत पहुँच जाती है। क्या मै झूठ कह रहा हूँ कुमुद? तुम तो यह सब देखते ही होगे।

पर कुमुद की ओर से कुछ उत्तर न मिला। उसी समय स्कूल की आखिरी घंटी बज उठी। प्रत्येक कमरे से लड़कों की हड़बड़ाहट की आवाज भी नंदलाल गुरुजी के कानों पड़ी। वह बोल उठा—क्या यह आखिरी घंटी है?

—हाँ, यह आखिरी घंटी है—लड़कों में से एक बोल उठा।

—उँह, आखिरी घंटी!—नंदलाल जैसे फुफकारकर उठा—आखिरी घंटी का इन्तजार करते रहो। पढाई हो या नही, मगर दम साधकर आखिरी घंटी के इन्तजार में जरूर बैठे रहो! स्कूल क्या है, जेलखाना है! बच्चों पर कुछ खयाल नही, मगर नियम-कायदा दुरुस्त रहे! हुँह! मगर तुमलोग बैठे क्यों हो? हुकुम का इन्तजार है? क्योंकि क्लास-टीचर का हुक्म नही हुआ है! क्लास-टीचर!—इसबार नंदलालजी हँस पड़ा और हँसते-हँसते ही हुक्म दिया—जाओ, भागो!

नंदलाल उठ खड़ा हुआ। लड़के एक-एककर सिर नवाकर चलते बने। सबसे पीछे एक जोड़ी चली और उस जोड़ी को उसने अपने सामने सिर झुकाकर चलते हुए देखा, तभी वह बोल उठा—क्यों दयाल, कुमुद को नाम-धाम लिखना आ गया?

कुमुद सकपकाकर खड़ा हो गया। उसने एक बार गुरुजी की ओर दृष्टि फेरी और तुरत उसने सिर नीचे झुका लिया।

—हाँ, गुरुजी—दयाल ने गुरुजी को लक्ष्य कर कहा—कुमुद तो अपने-आप सब कुछ लिखने लगा है।

—सब कुछ!

—हाँ, सबकुछ, गुरुजी!—दयाल ने आत्मविश्वास के साथ, कुछ

आगे बढ़कर कहा—आप किसी दिन खुद देख लीजिएगा, गुरुजी ! मैं आपसे भला झूठ कह सकता हूँ !

—नहीं रे, नहीं—गुरुजी दो कदम आगे बढ़कर दोनों की पीठ दोनों हाथों से थपथपाते हुए बोला—दयाल की बात पर कोई भी विश्वास कर सकता है ! इसमे झूठ की बात कहाँ है ? आखिर नन्दलालगुरु के केश यों ही सफेद नही हुए हैं ! कुमुद जब तुम्हारे पास बैठता है, तब इतना तो यकीन है ही कि तुम्हारे सहवास का लाभ महाध्यायी को मिलेगा। तुम दोनों जीते रहो—जीते रहो।

नन्दलाल बाहर निकलकर ऑफिस की ओर बढ़ा और वे दोनों बाहर की ओर।

उस दिन कुमुद सीधे महल की ओर जा न सका। बाहर निकलकर कुमुद ने इधर-उधर दृष्टि फेरी। उसे लगा कि आज उसके हृदय का आकाश कुछ अधिक विस्तृत, कुछ अधिक निर्मल और कुछ अधिक आकर्षक हो उठा है। पर यथार्थ कारण का पता वह पा न सका। दयाल अब भी उसके साथ था। कुछ दूर तक एक ही रास्ते पर जाना पड़ता था उन दोनों को। अचानक कुमुद बोल उठा—दयाल, तुमने झूठ-झूठ गुरुजी को क्यों कह दिया कि मैं सब-कुछ लिख सकता हूँ। अगर उन्होंने कल लिखने को कहा और मैं न लिख सका, तो......

—तुम कैसे नहीं लिख सकोगे, कुमुद ?—दयाल ने अपने एक-एक शब्द पर जोर डालते हुए कहा—मैं तो देखता हूँ कि तुम किसी बात को बहुत जल्दी पकड़ लेते हो। तुममे पढ़ने का भी कम उत्साह नहीं। मैं तो जानता हूँ,अगर तुम्हारा पढ़ना अबतक रुका नहीं रहता, तो तुम ऊपर के दर्जे में आज पढ़ते होते ! मगर तुम्हारी कहानी... ..यह तो बड़े ताज्जुब की बात है कि तुम अपने माँ-बाप का प्यार न पा सके।

कुमुद ने आकाश की ओर ताका। उस समय सूरज ढल

चुका था। उससे पश्चिम के आकाश में लालिमा छा गई थी, वह लालिमा कुमुद को ऐसी लगी-जैसे आग लग गई हो । कुमुद आप-ही-आप बोल उठा—हाँ दयाल, तुमने ठीक कहा—मै बड़ा अभागा हूँ। मै न माँ को देख सका और न बाप को। माँ-बाप का प्यार··· कुमुद कुछ क्षण चुप रहा, फिर दयाल की ओर देखते हुए कहा—तुम्हारे माँ-बाप तो हैं न, दयाल ?

—हाँ-हाँ—दयाल ने कहा–मेरे माँ हैं, बाप है, और दो बहनें भी जो हैं–एक बड़ी जो अपने ससुराल में रहती हैं और एक छोटी–जो मुझसे दो साल की छोटी है, पर वह बड़ी नटखट है, बड़ी बाचाल है, झगड़ा भी कुछ कम नही करती, फिर भी उसे मैं बहुत प्यार करता हूँ।

दयाल कुछ क्षण रुक कर सोचता रहा। लगा कि जो कुछ वह सोच रहा है, उसे वह व्यक्त भी करना चाहता है, पर वह कर नहीं रहा। पर, व्यक्त करने के पहले ही कुमुद से उसने कहते सुना, कुमुद ने कहा—मुझे किसी दिन अपने घर नही ले चलोगे, दयाल ?

—ले चलूँगा, अपने घर !—दयाल भी ठीक यही कहना चाहता था उससे; पर वह इसलिए नहीं कह पा रहा था कि कुमुद जिस राजघराने से संबद्ध हो चुका है, उस राजघरानेवाला व्यक्ति किसी साधारण के घर जा भी कैसे सकता है ? जाना तो दूर, जाने की कल्पना भी नही की जा सकती। फिर कुमुद-जैसा बालक, जिसपर रानीजी का अशेष स्नेह है, जिसकेलिए जलपान की चीजो मे तरह-तरह क मिठाई-मेवे और फल भेजे जाते है, कैसे उसका घर जा सकता है !······दयाल ने कुमुद की ओर दृष्टि फेरी । कुमुद अबतक उसके मुँह की ओर ताक रहा था। दयाल ने लजाते हुए कहा—यह तो मै भी कहना चाहता था, कुमुद ! पर कह नही सका। मुश्किल तो यह कि बहुत बात दिल में आती है, पर ओठो से बाहर नही आ सकती !

हाँ, दयाल, ठीक कह रहे हो—कुमुद ने भी समर्थन करते हुए कहा—मुझे भी लगता है कि मैं ठीक-ठीक कुछ कह भी नही पाता ! शायद कहते समय, मुझे लगता है कि, सारी बात भीतर-भीतर ही उलट-पुलट जाती है,जो कहना चाहता हूँ,वह कह नहीं पाता और जो न कहना चाहिए, वही बात अचानक मुँह से निकल जाती है ! मैं जानता था कि ऐसा सिर्फ मुझसे ही होता है।—कुमुद जरा रुका, फिर वह बोल उठा—कह सकते हो दयाल, आखिर ऐसा होता क्यों है ?

—क्यों होता है,कुमुद ?—दयाल बडे असमंजस में पड़ा। वह जरा सोचने लगा। उसे लगा कि यह प्रश्न तो साधारण नही है ! क्यों ऐसा होता है-इसपर कभी सोचने का अवसर उसे आया नही। पर दयाल ने सहज भाव से कह डाला-समझ लो, ऐसा ही होता है, और सबकेलिए होता है। शायद इसलिए होता है कि मनुष्य का मन पेचीदा होता है। मगर, जिस बात को हम समझ नही पाते, उसपर कुछ कहना ही बेकार है, कुमुद !

कुमुद ने दयाल की सारी बातें सुनी, पर उसकी समझ में कुछ भी नही आया। फिर भी वह अपनी पिछली बात भूला नही था। उसे फिर से दुहराते हुए उसने पूछा—क्या तुम मुझे अपने घर नही लिवा ले चलोगे, दयाल ?

—अरे, तुम जाना चाहो, और मैं लिवा ले न चलूँ, यह कैसे हो सकता है, कुमुद !—दयाल एक ही साँस मे बोल तो गया; पर वह रुककर सोचने लगा। फिर कुछ ही क्षण सोचने के बाद बोल उठा—मैं जरूर ले चलूँगा; मगर यह तो बतलाओ कि तुम्हारी रानीमाँ तुम्हें मेरे घर जाने की इजाजत दे सकेंगी ? वह तो तुम्हें बहुत मानती हैं न ?

—हाँ, बहुत !—कुमुद ने सहज भाव से ही स्वीकार किया और आगे कहा—ठीक कहते हो दयाल, यही अच्छा होगा, मैं उनसे पूछूँगा। रानीमाँ तो इतनी अच्छी हैं कि मैं क्या बतलाऊँ ! मेरे जाने में जरा भी देर होती है कि वह घबरा उठती हैं। ऐसी देखभाल रखती है कि ..

--तुम बड़े भाग्यबान हो, कुमुद !--दयाल चौंकस होकर बोला—रानीमाँ ऐसी ही दयालु है, मैंने झूठ नहीं कहा था। अब तुम जाओ,कुमुद, देर करोगे, तो उन्हें जरूर दुख होगा। अब नही-अब नही। तुम जरूर चलना मेरे यहाँ ! मुझे लगता है कि वह जरूर तुम्हें इजाजत दे देंगी। उनकी इजाजत लेकर चलना ही ठीक होगा।

दयाल ने कुमुद को, उसी क्षण विदा करते हुए फिर से कहा-रानीमाँ को अपना नाम-धाम लिखकर दिखलाना, कुमुद, अच्छा !

--अच्छा, कुमुद ने उतर में कहा और वह चल पड़ा।

१२

कुमुद के उल्लास और आनन्द का क्या कहना! उसने आज पहले-पहल अपना नाम लिखा है, अपने साथी का नाम लिखा है और मन-ही-मन जाने कितने का नाम लिखा है। यद्यपि वे नाम स्लेट पर नहीं लिखे गये है, फिरभी ऐसी जगह लिखे गये है, जहाँ उसने देखा है कि वे सही लिखे गये है, जरा भी भूल नही—जरा भी भ्राँति नहीं। इन नामों के अदृश्य पट पर लिखने में उनके मन को परितोष मिला है। उन नामों के साथ उसका अपनापन हो चला है। उन नामों के बीच वह अपने को बँधा हुआ पाता है और उस बंधन में उसे लगता है कि उसमें एक मिठास है, जिससे रस तो मिलता है, पर जिसे वह कहकर व्यक्त नहीं कर पाता······

उस आनंद-उल्लास के भीतर भी उसके मन में कष्ट की भी कुछ कम कसक नही होती। आज वह अपने पिता का नाम न लिख सका—पितामह का नाम तो नहीं ही, और न गाँव-घर का ही नाम लिख सका। वह यदि इन नामों को जानता होता, तो उन्हें लिखकर आज उसे कितनी प्रसन्नता होती······

कुमुद कुछ दिनों से अकेला ही स्कूल से चला आता है। पहले-

पहल कुछ दिनों तक महल से लिवाने के लिए कोई-न-कोई चला आता था; पर कुमुद को वह कुछ अच्छा न जँचा। इसलिए उसने रानीमाँ से से कह दिया कि आदमी भेजने की अब जरूरत नही, रास्ता ऐसा तो है नही कि कोई भुतला जाय। और, उसके उत्तर में प्रभावती ने कुछ सोच-विचारकर कहा कि आदमी अबसे नहीं भेजा जायगा, मगर छुट्टी के बाद उसे सीधे घर चला आना चाहिए। कुमुद ने उसकी आज्ञा सहर्ष स्वीकार कर ली। उसने अपने मन मे स्वतत्रता का अनुभव किया।

कुमुद उल्लास मे जाने क्या सोचता रहा, पर ज्योंही वह महल के अंतःपुर में प्रवेश करना चाहता था, त्योंही उसकी दृष्टि एकाएक पारो पर जा पड़ी, और उसके कुछ कहने के पहले ही पारो से उसने कहते सुना—हाँ, जानती हूँ, आजकल रास्ते मे खेला करते हो तुम! रास्ता देखते-देखते आँख फट गई·····

—आँख फट गई!—कुमुद ने भयमिश्रित दृष्टि से इसबार पारो की ओर देखा, खासकर उसकी आँखो की ओर, और हँसकर कहा—तुम बड़ी झूठी हो पारो, अचानक ऐसी बात कह देती हो कि मेरे दिल मे डर समा जाता है! कहाँ, देख तो रहा हूँ, तुम्हारी आँख फटी कहाँ है!

दोनों की आँखें चार हुईं और दोनों-के-दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े।

—तुम तो बड़े मूर्ख हो—पारो ने रोष-भरे स्वर में कहा—कोई बात तुम्हारी समझ में चढ़ती ही नही! मेरी आँख क्या देख रहे हो?

—तुम्हारी आँख मेरे चलते फटे और मैं देखूँ भी नही—कुमुद ने बड़े सरल भाव से, भोलेपन से कहा—पारो, तुम मुझे मूर्ख कह सकती हो, पर ······मगर·····

—'पर, मगर' की जरूरत नहीं—पारो ने उसका मुँह अपने हाथ से ढँककर कहा—कोई बात तुम्हारे पेट में पचती नही, ऐसा भी कही आदमी होता है! जाओ, मैं तुमसे नहीं बोलती!

पारो रुठकर भाग चली। कुमुद समझ न सका कि ऐसी कौन-सी बात हो गई कि पारो भाग निकली। उसे कुछ समझ मे न आया, पर वह उसी अवस्था मे जोर से बोल उठा—अरी, कहाँ भागी जा रही पारो, देखो, मैं तुम्हारा नाम लिखना जान गया। यह देखो—सिलेट पर तुम्हारा नाम।

पारो तुरत अपनी जगह रुक गई, फिर वहीं से बोली—झूठ बोलते हो! मंजुदीदी जाने कबसे पढ रही है, वह तो लिख नही सकती और तुम······

—मंजु नही लिख सकेगी, यह कैसे हो सकता है!—कुमुद ने आश्चर्य से कहा—वह जरूर लिखेगी, मगर वह लिखती नही है! तुम तो जानती हो कि वह सस्कृत पढ़ रही है। वह सिर्फ पढ़ सकता है, उससे लिखाया नही जाता। मगर मै बारहखड़ी पढ़ चुका हूँ, पहाड़े पढ रहा हूँ, अबसे नामधाम भी लिखने लगा हूँ। दयाल कहता है कि मै सब का नाम लिख सकता हूँ।

पारो ने कुमुद की बातें कुछ समझी—कुछ नहीं समझी। पहाड़े कौन-सी बला है, बारहखड़ी क्या होती है, दयाल कैसा लड़का है—बेचारी पारो जान भी कैसे सकती है! पारो सिमटकर कुमुद की ओर बढ़ी और कुमुद भी उसकी ओर बढ़ चला। दोनो जब एक-दूसरे के निकट आये, तब पारो ने कहा—दिखलाओ सिलेट, कहाँ लिखा है मेरा नाम? देखूँ, भला!

—अभी लिखा कहाँ है?—कुमुद ने सिलेट सँभालते हुए कहा—क्या लिख दूँ तुम्हारा नाम?

—तुम झूठे हो, कुमुद—पारो ने नाक फुलाकर कहा—स्कूल जाने से इतना तो जरूर हुआ कि तुम बात बनाने में उस्ताद निकले! तुम नाम क्या लिख सकोगे? झूठे हो। लिखो तो देखूँ—मेरा नाम कैसे लिखा जाता है!

कुमुद ने हाफपैंट के पाकेट में हाथ डाला और पेंसिल निकालकर मन-ही-मन बोलता चला—प-आकार-पा, र-ओकार-रो–पा-रो और वैसा ही लिखकर खुशी में उछलते हुए कहा–पारो, हो गया तुम्हारा नाम।

पारो ने उत्सुक होकर कहा—देखूँ।

कुमुद ने स्लेट उसकी ओर बढाकर कहा—देख लो पारो, देख लो! अब तुम मुझे झूठा नही कह सकती।

पारो ने उन मोटे-मोटे दो अक्षरों पर दृष्टि डाली और स्लेट को ठीक से अपने हाथो जमाकर दौड़ती हुई बोली–चलकर रानीमॉ को दिखलाती हूँ! तुम्हारा क्या ठिकाना, झूठे पर कोई विश्वास भी भला करता है!

कुमुद ठिठककर खड़ा हो रहा, वह प्रतिवाद में कुछ कहना भी चाहता था, पर जो-कुछ वह कहा चाहता था, वह उसके गले से फूटकर बाहर भी न निकल सका।

पारो रानीमाँ को दिखलाने केलिए कहकर, ऊपर की ओर दौड़ तो पडी, पर उन तक वह जा न सकी। रास्ते में ही उसे स्मरण हो आया कि नाम तो उसका ही लिखा हुआ है, रानीमॉ का तो है नही! रानीमाँ तो जरूर समझ लेंगी कि कुमुद ने 'रानीमॉ' न लिखकर पारो का नाम क्यों लिखा है। तभी रास्ते में श्यामा ने टोका—आदमी न होकर घोड़ा क्यों न हुई, पारो, बेतहासा दौड़ी कहॉ जा रही हो? पारो के लिए कोई दूसरा अवसर होता,तो जाने वह श्यामा को क्या-क्या न सुना जाती; पर उसे सुनाना तो दूर, जान पड़ा कि अगर श्यामा ने स्लेट का लिखा कही पढ लिया, तो फिर खैर नहीं,जरूर वह कुछ-का-कुछ अर्थ लगा लेगी! इसलिए वह उसके सामने रुककर भी रुकी न रह सकी, वह मंजु के पास जाकर खड़ी हुई और हाँफते हुए बोली—देखो तो मंजुदीदी, क्या लिखा है!

कुमुद ने मंजु के विषय में ठीक ही कहा था। मंजु संस्कृत पढ़ती है, वह चाहे तो लिख सकती है, पर उसे लिखना नहीं सिखाया जाता। मंजु

ने सिलेट अपने हाथ में ली और मटमैली सिलेट पर लिखे दो बड़े-बड़े पुष्ट अक्षरों को पढ़ा और वह हँसकर बोली—मैं सब समझती हूँ—सब समझती हूँ पारो, तुम छुप-छुपकर पढा करती हो और पढ़ानेवाला और कोई नही—वह कुमुद है !

पारो का उत्साह भंग हुआ, उसका मुँह उतर आया, वह सहसा कुछ न कह सकी, पर उसे कुछ न कहना ऐसा जान पड़ा, मानों वह मंजु की बात का समर्थन कर रही हो ! इसलिए झटपट वह बोल उठी—जो खुद नही जानता, वह कैसे पढा सकता है, मंजुदीदी ! अगर ऐसा ही होता, तो आप इतने बडे परिडत से क्यों पढती ?

—हॉ, खूब बडे परिडत से पढती हूँ–मंजु ने चिढकर मुँह बनाते हुए व्यंग के स्वर में कहा—पढ़ती हूँ खाक, जिसे अपना नाम भी कभी लिखाया न गया ! मगर, जिसने यह लिखा है, वह आखिर क्यों न लिखेगा ! जब मॉ ही अपनी संतान को दो नजर से देखेगी, तब ऐसा तो होगा ही ! मंजु कुछ क्षण चुप हो रही। पारो का उत्साह जाता रहा। उसे लगा कि वह कहाँ आकर बुरी तरह फँस गई ! अब वह क्या करे ? उसकी समझ में कुछ न आया। वह अभियुक्त की तरह सिर नवाकर खड़ी हो रही ! पर कुछ ही क्षणों के बाद मंजु सिलेट थामे उठ खड़ी हुई और बोली–कुमुद कहाँ है, पारो ?

—वह तो नीचे खड़ा था, मंजुदीदी ! उसके हाथ से सिलेट झिटक कर मैं दौड़ पड़ी थी······

—इसलिए कि उसने तुम्हारा नाम लिख दिया है !–मंजु की भवें सिकुड़ कर एकाकार हो उठी। उसकी बातों में स्पष्ट व्यंग था, जो पारो के हृदय से जा लगा।

मंजु वहाँ से सिलेट हाथ में थामे नीचे की ओर दौड़ पडी। पारो अपनी जगह अचल-अटल होकर खडी-की-खडी रह गई।

मंजु ने नीचे उतर कर देखा कि रानीमाँ बरामदे की चौकी पर बैठी हुई है। उसीके पास कुमुद खडा हँस-हँसकर बातें कर रहा है । हाथ में तौलिया थामें ह, जिससे पता चलता है कि अभी तुरत हाथ-पैर धोकर मुँह पोछ चुका है। और श्यामा गरम-गरम जलपान की तश्तरी हाथ मे थामे उस ओर आ रही है••• ••

मंजु सहज गति में आकर माँ क हाथ पर सिलेट रखती हुई बोली–अच्छा, यह तो बताओ माँ, यह किसने लिखा है।

कुमुद ने उस सिलेट की ओर एक बार दृष्टि फेरी, फिर मंजु की ओर। वह अपने-आप में लज्जित हो उठा, पर उसे भी कुछ कम उल्लास न था! कुछ क्षणों के बाद वह स्वयं आज रानीमाँ को बतलाता कि वह सबका नाम लिख सकता है । उसके साथी दयाल ने उससे ऐसा ही कहा है। पर जब मंजु उस सिलेट को लेकर दिखलाने आ ही चुकी है, तब वह स्वयं ही इसे क्यों न स्वीकार कर ले कि वह किसी और का लिखा हुआ नही है, उसने खुद लिखा है और वह खुद सभीका नाम लिख सकता है! पर, कहने के समय कुमुद से अधिक कुछ कहते न बना, उसने केवल इतना ही कहा–पारो ने कहा और उसका नाम लिख दिया •

प्रभावती का मुख आनद से मानो खिल उठा । उसकी बड़ी-बड़ी आँखें हृदय के उल्लास से विहँस उठीं। उसने अधीर होकर पूछा—तुमने लिखा है कुमुद, तुमने लिखा है?

—हाँ, मैने लिखा है ।

—ओह, तुम्हे लिखना आ गया?—प्रभावती स्नेह-गद्‌गद्‌ स्वर में बोल उठी—तब तो तुम मेरा भी नाम लिख सकते हो? नही कुमुद, क्या मेरा नाम नही लिख सकते हो?

—क्यों नहीं, क्यों नही?—कुमुद भी लजाकर, पर उल्लास लिये हुए बोल उठा—यह रही पेंसिल, सिलेट दीजिए न, लिखकर देखूँ • •••

—मगर मेरा नाम पहले लिखो, कुमुद, माँ का पीछे लिखना !

—हाँ-हाँ, मजु तो कभी लिखकर दिखा नही सकती, तुम्हीं क्यो न लिखकर दिखा दो इसे, कुमुद !—प्रभावती बोली ।

मंजु तुनुक उठी, वह जरा क्रुद्ध होकर बोली—मुझे लिखना क्या खाक आयगा ? तुमने मुझे सिलेट कभी छूने दी है ? ला तो दी है कौमुदी और पण्डित पढ़ाता है लट्, लिङ्, लुङ। बताओ, तुम्ही, कब मुझे लिखने का अवसर दिया गया कि लिखकर कुछ दिखाऊँ ! नही, कुमुद, तुम मेरा नाम मत लिखो, लिखो तुम उसका नाम, जो रानी की गद्दी पर विराजमान है !

मजु बोलकर चुप हो रही, उसने गर्दन दूसरी ओर घुमा ली ।

प्रभावती हँस पडी और हँसते-हँसते ही बोली—कुमुद, देख ली मंजु की बात ! इसने झगड़ा करना ही सीखा है अब-तक ! मगर मै कैसे झगड़ पड़ूँ ? अब मै तुमपर ही छोड़ती हूँ, तुम चाहे जिसका नाम लिखो । मुझे तो सिर्फ देखना यही है कि तुम लिख सकते हो या नही ।

कुमुद ने सिलेट अपनी गोद में कुछ ऊपर उठाकर रखली और सोचने लगा कि बह आखिर क्या लिखे ? कुछ क्षण के बाद सिलेट पर उसने एक बड़ी-सी लकीर खीची, फिर पेंसिल ठीक से जमाकर लिखने लगा । लिखना खतम होते ही सिलेट प्रभावती की ओर बढा दी । प्रभावती ने देखा और विहँसकर मंजु की ओर देखते हुए बोली—मै यह जानती थी कि कुमुद क्या लिखेगा ? भाई की दृष्टि मे बहन की जो मर्यादा होती है, वह कुमुद जानता है ।

और मंजु ने जब सिलेट पर अपना नाम लिखा हुआ देखा, तब उसकी मर्यादा सीमा के पार चली गई और बोली—हाँ, हुआ किसी तरह, पर शुद्ध नही हुआ ! संस्कृत जिसने नहीं पढी है, उसे शुद्ध-अशुद्ध का ज्ञान हो ही कैसे सकता है ? तुम्ही बताओ न माँ, क्या 'मंजु' इसी तरह लिखा जाता है ?

प्रभावती को यह समझते देर न लगी कि मंजु का संकेत क्या है। वह हँस पड़ी,बोली–पंडितजन मंजु नही 'मञ्जु' लिखते हैं—यही न! पर मंजु लिखना गलत नही है और कुमुद ने जो कुछ लिखा है—स्वाभाविक रूप में लिखा है! तुम पण्डिता होगी, पर कुमुद को पण्डित तो बनना है नही, उसे व्यावहारिक ही होना चाहिए और व्यावहारिक व्यक्ति हर काम को सहज भाव से करना चाहेगे!

इतनी बातें हो जाने पर भी कुमुद की समझ में कुछ न आया। 'मंजु' लिखे जाने पर उसमें जो उत्साह भर आया था, वह धीरे-धीरे लुप्त हो गया और उसीके साथ-साथ उसकी आकृति भी धूमिल हो उठी।

पर कुमुद मौन साधे पड़ा न रहा। वह जानता था कि 'मंजु' लिखने में उसने जरा भी भूल नही की है और जब आत्मविश्बास के साथ मंजु ठीक ही लिखा है, तब मंजु ने क्यों प्रसन्न न होकर इतनी झड़ी लगाई—यह उसे समझ में न आया। पर कुमुद का हृदय सहज में पराजय स्वीकार न कर सका। इसलिए वह बोल उठा—क्या रानीमाँ, मुझसे गलत लिखा गया? कहाँ गलत है?

—गलत!—प्रभावती ने सहज भाव से स्नेह-सिक्त कंठ से कहा—जरा भी गलत नहीं–ठीक लिखा है कुमुद! इतना ही क्या कुछ कम है? अभी-अभी तो तुम स्कूल में बैठे हो। इतना जल्द तुम नाम-धाम लिखने लगे—यह कुछ साधारण बात नही। आगे और भी अच्छी तरह लिख सकोगे, कुमुद!

—मगर मंजु पण्डित बनेगी और मै·मे······क्या स्कूल में पढकर कोई पण्डित नही बन सकता?

—सुनो माँ—इस बार मंजु बोल उठी—अब तो कुमुद पण्डित भी बनेगा! कुमुद किसीसे पीछे कैसे रहेगा?

प्रभावती समझ गई कि मंजु के स्वर में ईर्ष्या की छाप है। भाई-

बहन के बीच अनादि काल से जो एक प्रवृत्ति रही है, वह जैसे मंजु के वचनों में मूर्तिमान हो उठी है, जो स्वाभाविक है। प्रभावती को ऐसा जानकर संतोष ही हुआ कि मंजु ने कुमुद को ठीक कमल के रूप मे ही स्वीकार किया है। उसी क्षण उसे एक पुरानी बात याद हो आई। वह साधारण-सी थी; फिर भी उसीसे मंजु ने भ्रातृभाव के भीतर उस प्रवृति का स्पष्ट चिह्न अंकित है, जो प्रवृति अनादि है—शाश्वत है। उस दिन की सारी घटनाएँ, सारे सामान—वे गुड्डे-गुड़ियाँ, उनके आभूषण, साज-सामान, सब-के-सब उसकी आँखो के सामने नाच उठे और उनके बीच पाया कि मंजु कमल से कितनी झगड़ रही थी, जब उसने पाया कि उसकी गुड़ियो से कमल के गुड्डे ज्यादा सजे थे। बात कुछ नहीं थी, पर मंजु ने हार नही मानी, कमल को स्वीकार कर लेना पड़ा कि मंजु की गुड़ियाँ ही अधिक सुन्दर हैं, अधिक सजी हुई।

प्रभावती कुछ क्षण खिन्न और उद्विग्न हो उठी, पर तुरत ही अपने मन के सारे भाव सयतकर, ओठों पर मुस्कान लिये, वह बोल उठी—क्यों नही होगे, कुमुद! विद्या तो परिश्रम की चीज है! मुझे खुशी है कि तुम पर सरस्वती जरूर प्रसन्न होगी। तुम पण्डित बन सकते हो, विद्वान बन सकते हो, सुवक्ता बन सकते हो—तुम क्या नही हो सकते? परिश्रम के सामने तुम्हे क्या नही मिल सकता!

—और मै?—मंजु अधीर होकर, बडी-बड़ी आँखों से माँ की ओर देखते हुए, अचानक पूछ बैठी।

—तुम! तुम!—प्रभावती ने स्वाभाविक रुप में कहा—मंजु, यह तो परिश्रम की बात है, जो परिश्रम करेगा, विद्या उसके पास आयगी। तुम तो पण्डिता होगी ही। मुझे आज क्या कम कुछ प्रसन्नता है—जब मै पाती हूँ कि एक अनुस्वार को तुम सह न सकी। सस्कृत में पंचम वर्ग का भी उचित स्थान है, जो हिन्दी में अनुस्वार के रूप व्यक्त किया जाता

है ! तुब 'मंजु' को अशुद्ध कहोगी और 'मञ्जु' को शुद्ध ! पर हिंदी में कोई भी गलत नही, बल्कि सुभीते के विचार से 'मंजु' ही ठीक है।

प्रभावती बोलकर कुछ क्षण चुप रही। फिर वह मजु की ओर देखते हुए बोल उठी--मंजु, तुम्हे प्रसन्न होना चाहिए कि कुमुद को लिखना आ गया। अब आसानी से किताब भी पढ सकता है वह। तुम चाहो तो लिखने का अभ्यास बढ़ा सकती हो। अबतक तो तुम सिर्फ पढती ही रही हो, तुम्हारे आचार्य ने लिखने पर अभीतक विचार ही नही किया है। लिखना तो बाहर की चीज है। जब तुम्हारे भीतर प्रत्येक शब्द का चित्र उतर आया है, तब वह चित्र कभी सिलेट पर निश्चय ही उतर आयगा। इसमें दुख मानने की कौन-सी बात है !

मगर दु ख मानने की बात प्रभावती चाहे न समझे, मंजु खुद समझती है। आज वह भी यदि गुरुजी के पास पढ़ने को जाया करती, तो निश्चय ही वह कुमुद से अच्छा लिखती। इसलिए वह अपने मन का भाव न छिपाकर स्पष्ट रूप में बोली--मैं भी उसी गुरुजी से पढ़ूगी माँ, पण्डित से नहीं। गुरुजी ने कुमुद को देखो, कितने थोड़े दिनों में लिखना-पढना सिखा दिया। एक वह गुरुजी है और एक यह पंडित है ' ' '

इस बात को कुमुद सह न सका। वह समझ गया कि जिस गुरुजी की प्रशंसा में यह बात कही गई है, बह सत्य नहीं है। लिखने का श्रेय उस दयाल को है, जिसकी प्रेरणा से वह इस काम में समर्थ हो सका है। इसलिए वह प्रतिवाद के स्वर मे बोल उठा--गुरुजी ने नही सिखाया है मंजु ! वह तो दिन भर आराम से कुर्सी पर पड़े, टाँग टेबिल पर फैलाये, जँभाई लिया करते है। वह बहुत बूढे है न ! उनका सिर्फ काम रहता है लड़कों को घेरे रहना और उनसे घिरे हुए लड़के जब ऊधम मचाने लगते है, तभी वह नीद से उचटकर डाँट-फटकार करने लगते है। भला ऐसे गुरुजी के पास जाकर तुम क्या कर सकोगी मंजु ! तुम जहाँ हो, ठीक

हो। कम से-कम तुम्हारे पढानेवाले पण्डित तो हैं, जो तुम्हें शुद्ध-शुद्ध बताया करते है ..

यह कुमुद का गुरुजी पर अभियोग था। और बह अभियोग इतने साधारण रूप में उससे पेश किया गया कि प्रभावती अभिभूत हो उठी। प्रभावती अबतक यही जानती रही थी कि नंदलाल गुरुजी अनुभवी ही नही, योग्य गुरुजी है, जो लोहे को सोना बनाने की क्षमता रखते है! पर क्या अब वे इतने कमजोर पड गये कि लड़कों की पढ़ाई की ओर उनका ध्यान ही नही जाता? कुमुद पढ़ने-लिखने में मंद नही। यदि इसे ठीक से कोई अच्छा पढ़ानेवाला मिल जाय, तो कुछ ही दिनों मे यह कुछ का कुछ हो जाय। प्रभावती चुप न रह सकी। उसने कुमुद की ओर आँख उठा ·· देखा ।र फिर बोल उठी—तो क्या नदलालगुरुजी तुम्हें नही पढ़ाते, कुमुद?

—पढ़ाते क्यों नही, रानीमाँ—कुमुद ने अपने-आप को सँभाला और जो सच्ची-सच्ची बातें थी, उन्हें प्रकट करते हुए कहा—मै तो उन्हीके दर्जे में बैठाया गया हूँ। गुरुजी तो बड़े बूढे हैं न! दर्जे में जो अच्छे लड़के है, उनसे वह कह दिया करते है कि वे एक दूसरे को पढायॅ, मगर वे क्यों पढायॅ! वहाँ तो गप्पें चलती है, कानाफूॅसी होती है, एक दूसरे को चिढ़ाते, चूॅटी काटते .. ..मगर मुझे तो दयाल पढ़ा देता है रानीमाँ। बड़ा अच्छा है वह! कहता है कि मै सभीका नाम लिख सकता हूँ'

प्रभावती आगे कुछ न बोल सकी। देखते-ही-देखते सध्या घनी हो उठी। सभी कमरे प्रकाश से जगमगाने लगे। उसे स्मरण हो आया कि आज बातों-बातों में अबतक फँसी रही वह। सध्या की स्नान-आरती अब भी शेष है। वह उठ पड़ी और चलते-चलते बोल उठी—देखती हूँ, नन्दलाल गुरुजी से तुम्हारा काम नहीं चलेगा, कुमुद! कोई अच्छा-सा प्रबध तुम्हारी पढाई के लिए करना ही पड़ेगा।

प्रभावती वहाँ से चलती बनी है; पर उसकी बातों में कुमुद का मुँह आच्छन्न हो उठा। उसे लगा कि गुरुजी के विषय में न कुछ कहना ही कहीं अच्छा होता।

पर, उसके मन की आच्छन्नता तुरत दूर हो गई, जब मंजु ने उससे कहा—चलो कुमुद मेरे कमरे में। मै देखूँ, तुम सबका नाम किस तरह लिख सकते हो।

मंजु ने कुमुद का हाथ पकड़ लिया और उसे एक तरह से घसीटते हुए ही वह अपने कमरे की ओर चल पड़ी। कुमुद को लगा—जैसे वह मंजु के स्नेह-पाश मे जो आनंद उपलब्ध कर सका है, वह तो अपूर्व है, अव्यक्त है।

१४

प्रभावती चतुर गृहिणी ही नहीं थी, वह स्नेह-वत्सला भी थी। अपनी संतान के लिए माँ यदि स्नेह-वत्सल हो, तो यह अस्वाभाविक नही—सामान्य-सी बात ही कही जायगी, पर वह उसी स्नेह से सबको देखा करती थी। यहाँ तक कि वह जब-कभी अपने महल से बाहर निकलती, वह आसपास के घरों में भी अनायास ही, विना किसी झिझक के, जा पहुँचती और बहुत ही स्वाभाविक रूप में सभीके कुशल-समाचार पूछती —यहाँ तक कि जो-कुछ अभाव-अनटन दीख पड़ते, उसे तुरत दूर करने का प्रयत्न किया जाता। यही कारण था कि प्रभावती ने रानी का न केवल आसन ही ग्रहण किया था, वरन् अपने गुण-स्वभाव से वह रानी से भी अधिक एक महीयसी नारी थी, जिसमें करुणा का अविरल प्रवाह प्रतिक्षण प्रवाहित हुआ करता था।

मगर जब यही बात एक युवक कर्मठ अध्यापक के कानों पड़ी और जब उसकी दृष्टि में रानी प्रभावती से मिलना अनिवार्य हो उठा, तब उस अध्यापक ने साक्षात् प्राप्त करने के लिए प्रभावती के पास एक आवेदन-पत्र भेजा, जिसमें उसने अपना अभिप्राय प्रकट न कर केवल मिलने की

प्रार्थना ही की थी । प्रभावती ने उसका नाम कभी सुना नही था, पर उसे यह मालूम था कि किसी उद्भट व्यक्ति ने कुछ लड़कों को जुटाकर, निलहे कोठी के झाड़-झखाड़ो काट-कूटकर गिरे-पड़े बंगले को एक विद्यालय का रूप दिया है। उसे लगा कि अवश्य यह प्रार्थी वही व्यक्ति है! तब उस उद्भट व्यक्ति से एकबार मिलने का अवसर वह खो न सकी। उसकी प्रार्थना स्वीकृत हुई और निश्चित समय पर मिलने की बात उसतक पहुँचा दी गई ।

वह उद्भट व्यक्ति था—केवल आकृति-प्रकृति से ही नही, उसके अतर में जो आग धुधवाती रहती थी, जिसे व्यक्त न करने के प्रयत्न में सतत चौकस रहते हुए भी उसकी आकृति की रेखाओं से व्यक्त हो उठती थी, उसकी वाणी से भी झलक पड़ती थी। वह कुछ ऐसी आग थी, जो उसे भीतर से बेचैन किये थी; पर वह बेचैनी इतनी गहरी थो कि उस तक सर्वसाधारण की पहुँच तो क्या, उसे देखकर कोई भॉप भी नही सकता था कि वह साधारण से बहुत-बहुत ऊपर है—इतना ऊपर, जहाँ तक कल्पना की पहुँच भी संभव नही ।

उसका यथार्थ नाम लोगों ने कभी नहीं जाना। जिस नाम से वह संबोधित होता था, वह था बहुत साधारण, बहुत सरल—अमल। पर, जब-कभी वह अपने को अमलकृष्ण भी कह दिया करता! फिर भी अमलकृष्ण उसका पोशाकी नाम था। चालू था—'अमल'।

और जब अमल एक साधारण वेश में एक सौम्य सरल भाव से रानी प्रभावती के पास अभिवादन करते हुए खड़ा हुआ, तब उसने देखा कि जो पुरुष उसके निकट आ खड़ा हुआ है, वह ऐसा है कि उसे खड़ा रहने नही दिया जा सकता। ऐसा सोचते ही प्रभावती ने अपनी आँखें नीचे झुकाकर, उसे कुर्सी की ओर संकेत करते हुए, कहा—बैठिये न, खड़े क्यों हैं!

—धन्यवाद—कहकर अमल तुरत बैठा नहीं, कुछ क्षण सोचता रहा; फिर खडे-खडे ही कहा—बैठना क्या मेरेलिए उचित होगा! मै तो मात्र प्रार्थी हूँ, प्रार्थना लेकर ही उपस्थित हुआ हूँ।

प्रभावती स्वयं मुस्करा उठी। फिर उसकी ओर जरा आँखे उठाकर देखती हुई कहा—तो क्या प्रार्थी को बैठना उचित नही?

—उचित-अनुचित का प्रश्न अलग है—अमल ने शात, पर गंभीर स्वर मे कहा—सुना है और प्राय: ऐसा देखा भी है कि राजदरवार में प्रार्थी को खड़ा रहकर और हाथ जोड़कर, बडे विनम्र भाव से, प्रार्थना सुनानी पडती है। अबभी मै राजदरवार से ही आ रहा हूँ!

प्रभावती गभीर हो उठी, उसकी आकृति पर विषाद का हलका बादल छा गया, कुछ क्षण चुप रहने के बाद बोल उठी—राजदरवार से आ रहे हैं आप? क्या वहाँ आपको बैठने के लिए नही कहा गया? इतना अशिष्ट व्यवहार तो इस राजवंश का कभी रहा नही! यदि कुछ क्षणों के लिए मै यह मान भी लूँ कि आपका उचित सत्कार किसीने नहीं किया,तो क्या उसका बदला आप यहाँ चुकाना चाहते हैं? मै तो आपका समादर करना चाहती हूँ· · ···

प्रभावती की बातों में स्पष्टता थी और एक-एक शब्द नपा-तुला था। यद्यपि अमल ने व्यावहारिक बातें ही कही थीं और एक स्थान पर उसे ऐसी परिस्थिति से गुजरना भी पड़ा था, तथापि उसे लगा कि अब न बैठना ही उसके लिए अशिष्टता होगी। इसलिए वह बोल उठा—मै आपके समादर को अस्वीकार करने की धृष्टता नहीं कर सकता और न किसीका बदला आपसे चुकाने का विचार रखता हूँ! मे आपके राजवंश की परंपरा से अवगत नहीं, पर एक स्थान पर मुझे जिस परिस्थिति से गुजरना पड़ा, उससे मुझे अवश्य शिक्षा लेनी पड़ी कि संभव है, वैसी परिपाटी अन्यत्र भी होगी, इसलिए . . . .पर, आपने अभी मुझे प्रार्थना की बात तक

सुनाने का अवसर नही दिया। मेरे पास समय का अभाव है, मुझे शीघ्र ही लौटना चाहिए........

—मै आपको रोकना नहीं चाहती—प्रभावती ने इसबार उसकी ओर दृष्टि डालते हुए कहा—आप आसन-ग्रहण कीजिए और आपको जो सुनाना हो, कह सुनाइए। मै बड़े ध्यान से सुनूँगी, पर पहले आप बैठ जाइए।

इसबार अमल कुर्सी पर बैठ गया और शात-सरल भाव से कहा—आपने शायद सुना होगा कि आपकी पुरानी नील-कोठी के खंडहर में मैने एक पाठशाला खोली है। खंडहर योंही जंगल हो रहा था। उसे मैने चमन बनाकर, वहाँ कुछ दीन-दुखी बच्चों को इकट्ठा किया है और चाहा है कि उन्हे आदमी बनने का अवसर दूँ। मैने कोई बुरा काम नही किया है। हाँ, मुझ से यह भूल जरूर हुई कि दरबार से मैने पहले ऐसा करने की आज्ञा नही ले ली। बड़े साहब की ओर से प्यादा गया था, मै प्यादे के साथ उनके दरबार में हाजिर हुआ। उन्होंने अप्रसन्नता प्रकट की। उनसे जितनी बातें हुई, मै उन्हें यहाँ दुहराना नही चाहता! अंत में मुझसे उन्होंने कहा—सलामी में मुझे दो सौ रुपये जमा करने होंगे, जमीन बंदोबस्त लेनी होगी, खण्डहर का अलग मूल्य चुकाना होगा ......और मैने पूर्व आज्ञा न ली, उसके दण्ड में सौ रुपये अलग जमा करने पड़ेंगे !

प्रभावती ने सारी बातें बड़े ध्यान से सुनी। वह कुछ क्षण मौन साधे सोचती रही, फिर बोल उठी—पर, आप चाहते क्या है, वह तो आपने कहा नही।

—आप भी तो उस खण्डहर की स्वामिनी है—अमल ने कहा—मैने उस स्थान को एकात और उपयुक्त समझकर ही वहाँ एक पाठशाला स्थापित कर दी है, जो चलती रहे,—मेरा उद्देश्य तो स्पष्ट है। पाठशाला तो व्यवसाय नहीं है, न द्रव्योपार्जन मेरा उद्देश्य है! मै खण्डहर का मूल्य, जमीन की बदोबस्ती और सलामी के रुपये .....

—तो आप चाहते है कि एक दरबार से जो माँग की गई है, वह दूसरे दरबार से अस्वीकृत कर दी जाय ?—प्रभावती ने इसबार संपूर्ण दृष्टि अमल पर डाली। अमल को लगा कि वह दृष्टि किसी युवती की नहीं, एक शासनकर्तृ की है।

युवक अमल सतर्क था। उसने उत्तर में कहा—माँग यदि न्यायानुकूल हो ...मेरा मतलब है कि यदि दोनों दरबार एक-जैसा ही न्याय करना चाहते हों, तो मुझे कोई आपत्ति नही। मै तो वहाँ अपना कोई व्यवसाय फैलाने आया नहीं। मै केवल यही प्रार्थना लेकर यहाँ उपस्थित हुआ हूँ कि आपकी जमींदारी में, जहाँ की प्रजा अज्ञान में भटक रही है, आनेवाली पीढ़ी को भी ज्ञान का प्रकाश मिले—इतना अवसर तो आप की ओर से उन्हें मिलना ही चाहिए।

—निश्चय ही मिलना चाहिए—प्रभावती ने उसका समर्थन करते हुए कहा—मै यह भी समझती हूँ कि ज्ञान का प्रसार व्यवसाय नही है; पर क्या यह उचित है कि आप बिना अनुमति प्राप्त किये किसीके घर मे घुस जायँ और घरवाला यदि इसपर आपत्ति प्रकट करे, तो उसे ही अन्यायी ठहराया जाय ?

अमल को शीघ्र उत्तर देते न बना। उसे लगा कि वह जिस नारी के सम्मुख आसीन है, वह सामान्य नही, उसमे बुद्धि की प्रखरता भी है। अमल कुछ क्षण सिर झुकाये सोचता रहा, फिर अपने एक-एक शब्द पर बल डालते हुए कहा—देखिए, आप मेरे प्रश्न पर दूसरे दृष्टिकोण से विचार कर रही है! मैने विद्यालय का स्थापन इस उद्देश्य से नही किया कि उससे मै अनुमति पाये बिना किसीके घर में घुसपड़ने-जैसा अपराध करूँ! वैसा अपराध शायद कोई विचारवान पुरुष कर भी नहीं सकता। पर, मै आपसे जानने की धृष्टता करता हूँ कि आप क्या मेरे काम को सचमुच ऐसा ही समझती हैं!

प्रभावती ने तथ्य को समझा और वह हँस पड़ी ! फिर हँसकर ही कहा—आप तो विचारवान पुरुष है, आपसे कोई ऐसी आशा नही कर सकता कि उचित-अनुचित भी आप नही समझते हों ! देखिए, सभी बातें तर्क पर नहीं कसी जा सकती । मै सीधा-सा ही प्रश्न आपके सामने रखती हूँ—आपने विद्यालय की स्थापना के पहले सिर्फ इतनी-सी सूचना क्यो न दी ? क्या उस समय आपके मस्तिष्क में भू-स्वामी की अवज्ञा का विचार नही उठ खड़ा हुआ था ? क्या आप सच-सच बता सकेंगे कि आपके कर्म मे अवहेलना की गंध नही आ रही ?

—नही—अमल को लगा कि वह एक युवती के निकट परास्त होने जा रहा है, इसलिए अपने को पूर्णतः सँभालते हुए, अपने बचाव में, कहा—नही, अवहेलना या अवज्ञा तो मै सोच भी नही सकता था ! मैंने अवश्य विद्यालय की स्थापना कर दी, सोचा कि इससे किसीको क्या कष्ट हो सकता है ! सुनकर खुशी ही होगी । मैंने कोई बुरा काम नहीं किया है । मै यदि यह जानता होता कि ज्ञान-प्रसार भी अवाछनीय समझा जायगा, तो इतना कष्ट उठाने का व्यर्थश्रम मै क्यों करता !

—हमलोग अवाछनीय समझते हैं ज्ञान-प्रसार को, यह आपने कैसे जाना ?—प्रभावती गंभीर हो उठी, उसने अमल की ओर एक बार तीक्ष्ण दृष्टि डाली, फिर बोल उठी—आपका उद्देश्य महत् है, मै उसका समर्थन करती हूँ; पर एक साधारण-सी बात आपके ध्यान में नहीं आती—यह आश्चर्य का विषय है ! आप यह न समझिए कि जो जमीन्दार होता है, उसमें मानवता होती ही नहीं ! जमीन्दार होना कोई पाप नही है । मैं जानती हूँ, आज कुछ ऐसे व्यक्ति देखने में आ रहे है, जिन्हें भीतर-भीतर से आभिजात्य के प्रति वैमनस्य है ! मै पूछ सकती हूँ कि वैमनस्य की आधारशिला पर ज्ञान का प्रसार क्या संभव हो सकेगा ?

प्रभावती बोलकर कुछ क्षण चुप हो रही, फिर स्वयं ही बोल उठी—अमलबाबू, मै आपकी निष्ठा की पवित्रता पर प्रसन्न हूँ । आप ज्ञान-प्रसार

के लिए प्रयत्नशील हैं, यह तो प्रसन्नता की बात है ! इसके लिए आप जो साहाय्य चाहेंगे, मैं दूँगी ।

—साहाय्य !—अमल आश्चर्य-चकित होकर बोल उठा—पर मैं तो साहाय्य की याचना लेकर उपस्थित हुआ नहीं हूँ !

—ओह, भूल हुई—प्रभावती मुस्कुरा उठी, फिर जरा गंभीर होकर बोली—क्षमा कीजिएगा । पर, मैं जानना चाहती हूँ कि आप आखिर चाहते क्या हैं ?

—मैं कुछ भी नहीं चाहता !—अमल ने कहा—मैं आपसे भी इतना ही जानना चाहता हूँ कि मुझे अंततः वह रकम बता दी जाय, जो मुझे जमा करनी चाहिए ! मैं नील-कोठी और उसके संलग्न दस एकड़ ज़मीन बंदोबस्त करना चाहता हूँ ।

—बंदोबस्त !—प्रभावती ने उसकी ओर देखते गंभीर होकर ही पूछा—क्या सचमुच बंदोबस्त लेना चाहते है ? मुझे लगता है कि आप .. .

—मैं जानता हूँ, आप क्या कहने जा रही हैं—अमल ने बीच में ही प्रभावती को रोककर कहा—मैं जब कह रहा हूँ कि मैं बंदोबस्त लेना चाहता हूँ, तब उसका यह अर्थ है कि बंदोबस्त की सारी रकम अवश्य ही चुका दी जायगी ।

—अच्छी बात है—प्रभावती ने बड़े स्वाभाविक ढंग से कहा—बंदोबस्त बड़े दरबार से ही होगा । मुझे दुःख है कि आपको व्यर्थ ही यहाँ आने का क्लेश उठाना पड़ा !

—तो क्या यहाँ बंदोबस्त नहीं किया जाता ?

—किया क्यों नहीं जाता ?

—फिर ?

प्रभावती इस बार खिलखिलाकर हँस पड़ी और हँसते हुए ही उसने कहा—क्या आप यह जानते है कि हमदोनों भिन्न हैं ? नहीं, नहीं;

जो एक स्थान पर निश्चित हो जायगा, वह दूसरे स्थान पर भी ज्यों-का-त्यों निश्चित रहेगा। अभिन्नता इसी आधार पर टिकी रह सकती है। हमलोग अलग-अलग रहते हैं अवश्य; पर जमींदारी का वह भाग, जो आप बंदोबस्त लेना चाहते हैं, सम्मिलित भू-भाग है। उसके संबंध में जो एक बार निर्णय हो चुका है, उसमें व्यतिरेक नहीं हो सकता।

—व्यतिरेक का कोई प्रश्न नहीं—अमल ने प्रसन्न भाव से कहा—सम्मिलित भूभाग के लिए आपलोगों का नियम मान्य ही होना चाहिए। मैंने आपको व्यर्थ कष्ट दिया।

—कष्ट की कोई बात नहीं!—प्रभावती ने अमल की ओर एक सूक्ष्म दृष्टि डाली, फिर आगे कहा—आपने यदि विचार से काम किया होता, तो आज कुछ दूसरा ही हुआ होता। इसी समय बाहर से श्यामा तश्तरी में पान-लौंइची लेकर वहाँ धर गई। प्रभावती ने तश्तरी अपने हाथ में ली, फिर उसे अमल की ओर बढ़ाते हुए कहा—लीजिए न!

—धन्यवाद—अमल ने कहा—पान-लॉइची का मुझे अभ्यास नहीं!

प्रभावती अमल को अबतक जितनी दूर तक जान सकी थी, उससे उसका विश्वास दृढ़तर ही होता चला कि अमल में जो-कुछ ज्ञान-गाभीर्य हो, इतना अवश्य है कि उसमें आत्म-प्रतिष्ठा बड़ी प्रबल है। अमल की आकृति से नहीं, उसके बचन और व्यवहार से, यहाँतक कि उसके एक-एक शब्द से उसे वह ध्वनि सुन पड़ी, जो आत्म-प्रतिष्ठा से सनकर निकली थी! प्रभावती को लगा कि ऐसे व्यक्ति के साथ दो टूक बातें करना कदाचित् उचित नहीं था। पर, वह अपने मन की ग्लानि भीतर-भीतर ही पचाकर बोली—अभ्यास नहीं है तो कोई बात नही, पर मुझे लगता है कि आप बडे अप्रसन्न हो उठे हैं, शायद यही कारण है कि··· ····

—आप गलत समझ रही हैं—इसबार अमल ने जरा मुस्कराहट

लाने की चेष्टा की; पर वह मुस्करा भी नहीं सका, बोला—आपका मै किसी प्रकार असम्मान नहीं कर सकता। इतना अभद्र तो मै हो ही नहीं सकता। व्यवहार में अप्रसन्न-प्रसन्न होने की बात नहीं उठती। मैं जानता था कि आपका ध्यान ज्ञान-प्रसार की ओर सतत रहा है, इसलिए मेरे काम को आप सहानुभूति की दृष्टि से देखेंगी। मैं केवल आपकी सहानुभूति की आशा रखता था, दया की नही। मैं जानता हूँ, आप दयालु हैं; पर दया की भिक्षा मुझे नही चाहिए। व्यवहार में जो बातें उचित थीं, उनके पालन करने का मै प्रयत्न करूँगा। यदि देखूँगा कि वह संभव नही है, तो उस अवस्था में अन्यत्र कहीं चला जाऊँगा—इतनी विस्तीर्ण पृथिवी पर कही-न-कहीं ठौर-ठिकाना लग ही जायगा। पर, अब तो मुझे आज्ञा दीजिए••• ••

अमल इसबार उठ खड़ा हुआ और उसने अभिवादन सूचितकर चलने के लिए आगे की ओर कदम बढ़ाया। प्रभावती उठ खड़ी हुई। उसने अमल की सारी बातें ध्यान से सुनी थी, पर उसके उत्तर में उसने अपनी ओर से जरा भी व्यग्रता नही दिखाई। उसने अपनी भावभंगी से कुछ ऐसा ही प्रकट किया, जिसका अर्थ था कि उसने अमल की बातें कुछ सुनी ही नही।

अमल कमरे से बाहर निकला, प्रभावती उसके साथ ही बाहर आई। दोनों कुछ क्षण बाहर आकर ठहर गये। दोनों चुप थे। प्रभावती ने मौन भंग किया, आगत व्यक्ति की विदाई में उसे प्रसन्नता का दान करना उचित जान पड़ा। इसलिए वह उत्फुल्ल होकर बोल उठी—मै एक दिन स्वयं आपके विद्यालय को देखना चाहती हूँ। मेरा आना आपकी दृष्टि मे असंगत तो नही जान पडेगा?

—असंगत!—अमल ने स्वाभाविक भाव से कहा—विद्यालय तो ऐसी गुप्तसंस्था नही, जहाँ किसीके आने में द्विधा का बोध हो! फिर वह संस्था तो आपकी अपनी वस्तु है, मै तो केवल निमित्तमात्र हूँ!

ात रहती है, व्यक्ति बदलते रहता है! आप अवश्य ही आयें, आपका सहर्ष स्वागत है।

अमल ने जो कुछ कहा, अपने अंतर मे कहा। परिणाम यह हुआ कि प्रभावती स्वयं संकोच मे पड गई। उसे लगा कि अमल यदि आज वहाँ से प्रसन्न होकर विदा होता, तो उसे भी कुछ कम प्रसन्नता न होती! पर वह अपने आभिजात्य की रक्षा का प्रश्न सुलझाने मे अपनेको समर्थ न पा सकी। इसलिए अमल के अभिवादन के उत्तर में उसने केवल सिर झुकाकर अपनी स्वीकृति जतलाई, मुँह से कुछ कहने की वह भाषा न पा सकी।

अमल जब वहाँ से तनकर चलता बना, तब प्रभावती को कुछ ऐसा लगा, मानो आज वह बरबस पराजित हो गई है और उस पराजय से उसका हृदय अशात हो उठा है।

१५

मल चला गया; पर प्रभावती कुछ क्षण अपनी जगह पर खड़ी रह गई। उसे लगा कि उसके निकट से जो व्यक्ति अभी-अभी विद्युत् गति से तिरोहित हो गया है, वह उसके मानसलोक में अबभी चक्कर काट रहा है। उस व्यक्ति के व्यक्तित्व की सूक्ष्म से सूक्ष्मतर रेखाएँ अधिक-से-अधिक स्थूल हो उठी है और उन रेखाओ से परिपूर्ण जो चित्र अंकित हो उठा है, वह बडा सबल है, बड़ा सतेज है, बड़ा विस्मयपूर्ण है! प्रभावती के जीवन में ऐसा विस्मयपूर्ण, इतना सतेज और ऐसा सबल कोई व्यक्तित्व आया हो, उसे स्मरण नही। यद्यपि प्रभावती के राजत्व काल में आये दिन एक-न-एक नये अजनबी पुरुष अपनी माँग लेकर निश्चय ही आते रहे है, फिर भी उनमें ऐसा कोई तो नही आ सका, जिसकी स्मृति का लेशमात्र चिह्न उसके हृत्पट पर अंकित हो! पर अमल...

प्रभावती सोचने लगी—अमल का उद्देश्य तो कुछ बुरा नही—लोक-कल्याण की भावना ने उसके हृदय को मथ डाला है। उस मंथन से उसने जो सारतत्त्व अपने लिए ग्रहण किया है, वह जड़ता को सचेतन करना है! सच तो यह है कि जनता की जड़ता इतनी घनी हो उठी है

कि उसमें मानवता की ज्योति तक नष्ट हो गई है, वह आज इतनी मूर्च्छित हो पड़ी है कि उसमें सजगता की भावना तक नहीं रह गई है! जनता को सजग करना—उसकी आनेवाली पीढ़ी को सचेतन करना· अमल व्यवसाय नहीं करना चाहता, अपने सुख का साधन नहीं जुटाना चाहता, जंगल में—जंगल के खण्डहर में विद्यालय का संस्थापन—वह विद्यालय जहाँ लड़के रहते हैं, वहाँ वे पढते-खेलते और खाते हैं, जहाँ केवल मस्तिष्क को ही विकसित नही किया जाता, उसके यंत्र को—यंत्र के एक छोटे-से-छोटे पुर्जे को भी पुष्ट और सबल बनाये रखने का अभ्यास कराया जाता है—अमल उस खण्डहर को स्वर्ग बनाना चाहता है—अपने लिए नहीं—जानता की उस नई पीढी के लिए, जो भारत की भावी आशा है—वह जो आज अचेत है···

प्रभावती की विचार-धारा प्रखर वेग में जहाँ तक पहुँच सकती थी, वहाँ पहुँचकर उसका अंतर आनन्द से उद्भासित हो उठा। उसने सोचा—अमल को वह सहायता करेगी। आज जिस तरह उसे निराश होकर जाना पड़ा है, उसी तरह वह पायगा कि रानी प्रभावती अपने संपूर्ण साहाय्य से उसकी कल्पना को मूर्त्त रूप देगी·· ··अमल समझेगा कि कल्पना का चित्र कोई भी अंकित कर सकता है, पर उस चित्र में आत्मा को आसीन करना सबसे सम्भव नही—सबके वश की बात नहीं··· ··

संध्या हो चली थी, पश्चिम क्षितिज पर लालिमा की रेखा धूमिल हो चुकी थी, मीठी-मीठी हवा बह रही थी, पंछी आकाश-मार्ग से भागे जा रहे थे। प्रभावती की दृष्टि योंही आकाश की ओर जा लगी, तभी उसे स्मरण हो आया कि कुमुद अभीतक आया है क्यों नही! तभी प्रभावती चंचल हो उठी। वह वहाँ से आगे बढ़ी और बढते ही उसने पाया कि मंजु उसी ओर आ रही है, उसे देखते ही पूछा—क्यों री मजु, कुमुद अभीतक नहीं आया?

—कहाँ, उसे तो अबतक देखा नहीं माँ!—मंजु ने सरल भाव से कहा—मगर तुम उसके लिए चिंतित क्यों होती हो? अब तो उसके संगी है--साथी हैं······

मंजु कुछ क्षण रुकी, फिर आपही-आप खिलखिलाकर हँस पड़ी, फिर जरा गभीर होकर बोली--उसका दोष नही है माँ, तुम चाहे उसे जो भी बनाओ, मगर वह बन कैसे सकता है ······

—मै क्या बनाना चाहती हूँ!--प्रभावती हँस पड़ी, फिर कुछ क्षण रुककर उसी हँसी को लेकर बोली—कुमुद आखिर बेचारा ही तो ठहरा! संगी-साथी कौन नही पसंद करता मंजु? यह दोष तो नही, आखिर वह मनुष्य है, सभी चाहता है कि ····

—मनुष्य तो है, मै कब कहती कि वह मनुष्य नही, हाथी है!

हाथी बोलकर मंजु फिर से खिलखिलाकर हँस पड़ी, प्रभावती भी अपने को रोक न सकी, वह भी मुस्करा उठी, फिर बोली--हाथी तुमने खूब कहा मंजु! देखती हूँ, तुम अलंकार का अभ्यास अच्छा कर रही हो···उपमा, उत्प्रेक्षा ····

—उत्प्रेक्षा-उपमा तो परिडत बड़बडाया करते हैं, अब देखती हूँ कि तुम भी वही कह रही हो! मगर मैने हाथी तो किसी और उद्देश्य से कहा नही! मैं तो कह रही थी कि वह अब अपने संगी-साथी के बीच रम गया है! उस दिन कह रहा था ·····

—क्या कह रहा था मंजु?--प्रभावती जरा सतर्क हो उठी, उसे लगा कि मानो कुमुद ने कुछ ऐसी बातें इससे कही हों, जो उपेक्षणीय नहीं, जिन्हें जानना ही चाहिए। इसलिए वह मंजु की ओर जिज्ञासा-भरी दृष्टि से देखती हुई बोली–हाँ री मंजु, क्या कह रहा था वह?

—कहता था—मंजु ने सरलभाव से कहा—वह कहता था कि उसे

बाहर-बाहर रहने में जितना मन लगता है, उतना महल में नहीं, महल को कहता है वह पत्थर का गढ। हाँ, पत्थर का गढ, जहाँ मनुष्य सुरक्षित रह सकता है, मगर खुली हवा के पंछी की तरह जहाँ चहक नहीं सकता! जहाँ· ···

मंजु की बात अधूरी ही रह गई। उसकी दृष्टि ज्योंही बाहर की-ओर जा लगी, त्योंही उसने पाया कि कुमुद सशरीर उसी ओर आ रहा है। प्रभावती ने भी कुमुद को आते हुए देखा, पर मंजु उसे देखते हुए ही अपनी जगह से बोल उठी—आ गये कुमुद, आ गये! अभी मैं तुम्हारी ही चरचा कर रही थी।

—चर्चा नहीं, शिकायत—प्रभावती विहँस उठी!

—शिकायत!–मंजु की आकृति कठोर हो उठी। उसके गालों का रंग गाढा हो उठा। वह तुनुककर बोली—मैं किसीकी शिकायत नहीं करती! तुम तो जाने कौन-कौन से अर्थ लगाया करती हो, माँ! तुमको समझना क्या इतना कुछ आसान है! बापरे बाप! सची बात कहो, वह भी तुम्हारे सामने शिकायत हो जाती है! जाओ, मैं अब कुछ भी कहूँगी··· ···

कुमुद भौचक हो उठा। उसकी समझ में कुछ भी न आया कि शिकायत क्या है और सची बात क्या? मगर उसे लगा कि वहाँ अभी-अभी जो बातें चल रही थीं, वे अवश्य उसके प्रति ही कही-सुनी जा रही थी। कुमुद स्वयं लज्जित हो उठा, उसकी आकृति धूमिल हो उठी। वह सोचने लगा कि शायद उसके पहुँचने में देर होने के कारण ही उसकी चर्चा हो रही होगी। इसलिए वह लजाते हुए। बोल उठा—क्या कह रही, मंजु? देर तो रास्ते में हुई नहीं, वह जो एक दिन शाम को आये थे, जो रानीमाँ को चाची कहते थे, वह···

—वह—प्रभावती सतर्क होकर बोली—वह नरेन तो नहीं था, कुमुद, वह जो··· ·

—हाँ, वही थे रानीमाँ ! आज भी घोड़े पर थे !

प्रभावती कुछ क्षण कुमुद की ओर देखती रही, पर मंजु तुरत बोल उठी—क्या तुम्हें नरेन भैया ने पहचान लिया, कुमुद ?

कुमुद के ओठ खुले, वह हँसा और हँसकर ही कहा—पहचाना नहीं तो उन्होंने कैसे कहा कि महल में भेंड़ के मेमने की तरह खूब खा-पीकर मुटा लो ! क्या तुम मेरे की बात भूल गये ? देख लो वह घोड़ा !

—कुमुद, तुमसे ऐसा कहा नरेन ने ?—मंजु रोष में तमककर बोल उठी।

कुमुद ने सिर उठाया, और धीरे से कहा—हाँ। और कहा···

और कहने की जरूरत नहीं—प्रभावती जरा चिन्तित हो उठी, उसने कुमुद को अपनी ओर खींचकर उसके केशों पर हाथ फेरते हुए कहा—कुछ सुनने की आवश्यकता नहीं है कुमुद, मुझे सब मालूम है ! पर, तुम्हें चिंतित होने की जरूरत नहीं। मैं देख लूँगी ! तुम्हारा कुछ अनिष्ट न कर सकेगा वह ! क्या तुम उससे भय खाते हो कुमुद ?

—भय !—कुमुद सिर झुकाकर चुप हो रहा।

—दुष्ट से कौन भय नहीं खाता, माँ ?—मंजु ही बोल उठी—उन्हें तो कुमुद से जलन हो रही है। मैं सब समझती हूँ। राजवंश का नरेन है न ! जलन तो होगी ही ! मगर मैं कहे देती हूँ माँ, कुमुद को अगर उन्होंने फिर से छेड़ा, तो मैं उनकी शिकायत बड़ीमाँ से चलकर करूँगी और ·····

—और तुम्हें कुछ न करना पड़ेगा मंजु—उसे आश्वासित करते हुए प्रभावती ने सरल भाव से कहा—राजवंश का दोष नहीं है ! मनुष्य तो सभी सामान्य नहीं होते। उनमें अच्छे-बुरे भी होते हैं। सभी को लेकर—सभी के साथ चलना पड़ता है ! पर,····प्रभावती ने देखा कि मंजु के बचनों से कुमुद की आकृति पर उदासी की छाया धुलकर

प्रसन्नता की रेखा खिंच आई है, तब वह मुसकुराकर बोल उठी—कुमुद, भय की बात नहीं ! देखो, तुम्हारी रक्षा के लिए मंजु जब यहाँ तक तैयार हो उठी है, तब तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट नहीं हो सकता—कोई भी तुम्हें कष्ट नही पहुँचा सकता ! यदि तुम चाहो, तो तुम्हें दूसरे स्कूल मे भेजने का प्रबंध करूँ !

—दूसरे स्कूल मे—कुमुद ने सिर उठाकर प्रभावती की ओर देखा, तभी उसे स्मरण हो आया कि वहाँ तो वह अपने संगो-साथियो को पा नही सकेगा—खासकर नदलाल गुरुजी वहाँ नही मिलेंगे, दयाल-जैसा साथी नही मिलेगा। इसलिए वह बोल उठा—नही, नही, रानीमाँ, मै यही पढ़ूँगा। मुझे यही पढ़ने दो। मुझे किसीका भय नही······

पारो जाने अबतक कहाँ छिपी थी, पर जहाँ भी थी, वहीसे वह सारी बातें सुन रही थी। अबतक वह किसी तरह दम साधकर पड़ी थी, पर उसे लगा कि उसे इस तरह गुमसुम नही रहना चाहिए। जलपान की तश्तरी तो किसीने अबतक ला रखी नही, इसलिए उसकी आकृति विकृत हो उठी, उसे रंज आया श्यामा पर ! श्यामा महरानी बनी है—वह मन-ही-मन गुनगुनाई, फिर चुपके से निकलकर रसोईघर की ओर बढी और वहाँ पहुँचकर बोली—पारो नही आयगी तो जलपान भी नहीं कराया जायगा ! बुद्धि सबकी मारी गई है··· ···

—सबकी मारी गई है—चंपी ने कढ़ाही से तरकारी तश्तरी पर निकालते हुए कहा—ठीक कह रही हो पारो; मगर सबसे अलग तुम अपनेको क्यों समझ रही—यही तो समझ में नहीं आता। अबतक तुम थी कहाँ ? जब रोज-रोज तुम जलपान पहुँचाती हो, तब किसीपर दिल का गुबार निकालने से फायदा ?

चंपी ने तश्तरी भरी और पारो की ओर बढाते हुए कहा—मगर अब तो खुश हो, पारो ?

चंपी बोलकर हँस पड़ी। पारो को वह हँसी बुरी लगी, वह बिगड़कर बोली—जाओ, मैं नही जाती, अब मैं यही रहूँगी, तुम्ही जाकर पहुँचाओ।

चंपी ने तश्तरी उठा ली और बाहर की ओर चल पड़ी। पारो का रोष भड़क उठा। वह चंचल हो उठी। उसे लगा कि वह हारी, जीत रही चंपी की, पर चंपी की जीत! ···पारो झपटकर सामने आई और उसके हाथ से तश्तरी छीनते हुए बोली—मुँह तो देखो भला, बंदर की शकल लेकर रानीमाँ के पास पहुँचेगी चुड़ैल! और वह दौड़ पड़ी।

पारो ने लौटकर देखा कि श्यामा कुमुद के कपड़े बदलवाकर उसका मुँह हाथ धुलवा रही है। साथ-ही-साथ उससे चुप-चुप बातें भी करती जा रही है। इससे श्यामा के अधर खिल उठे हैं! पारो ने गहरी दृष्टि से एक बार श्यामा की ओर देखा। उसने तश्तरी रानीमाँ के पास की तिपाई पर रखी, और वहीसे बोली—जलपान ठंढा होता जा रहा है, कुमुद!

प्रभावती ने पारो की ओर देखा, पर पारो की आकृति प्रफुल्ल-जैसी न देखकर बोली—क्यों पारो, तुम्हारा चेहरा फीका क्यों दीख रहा है? कुछ गड़बड़ तो नही है?

—गड़बड़ क्यों होगी, रानीमाँ!—पारो विहँस उठी, फिर जरा रुककर बोली—अब क्या नरेनबाबू यहाँ नहीं आएँगे रानीमाँ?

—नरेनबाबू! क्यों?—प्रभावती ने पारो की ओर ताककर कहा—क्यों पारो, उसकी याद तुम्हे कैसे हो आई?

—कुमुद को वह धमकाते हैं न!—पारो ठीक-ठीक बोल न सकी; पर जितना भी कहा गया, वह प्रभावती केलिए पर्याप्त था। कुमुद आकर जलपान करने लगा। प्रभावती ने कुमुद के सामने, खासकर जलपान के समय, अप्रिय प्रसंग को, जिस पर बातें शेष हो चुकी हैं, फिर

.से उठाना न चाहा। इसलिए वह बोल उठी—समझ गई पारो, तुम क्यों उदास हो। पर उदास या खिन्न होने की तुम्हे आवश्यकता नही। जरा तुम देखो तो भला, पूजाघर मे सब-कुछ ठीक है।

पारो समझ गई कि रानीमाँ उसकी उपस्थिति वहाँ नहीं चाहती, केवल उसे वहाँसे हटाने केलिए ही पूजाकर देखने की आज्ञा दी गई है! पारो मनमारकर चुप-चाप, विना एक शब्द बोले ही, वहाँसे चलती बनी।

अब वहाँ उन दोनों के सिवा कोई और न था। मंजु झुँझलाकर पहले ही खिसक चुकी थी। प्रभावती के मस्तिष्क में जहाँ एक ओर कुमुद का भविष्य अंकित हो उठा था, वहाँ दूसरी ओर दुर्धर्ष नरेन का रौद्र रूप!—वह नरेन्द्र जिसने आज भी कुमुद को छेड़ा है, जो उस दिन महल में आकर जली-कटी सुना गया है, जो कुमुद को घोड़े से रौंद चुका है, उसपर चाबुक चला चुका है! प्रभावती आँखों से कुमुद को देख तो रही है; पर उसका मस्तिष्क उसके भविष्य की कल्पना में उलझा हुआ है और जब उसकी उलझन सुलझती-सी जान पड़ने लगती है, तब वह कहती है—कुमुद, तुम क्या मुझपर विश्वास नहीं करते? सच-सच बताओ—तुम मुझपर विश्वास नहीं करते?

—विश्वास!— कुमुद के ओठों से निकला, पर वह समझ नहीं सका कि रानीमाँ क्या कहना चाहती है। इसलिए वह सिर झुकाकर मन-ही-मन सोचने लगा।

—हाँ, विश्वास ही तो, कुमुद—प्रभावती को कुमुद की कही हुई पुरानी बात याद हो आई, इसलिए बोली—तुमने एक दिन कहा था, उस युवती सुन्दरी की बात, जिसके यहाँ तुम पहले रह चुके थे। जिसने तुम्हें छला, धोखा दिया। याद है न? तुमने कहा था न?

—हाँ, कहा था —कुमुद बोल उठा; पर फिर भी आगे वह बोल न सका।

—हाँ, मै वही जानना चाहती हूँ कुमुद !—प्रभावती ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा—सच-सच बताओ कुमुद, तुम मुझे वैसा ही तो नही समझ रहे हो ?

इसबार कुमुद ने पूरा-पूरा समझ लिया कि प्रभावती के विश्वास का क्या अर्थ है ! कुमुद खिलखिला कर हँस पडा और हँसते हुए कहा—नही-नहीं, रानीमाँ, मै विश्वास करता हूँ, बहुत-बहुत विश्वास करता हूँ ! आप और वह—नही-नही, अब तो मे कुछ-कुछ जान गया हूँ रानीमाँ !

—क्या जान गये हो कुमुद ?—प्रभावती की आँखें उल्लास से चमक उठी, बोली—हाँ, बोलो कुमुद ·· ···

—जान गया हूँ यह कि आप मेरी कितनी चिंता रखती हैं !—कुमुद को मेले की बात याद हो आई । उसे लगा कि यदि उसे उनने घोड़े से कुचलते और चाबुक खाते न देखा होता और उसे अपने साथ वह लिवाकर महल में लाई न होती, तो उसे इस तरह का आदर-यत्न आज कहाँ नसीब होता ! इसमें तो कुछ छल-कपट नहीं है ! प्रभावती रानी हैं, पर कितना ध्यान रखती हैं वह ! यहाँ तो मंजु है, श्यामा है, पारो है, चंपी है · और भी बहुत सी हैं । सबमें स्नेह है—सबमें ममता है—क्या वह-सब छल-कपट है ? नहीं-नहीं···कुमुद की दृष्टि हठात् प्रभावती की ओर जाने लगती है और वह पाता है कि उसकी रानीमाँ छलछलाई आँखों से उसकी ओर ही देख रही है ! कुमुद ने उसकी आँखें आँसुओं से भींजी कभी नहीं देखी थीं । इसलिए उसे लगा कि उससे अनजान में जाने कोई भूल तो नहीं हो गई ! :इसलिए हड़बड़ाकर वह बोल उठा—मै सच कहता हूँ रानीमाँ, इतना सुख—ऐसा सुख तो शायद मुझे अपने घर में भी नहीं मिलता । अपनी माँ भी इतना··· ···कुमुद बात को अधूरी रखकर दूसरी ओर देखने लगा ।

—अपनीमाँ—प्रभावती ने अधूरी को बात पूरी करते हुए कहा—तुम

बच्चे हो कुमुद, माँ तो माँ ही होती है, कोई दूसरी माँ का आसन कैसे पा सकती है।

—मगर आप तो माँ के आसन पर विराजमान हैं—कुमुद ने स्वाभाविक भाव से ही कहा और समर्थन में वह आगे बोला–मै जानता हूँ–रानीमाँ, श्यामा, पारो, चंपी सब तो ऐसा ही कहती है—आप सबकी रानीमाँ हैं—यहाँ-वहाँ, अब तो मै सब जगह जाता हूँ। सब कहते है—रानीमाँ···

कुमुद आगे न बोल सका, उसे स्वयं लगा कि किसीकी प्रशंसा मुँह पर नही कही जानी चाहिए! सच्ची या झूठी प्रशसा मुँह पर कहना खुशामद-जैसो बात होती है।

मगर रानीमाँ ने उसे आगे बोलने न दिया, कहा—नहीं-नहीं कुमुद, ऐसी बात नही है, ऐसी बात नही हो सकती! माँ का आसन कोई नही ले सकता–मेरी गिनती ही क्या! नहीं-नहीं, कुमुद, मै किसी की माँ नहीं–माँ का सम्मान जो देते हैं, वे अपने गुण से ही देते हैं, यह उनका बड़प्पन है, मेरा नहीं·· ···

कुमुद ने प्रभावती की बातें अच्छी तरह समझीं नहीं, इसलिए वह भौंचक-सा उसकी ओर देखता रहा; मगर उसके मन में लगा कि रानीमाँ ने संकोचवश ही ऐसा कहा है। नहीं तो कौन नहीं जानता कि रानीमाँ सचमुच कितने की माँ हैं—ऐसी माँ··

तभी मंजु जाने कहाँ से अचानक आकर बोली –ओह, अबतक बैठी ही रहोगी माँ! पूजा–आरती क्या आज कुछ भी न होगा? कुमुद को घेरे क्यों पड़ी हो? चलो, कुमुद, देखूँ, तुम अब और कितना लिखना-पढ़ना सीख गये हो! चलो, उठो।

प्रभावती को सचमुच आज पूजा-घर जाने में देर हो गई थी। वह भीतर से चौंक उठी, फिर हँसकर उसने कहा—हाँ, ले जाओ मंजु, कुमुद

को। देखो, वह अब कितना सीख गया है। कुमुद ने मुझे घेर रखा था, मंजु, तुमने ठीक ही कहा।

—मैं तो देखती हूँ कि कुमुद को घेरे रखकर पूजा-आरती भी :तुम भूलती जा रही हो!

—शायद!—प्रभावती ओठों-ओठों में बोली—फिर कुछ क्षण रुक कर खड़ी होती हुई हँसकर कहा—पूजा-आरती क्या इतनी बड़ी चीज होती है कि दया-ममता को भी मैं भुला दूँ! नहीं, वह भूल होगी मंजु!

पर मंजु और कुमुद आगे निकल चुके थे। उसकी बातें शायद ही उनके कानों गई हों। प्रभावती को लगा कि अच्छा ही हुआ, उसकी बातें उसतक ही सीमित रह गईं, पर वह सोचने लगी-पूजा-आरती क्या इतनी बड़ी चीज होती है कि दया-ममता को मैं भुला दूँ! पूजा-आरती, ''दया-ममता ''प्रभावती स्वयं विहंस उठी और वहाँसे चल पड़ी।

१६

नरेन्द्र ने कुमुद को छेड़कर उसके हृदय में जो भय-उत्पादन करना चाहा था, उससे वह स्कूल जाने से जरा भी विमुख न हुआ। प्रभावती पर उसका विश्वास जम चुका है, वह जान गया है कि रानी प्रभावती का स्नेह-आदर कल्मष से मिश्रित नही। इसमें उनका स्वार्थ नहीं। वे दयालु हैं—सिर्फ उसके प्रति ही नहीं, उस-जैसे श्यामा है, पारो है, चंपी है और, न जाने और कितने हैं! इतना ही तो नहीं—जहाँ-जहाँ भी उनकी आदर से चर्चा होती है और वह चर्चा उनके उपकार से, उनकी दयालुता से सनी रहती है। रानीमाँ ने उसे अभय कर दिया है, उसे पाठशाला में पढने बिठलाया है—पाठशाला में, जहाँ नन्दलाल-जैसे गुरु हैं—जहाँ दयाल-जैसा उसका साथी है… ..

दयाल की बात याद आते ही वह चंचल हो उठा। उसे लगा कि जल्दी उसे पाठशाला पहुँचाना ही चाहिए। उसे हुआ कि आज तुरत वह पाठशाला पहुँचकर दयाल से कल की सारी बात कह सुनायगा, वह कहेगा कि नरेन्द्र जमींदार-वंश का कुलांगार है-जो उसके पीछे पड़ा हुआ है; पर रानीमाँ ने उसे अभय कर दिया है, मंजु भी उस नरेन से बहुत रंज है।

यहाँ तक कि वह तो उसके घर जाकर उसकी माँ से शिकायत करने पर तुली बैठी है।...कुमुद रास्ते मे चल रहा था और इस तरह सोचते हुए चल रहा था; पर पाठशाला पहुँचकर उसने अपने वर्ग में देखा कि अभी तो वहाँ कुछ ही लड़के आये हैं, सभी तो आये नही है और न अबतक नन्दलाल गुरुजी ही आ सके हैं ! बात क्या है—अभीतक.....तभी उसने अपने एक साथी से पूछा—बात क्या है,अभी तो गुरुजी भी नही आये और न सभी......

—सभी आ जायँगे कुमुद—उस लड़के ने कहा—अभी घंटी पड़ने का समय हुआ कहाँ है! देखते हो, आज अबतक हेडमास्टर भी तो नही आये हैं! मगर, आज तुम इतना पहले कैसे पहुँच गये, कुमुद ?

—पहले!—कुमुद को जान पड़ा कि सचमुच आज वह आने में बड़ी जल्दी कर गया है! ठीक से जमकर वह आज खा भी तो नहीं सका। उसने कपड़े भी तो आज ठीक से नहीं पहने! ओह, तभी तो पारो उससे कह रही थी—पढने का नशा चढ़ गया है! पढ़ने का नशा ?... कुमुद आप ही हँस पड़ा।

साथी ने उसे हँसते हुए पाकर कहा—पहले आना क्या अच्छा नही है कुमुद ? तुम हँस रहे हो क्यों ?

—हाँ भाई, अच्छा क्यों नही है—कुमुद ने विचारवान लड़के-जैसा कहा—जो लड़के पढ़ने में मन लगाते है, वे पहले ही आते हैं।

—मगर मै तो इसलिए पहले आया कि घर पर मुझसे बहुत काम कराया जाता है, बहुत झिड़क भी ऊपर से खानी पड़ती है। काम भी करो और ऊपर से झिड़क भी सहो—उससे अच्छा तो यही कि पाठशाला चले आओ, खेलो-कूदो, पढ़ो-लिखो, बस खुशी-ही-खुशी है! कुमुद, तुम तो राजकुमार ठहरे—कोई काम-काज तो तुम्हें करना नहीं पड़ता!

—काम-काज ?—कुमुद ने राजकुमार शब्द से संकोच का अनुभव किया। उसकी आकृति अप्रतिभ हो उठी और खिन्न स्वर में बोला—देखो, महेश, मै राजकुमार नहीं हूँ, ऐसा मत कहा करो। राजकुमार भले ही काम करना पसंद न करे; मगर मैं काम-काज तो खूब ही पसंद करता हूँ। इतना करना चाहता हूँ जितना पढ़ना नहीं! मगर मुसीबत तो यह है कि मुझे काम-काज करने दिया ही नहीं जाता! महल में रहकर जी तो घबरा उठा है...

महेश ने कुमुद की ओर बड़े गौर से देखा। वह अबतक कुमुद को राजकुमार ही समझता आ रहा है। कुमुद की आकृति और वेश-भूषा ही इतनी आकर्षक थी कि राजकुमार से भिन्न दूसरा उसे कुछ और समझा ही नहीं जा सकता था। इसलिए महेश ने उसकी बातों से आश्चर्य प्रकट करते हुए कुतूहल से कहा—मै सब समझता हूँ, कुमुद, तुम अपने को चाहे जितना छिपाओ; पर तुम मुझे धोखा नहीं दे सकते! मैं सब समझता हूँ। हाँ, सब समझता हूँ!

—तुम गलत समझते हो!—इसबार कुमुद ने जोर देकर कहा—मै तुम्हें धोखा नहीं दे सकता! मैंने किसीको कभी धोखा नहीं दिया है, औरों ने मुझे जरूर धोखा दिया हैं; पर मै धोखा देना जानता नहीं! वह आदमी क्या, जो दूसरों को धोखा दे, दूसरे को छले!

इसी समय लड़कों के कुछ झुण्ड आ पहुँचे। महेश और कुमुद की बातें आगे चल नहीं सकीं। सामने अचानक नन्दलाल गुरुजी आकर खड़ा हुआ और कुमुद की ओर देखकर बोला—मैं तुम्हारी पढ़ाई से बड़ा खुश हूँ, कुमुद! मै तो रानीसाहिबा से मिला था, वे मेरे काम से बड़े प्रसन्न हैं! उनसे तुमने मेरे बारे में क्या कहा था, कुमुद?

—मैं ?—कुमुद जरा अपने-आपमें सहमा; पर तुरत सावधान होकर संकोच में भरकर कहा—मैंने तो यही कहा था कि मैं वहीं पढ़ूँगा। नन्दलाल गुरुजी अच्छे हैं, वे खूब पढ़ाते हैं।

नन्दलाल गुरुजी ने आगे बढ़कर कुमुद की पीठ थपथपाते हुए कहा–तुमने बचा लिया मुझे कुमुद, तुमने बचा लिया! मगर मै जानता हूँ कि नन्दलाल गुरुजी क्या है! वह पहले जैसा था, अब वैसा नहीं है! मै बूढ़ा हुआ, बातें याद रहती नहीं हैं, इसलिए' हाँ, यही कारण है कि मुझे अब कोई नहीं चाहता! और ठीक भी है। जब मैं काम कर नहीं सकता, तब मैं लड़कों को सिर्फ घेरे क्यों रहूँ! अफसर मुझे अब नही चाहते। मैं देखता हूँ कि अब मुझे बहुत जल्दी हट जाना ही चाहिए।

—आप हट जाएँगे गुरुजी!—वर्ग में से कई लड़के एक साथ बोल उठे—तो आपकी जगह पर कौन आयगा? सभी लड़के कुतूहल से गुरुजी की ओर देखने लगे। वर्ग में जोर का हल्ला होने लगा। हेडमास्टर झटकते हुए उस वर्ग के कमरे के सामने आकर डपट कर बोले—इतना हल्ला क्यों होता है, गुरुजी? देखिए, यह बुरी बात है! आप मौजूद हैं, फिर भी हल्ला होता है?

लड़के शात हो गये। जो जहाँ खड़े थे, वे अपनी जगह पर आ बैठे। हेडमास्टर अपने कमरे मे गये। घंटी बजी। फिर सभी कमरों से लड़के निकलकर बाहर एक स्थान पर एकत्र हुए! सम्मिलित प्रार्थना हुई। उसके बाद सभी लड़के अपने-अपने वर्ग के कमरे में यथास्थान जा बैठे।

पाठ प्रारंभ हुआ, पर नन्दलाल गुरुजी अपने आसन पर चुप्पी साधकर जो बैठा, तो फिर अंततक बैठा ही रह गया—मुँह से उस दिन एक शब्द न निकाला। लड़कों ने अपने-अपने हमजोलियों के बीच काना-फूँसी की, आँखों-आँखों में बातें हुई और वर्ग के लड़कों को यह दृढ़ विश्वास हो चला कि अब नन्दलाल गुरुजी ज्यादा दिनों तक स्कूल में टिक नहीं सकेंगे! लड़कों ने देखा कि नन्दलाल गुरुजी आज न झपकी ले रहे हैं, न पैर पसारकर ही बैठे हैं।

उस वर्ग की पढ़ाई जैसी चलती थी, वैसी चलती रही। एक ने दूसरे

को पढाया और दूसरे ने तीसरे को। कुमुद का साथी दयाल चौकस था। उसने कुमुद से कहा—जानते हो कुमुद, नन्दलाल गुरुजी अब यहाँ से चले जायँगे ?

—नही, मै कुछ नही जानता !—कुमुद ने कहा फिर वह मन-ही-मन सोचने लगा—अगर नन्दलाल गुरुजी चले जाएँगे तो उनकी जगह पर कोई दूसरा आयगा। पता नही, वह कैसा होगा, मगर जैसा भी हो, वह पढाने-लिखाने में जरूर अच्छा होगा। ये जब पढा-लिखा ही नहीं सकते, तब इनका न रहना ही अच्छा ! मगर ये बहुत भले हैं, इनमें दया है, हम बच्चों पर भीतर से इनका प्यार भी है, डाँटते है जरूर, पर उस डाँट में भी इनका स्नेह रहता है ! कुमुद आगे न सोचकर बोल उठा—तब तो बहुत बुरा होगा दयाल !

—बुरा होगा या अच्छा, यह तो नही कहा जा सकता—दयाल ने बहुत सोच-समझकर कहा—मगर दूसरा कोई आयगा, तो वह खूब पढ़ायगा ! पढ़ाई तो खाक कुछ होती नहीं है, फीस दिये जाओ, ऐसा कब तक चल सकता है। सरकारी स्कूल ठहरा, निसपीट्टर आते हैं, वे तो जानते हैं कि कौन क्या पढ़ाता है ! एक बार निसपीट्टर आये थे कुमुद, जब तुम यहाँ नहीं आये थे। क्लास में उन्होंने लड़कों से बहुत सवाल पूछा, किताब पढने को कहा, मगर किसीने न तो ठीक से किताब पढ सुनाई और न किसीने कुछ जवाब ही दिया ! इसपर वे हँसकर बोले—जैसा गुरु वैसा चेला, दोनों नरक में ठेलमठेला !

—ठेलमठेला—कुमुद जोर से खिलखिलाकर हँस पड़ा, और हँसते हुए ही कहा—ऐसा कहा था, दयाल ? क्या कहा—जैसा गुरु वैसा चेला, दोनो······

—दोनों नरक में ठेलमठेला !—दयाल भी हँस पड़ा ! बगल के लड़के दोनों की बातें सुन रहे थे। उन लड़कों से हँसने का कारण छिपा न रहा।

एक ही साथ वे बोल उठे—देखो, इस तरह गुरुजी का मजाक न उड़ाया करो! यह ठीक नहीं, जानते नहीं हो, गुरुजी आज कितने दुखी हैं?

उनमें से एक बड़ा मुँहफट लड़का था, वह कुमुद से भीतर-भीतर द्वेष रखता था और जब-तब उसपर व्यंग कसा करता था, बोला—कुमुद, आज तुम गुरुजी का मजाक उड़ा रहे हो। क्या उस दिन की बात याद नहीं है, जब हेडमास्टर ने तुम्हारा नाम दर्ज नहीं किया, तब ये नन्दलाल गुरुजी थे, जो सामने आकर बोले—नाम दर्ज भले न हो, मगर यह मेरे दर्जे में पढ़ेगा! और तबसे उनके दर्जे में पढ़ रहे हो! अगर दूसरा आया, तो जाने तुम यहाँ पढ़ भी न सकोगे!

कुमुद को भी यह बात मालूम न हो—ऐसी बात नहीं, पर यही एक बात थी, जिससे कुमुद के हृदय में नन्दलाल गुरुजी के प्रति अधिक श्रद्धा थी, सम्मान था, समादर का भाव था! कुमुद ने उत्तर में कहा—मेरी फिकर न करो सुक्खू; मगर तुम सच बात कहने से किसीको रोक नहीं सकते। कौन क्या समझता है, मुझे भी मालूम है! अपनी फिकर करो।

कुमुद ने जो-कुछ बातें कहीं, उसमें दंभ न था; पर सुक्खू ने समझा कि कुमुद को उसका वैसा कहना शायद ठीक न हुआ। कुमुद को क्या है, उसके लिए रानीजी दस गुरुजी अपने घर पर रख सकती हैं! बड़े का लड़का ठहरा! इसलिए सुक्खू ने सिर झुका लिया, बोला—तुम बुरा मान गये कुमुद, मैंने जो सुना था, कह दिया!

—तुमने सच ही कहा है, सुक्खू!—कुमुद ने सुक्खू की ओर देखते हुए कहा—मैं ऐसा नहीं कि नन्दलाल गुरुजी को भूल जाऊँ। अगर मुझे कुछ भी विद्या आई, तो समझूँगा कि वह नन्दलाल गुरुजी के वरदान से ही मिली है।

सुक्खू बोल उठा—दान तो जानता हूँ कुमुद! मगर वरदान क्या

होता है । बड़े आदमी बड़ी बात आसानी से जान जाते हैं; मगर हम-लोग यह वरदान की बात जान भी कैसे सकते हैं ।

दयाल बीच में पड़ा, बोला—पढने से क्या होता है सुक्खू ! कुछ बातें ऐसी होती है, जो बड़ों के संगत में ही जानी जा सकता हैं । कुमुद के लिए जो आसान है, वह सबकेलिए आसान कैसे हो सकता है !

उस दिन शनिवार था। शनिवार को डेढ बजे तक ही स्कूल बैठता था। छुट्टी की घंटी बज उठी, वर्ग के लड़के बाहर निकले, मगर नन्दलाल गुरुजी के वर्ग के लडके गुरुजी के आदेश की प्रतीक्षा में, जाने-जाने को तैयार होकर भी, जा न सके ! नन्दलाल गुरुजी की जैसे समाधि टूटी ! उसने एक बार अपनी सफेद डाढी पर हाथ फेरा, फिर जम्हाई लेकर चुटकी बजाई और कहा—क्या यह आखिरी घंटी बजी है ?

—हाँ, आखिरी घंटी !

—हाँ, आखिरी घंटी ही बजी !—नन्दलाल गुरुजी ने इस भाव से कहा जैसे वह उसकेलिए स्कूल की आखिरी घटी हो सदा के निमित्त ! फिर लड़कों से कहा—अच्छा, तो जाओ !

और वर्ग के सभी लडके सिर झुकाकर कमरे से बाहर निकले। नन्दलाल गुरुजी, सबके बाद, निकल कर हेडमास्टर के दफ्तर की ओर चला गया ।

कुमुद कुछ दूर तक कुछ लड़कों के साथ बाहर आया, पर वह महल की ओर न बढ़कर दयाल से बोल उठा--देखा, दयाल, गुरुजी ने क्या कहा ?

—कहाँ ?—दयाल चौंककर बोला—कुछ तो नहीं कुमुद !

—कुछ कैसे नहीं—कुमुद ने बड़े गंभीर भाव से कहा—उन्होंने जो आखिरी घंटी की बात कही !

—सो तो उन्होंने कहा—दयाल ने कहा—वह तो आखिरी घंटी थी ही। कुछ गलत नहीं।

कुमुद और भी गंभीर होकर बोल उठा—मैं कहे रखता हूँ, दयाल, हमलोग अब नन्दलाल गुरुजी को पा नहीं सकेंगे! मुझे लगता है कि उन्होंने स्कूल से सदा केलिए विदा ले ली।

—क्या तुम ठीक कह रहे हो कुमुद ?

—हाँ, मुझे तो ऐसा ही लगता है!

दयाल कुछ क्षण चुप रहा, फिर बोल उठा—अच्छा ही रहेगा, कुमुद, सभी तो उनकी शिकायत किया करते थे—पढ़ा तो वे सकते नही, मगर स्कूल भी न छोड़ेंगे! इतने लडको की जिन्दगी का सवाल था कुमुद! अब नये गुरुजी आयेंगे…

—मगर मै तो न आ सकूँगा!–कुमुद ने बड़े चिंतित भाव से कहा–मेरा नाम तो दर्ज है ही नही, फिर दूसरा यह बोझ ढो कैसे सकेगा ?

बोझ ढोने की बात सुनकर दयाल हँस पड़ा, पर कुमुद की बात अनसुनी करने लायक न थी। इसलिए वह उदास होकर बोला—एक नहीं, लाख गुरुजी तुम्हारा भार ढोयेंगे कुमुद। एक-से-एक गुरुजी, बडे-से-बड़े मास्टर तुम्हारे पढाने केलिए हो सकते है! भले ही तुम स्कूल में मत पढ़ो! मगर सबसे बड़ा नुकसान तो मेरा होगा! तुम-जैसा साथी तो मैं फिर पा नहीं सकूँगा कुमुद!

और न मुझे दयाल-जैसा बंधु मिलेगा—कुमुद ने उदास होकर बड़े खिन्न स्वर में कहा—दयाल, चलो न अपना घर! अगर स्कूल में आना मेरा रुक ही जायगा, तो फिर मै आ ही कैसे सकूँगा! जानते हो, जरा-सा विलंब भी रानीमाँ सहन नहीं कर सकती! आज तो बहुत पहले ही छुट्टी हो गई है! तुम्हारे घर पर…

—चलोगे कुमुद ?

—हाँ, तुम लिवा ले चलो, और मैं न चलूँ—यह हो कैसे सकता है दयाल ! तुमसे उसदिन भी कहा था। रानीमाँ से तुम्हारी चर्चा भी की थी दयाल !

—की थी मेरी चर्चा !—दयाल उत्साहित होकर बोला—तुमने कहा क्या था उनसे और उन्होंने क्या कहा कुमुद ?

कुमुद ने सारी बातें सुनाकर कहा—आज मैं जरूर चलूँगा दयाल ! तुम जानते हो, मैं घूम-फिर कर देखना कितना पसंद करता हूँ !

—हाँ, तुम संन्यासी जो रह चुके हो—दयाल बोलकर खिलखिला कर हँस पड़ा—बड़ा मजा आता होगा, कुमुद, नहीं क्यों ?

—मजा जरूर था दयाल !—कुमुद को पुरानी बातें याद आईं, बोला—मगर वे साधु-संन्यासी मुझसे इतना काम लेते थे कि सारा मजा छूमंतर हो जाता और मैं रात-रात भर रोया करता। मगर इतना तो मानना ही पड़ेगा कि घुमतू जीवन का आनंद—ओह,वह आनंद···मैं नहीं कह सकता कि वह कैसा आनंद होता है दयाल ! मैंने खुले गाँवोंमें देखा है, देखा है गाँव के मैदान में, खुली हवा में, छोटे-छोटे लड़के तरह-तरह के खेल खेलते हैं ! जी चाहता है कि मैं भी उन्हीं लड़कों-जैसा खेलूँ !

दोनों दयाल के घर की ओर चल पड़े। दयाल को लगा कि कुमुद-जैसे बड़े घर के लड़के को वह बंधु बनाकर कितना धन्य हो उठा है ! उसे उस बधुत्व पर जितना आनंद आ रहा है, उतना ही अपनी दीनता पर उसे कुछ कम क्षोभ नही हो रहा है ! जो बंधु अपने से चाहकर उसके साथ उसके घर पर चल रहा है, उसका वह किस तरह आज समादर कर सकेगा—उसकी समझ में कुछ आ नही रहा है ! वह मन-ही-मन इसी बात को सुलझाने में तल्लीन हो उठा है ! उसके पाँव आगे को बढ तो रहे हैं; पर मन उसका पीछे की ओर हट रहा है। फिरभी ग्लानि से अधिक उसे इस बात से संतोष है कि जो चाहकर उसके साथ

उसका घर चलने तैयार हुआ है, वह तो उसका घर बंधुत्व के नाते जा रहा है। बंधुत्व में समानता का भाव रहता है। फिर उसे अपनी लघुता पर क्षोभ क्यों हो? वह लघुता तो उसके बंधु से छिपी नहीं है…

कुमुद एक बागीचे से बाहर निकला। उसके बाद उसकी दृष्टि सामने की ओर पड़ी और उसने देखा कि कुछ ही दूर पर कई छोटे-छोटे गाँव हैं, जो अलग-अलग टुकड़ों में बसे हैं। अधिकतर वहाँ फूँस के घर हैं, जिसकी दीवारें टट्टियों की बनी हुई हैं। कुछ घर ऐसे भी हैं, जिनमें मिट्टी की दीवारें हैं, और कुछ पर खपड़ेल का छाजन है। उनके बीच ईंटों के एक-दो बेढंगे मकान भी दीख रहे हैं; जो ऐसे लगते हैं मानों गाँवके शरीर पर सफेद कोढ़ का निशान हो। कुमुद ने दूर से ही उन गाँवों को देखकर दयाल से कहा—अब तुम्हारा घर कितनी दूर है दयाल?

—क्यों तुम थक गये कुमुद?—दयाल ने जरा रुककर पूछा।

—नही–नही, मैं क्यों थकूँगा?—कुमुद ने छूटते हुए कहा—मुझे तो चलने में मजा आ रहा है दयाल!

—बस आ गये कुमुद—दयाल ने उँगली से दक्षिण की ओर इशारा करते हुए कहा–यह सड़क हमारे गाँव के बीचो-बीच चली गई है। दखिन-वारी गाँव के बीच मेरा मकान है, वह जो पीपल का पेड दीख रहा है, वहाँ एक चण्डीथान है, उस थान के पास ही मेरा घर है। गाँव कई हिस्सों में बटा है, और मेरा घर दूसरी पाँती में है। इसलिए यहाँसे दीख नही पड़ता। मगर वह पेड़ जो देख रहे हो, समझो कि उतनी दूर तक चलना पड़ेगा। बस, अब हमलोग आ गये।

और बात-की-बात में दोनों घर पहुँच गये। दयाल ने अपने दरवाजे पर पाँव धरते ही कहा—यही तुम्हारे दयाल का घर है!

कुमुद ने देखा कि दयाल का घर फूँस का बना है। उसकी दीवारें टट्टियों की हैं; पर वे टट्टियाँ मिट्टी से साटी हुई है। लगता है, जैसे मिट्टी

की ही दीवार हो। कुमुद की दृष्टि दरवाजे के चौपाल-घर पर ही पहले पड़ी, जहाँ उसने पाया कि एक बहुत पुरानी टूटी झुकी हुई काठ की चौकी है, दो बाँस की छोट-छोटी खाट हैं और दो-तीन बाँस की कमचियों के सूत से मढ़े मोढ़े हैं। छोटा-सा चौपाल; मगर साफ-सुथरा है। भीतर की दीवारो पर कई रंगों में हाथी-घोड़े और कमल के फूल अनगढ़ हाथों से बने हैं और कुछ ऊपर एक अनगढ़ चित्र सटा है, वह चित्र जगनाथ बाबा का है। कुमुद चौपाल पर प रुकर कुल सारी चीजों को देख रहा था। उसे पता भी नही था कि दयाल उसके साथ खड़ा है या नहीं। दयाल उतनी ही देर में, वहाँ से भागे-भागे अंदर गया और अपनी माँ से जाने क्या कहा कि उसकी माँ झपटकर चौपाल में आई और उसने कुमुद को देखते ही कहा—आओ, यहाँ क्यों रुक गये, भीतर आओ।

कुमुद ने आवाज सुनते ही उलटकर देखा, तभी दयाल ने कहा—यह मेरी माँ है।

—माँ है, दयाल, तुम्हारी माँ है?

—हाँ, मै तुम्हारे दयाल की माँ हूँ।

दयाल की माँ ने कुमुद का रूप देखा तो उसका जी धक्-से कर उठा। उसे लगा कि दयाल ने उसे अपने साथ लाकर शायद अच्छा नहीं किया। राजे-रजवाड़े घर का लड़का।······फिर भी उसे इस बात का अभिमान सजग हो उठा कि दयाल उसका साथी है। इस विचार से उसकी आकृति खिल उठी और स्नेह-भरे स्वर में बोली—यहाँ क्यों रुक गये, दयाल का घर जब देखने आये हो, तो भीतर चलो।

दयाल की माँ ने हाथ बढ़ाकर उसके हाथ को थामा, फिर भीतर की ओर चलते हुए बोली—चलो बेटा, आज तो हमारा भाग जगा कि तुम आये। हम गरीबों के घर आता ही कौन है बेटा।

भीतर लाकर दयाल की माँ ने चटाई पर कम्बल बिछाते हुए कहा—आओ, खड़े क्यों हो, बैठो इसपर।

कुमुद ने आँगन में खड़ा होते ही पिछवाड़े की ओर अमरूद का पेड़ देखा और पाया कि उसमें फल लदे-पड़े हैं। उसका मन मचल उठा। उसने कहा—बैठूँगा पीछे, दयाल, तुम बड़े वैसे हो। कभी तो तुमने अमरुद मुझे खिलाया नहीं क्यों! चलो, मैं अमरूद खाऊँगा।

—तुम बैठो कुमुद, मैं तोड़कर ला देता हूँ।

—नहीं-नहीं, सो नहीं होने का!—कुमुद मचलकर ही बोला—तुम क्या समझते हो कि मुझे चढ़ना नहीं आता? मैं अपने से तोड़कर खाऊँगा—यों ही नहीं!

इतने में एक छोटी-सी लड़की जाने कहाँ से दौड़कर आई। शायद वह अलग से ही सब-कुछ देख रही थी। आकर वह बोल उठी—दयाल भैया, तुम दोनों यहीं रहो, मैं ही तोड़ लाती हूँ! क्या मेरे तोड़े हुए अमरूद खाने में कोई हान है?

दयाल ने हँसकर कहा—कुमुद, यह नंदा है, मेरी बहन।

कुमुद ने नंदा की ओर देखा। नंदा ने आँखें झुका लीं।

कुमुद ने उससे कहा—क्या तुम्हें पेड़ पर चढ़ने आता है?

—नहीं तो क्या ढेले से अमरूद तोड़कर लाती?—नंदा ने पलटा प्रश्न के रूप में जवाब दिया और खिलखिलाकर हँस पड़ी।

कुमुद भी हँसा और हँसकर ही कहा—हानि क्या है नंदा; मगर पेड़ पर चढ़कर खाने में जो मजा है, वह तोड़कर खाने में नहीं! क्यों दयाल! नंदा, चलो तुम भी!

दयाल की माँ बोल उठी—हाँ-हाँ, तुमलोग जाओ; फिर कुमुद से कहा—अभी तो अमरूद लगे हैं, कच्चे-कच्चे ही मिलेंगे; शायद दो-चार ही पके मिलें! देखो, अगर खाने लायक मिल जाय······

और नंदा आगे बढती हुई बोली--जरूर कुछ मिल जायेंगे माँ, दस-पाँच तो मिल ही सकते हैं !

उन सब को अमरूद में फँसे देखकर दयाल की माँ को यह सोचने का अवसर मिला कि कुमुद को कुछ जलपान भी कराना चाहिए ! पर, जलपान राजघरानें के लड़के के अनुकूल हो, वह कुछ स्थिर न कर सकी। उसे अपनी दीनता पर क्षोभ हुआ; पर उसे लगा कि उसके दिल में उस बालक के प्रति जो स्नेह उमड़ आया है, वह स्नेह ही उसे देना चाहिए ! जलपान तो केवल नाम का होगा ! ऐसा सोचकर वह जलपान की तैयारी में लग गई।

अमरूद कच्चे ही निकले। फिर भी नंदा ने जितनी चातुरी से उन कच्चे फलों में ऐसे जो किसी तरह खाये जा सकते हैं, अपने हाथों तोड़कर खिलाये। इससे खुश होकर कुमुद ने नंदा से कहा--सुनती हो नंदा, तुम्हारे बारे में दयाल कहता था कि तुम बड़ी नटखट हो; मगर मैं तो तुम्हे बड़ा अकलमंद पा रहा हूँ !

—अकलमंद !--नंदा खिलखिलाकर हँस पड़ी, बोली—दूसरी बार आओगे तो पके अमरूद खिलाऊँगी। अभी तो कच्चे से ही संतोष करना पड़ेगा ! फिर आओगे न !

—हाँ, आऊँगा क्यों नहीं; मगर दयाल तो मुझे लाना ही न चाहेगा !

—हाँ, दयालभैया, तुम कुमुद ···

--कुमुद को भैया क्यो नही कहती, कुमुद-कुमुद कहना···नंदा तुम्हें सीखना चाहिए ···

कुमुद ने भी नदा से कहा—नहीं नंदा, मुझे कुमुद ही पुकारो ! मे कुछ बुरा नहीं मानता।

—नहीं, दयालभैया ठीक कह रहे हैं—नंदा ने हँसकर कहा—मै अब भैया ही कहूँगी—कुमुदभैया !

कुमुद को लगा कि भैया शब्द में कुछ ऐसा मिठास है,जिसे वह व्यक्त नही कर सकता ! इसबार उसने नंदा की ओर देखा कि उस दुबली-पतली लड़की की आँखों मे कुछ ऐसी चीज है, जिसे बार-बार देखने की इच्छा होती है !

इतने में दयाल की माँ ने जलपान की सामग्री एक थाली में संजोकर पुकारा—दयाल, तुमलोग आ जाओ, जलपान तैयार है।

और जब कुमुद ने आकर देखा कि एक साफ थाली में जलपान के रूप में भूना हुआ चूडा, तेल में भीजी हुई मूढ़ी, फुलाया हुआ और कुछ तला हुआ चना, गुड़ की पागी हुई चक्की, आदी, हरीमिरचाई और प्याज के कटे हुए टुकड़े हैं, तब वह खुशी में चहक उठा ! दयाल भी अलग एक थाली लेकर बैठा । दोनों चटाई पर बिछे कम्बल पर वैठे और नि संकोच भाव से कुमुद खाता चला !

दयाल की माँ ने कहा—क्यों, कुमुद, तुम्हें यह चना चबेना पसंद आता है?

—पसंद आता है या नहीं, यह दयाल जानता है—कुमुद बोलकर हँसा, फिर दयाल की ओर देखने लगा । दयाल ने कहा—माँ, मै तो जाने कितनी बार कह चुका हूँ कि कुमुद मेरा चना-चबेना छीनकर खालेता है और अंगूर-किसमिस अपना मुझे खिला देता है ! जब कभी मैं लेना नहीं चाहता, तब मुझसे झगड़ पड़ता है ।

—झगड़ पड़ता हूँ मैं ?—कुमुद ने हँसकर दयाल से पूछा,फिर उसकी माँ की ओर देखते हुए कहा—मै नहीं, दयाल ही मुझसे झगड़ पड़ता है । कहता है कि मैं यह नही लूँगा—वह नहीं लूँगा । और आप

जानती हैं, इसी डर के मारे जो भी चना-चबेना घर से ले जाता था, मै खान लूँ—इससे इसने उसे लाना ही छोड दिया! जान पड़ता है कि मुझसे छिपाकर रास्ते में ही चट कर जाता होगा।

—मगर यह चना-चबेना तुम्हें कैसे अच्छा लगता है कुमुद—यही मै सोचती हूँ। तुम्हारे यहाँ तो······

—हमारे यहाँ जो भी बनें, यह चना-चबेना मुझे जितना पसंद है, उतना मोहनभोग नही! पर मै नही जानता कि क्यों मुझे यह ज्यादा पसंद है। आप शायद झूठ समझेंगी; मगर मे सच कह रहा हूँ!

उसके बाद बहुत देर तक माँ, नंदा, दयाल और कुमुद के बीच बातें होती रही। कुमुद इतना प्रसन्न था जैसे उसे लगता था कि क्यों न वह दयाल के घर ही रह जाय! पर दयाल के घर वह रह कैसे सकता था! दयाल की माँ ने याद दिलाया, कहा—दयाल, देखो, शाम हो आई, अब कुमुद को यहाँ रोकना अच्छा न होगा। राजे-रजवाडे की बात ठहरी! तुम अब बैठो नही, कुमुद को पहुँचा आओ! देखना—सीधे सड़क से चला जाना, इधर-उधर से नही, साँप-बिच्छू·····

—साँप-बिच्छू क्या यहाँ ज्यादा होते है?—कुमुद बोल उठा।

—कुछ तो होते ही हैं, सावधान तो रहना ही चाहिए।

कुमुद उठ खड़ा हुआ! नंदा जाने कब उठकर चली गई थी। जब दयाल और कुमुद आँगन से बाहर निकले, तब नंदा दौड़कर मुट्ठी-भर बेला का फूल कुमुद की मुट्ठी में गोंजते हुए बोली—अब कब आओगे, कुमुदभैया?

—आने का क्या, जब इच्छा होगी, चला आऊँगा। क्यों?

—जरूर आना!

—जरूर आऊँगा—कहते हुए दोनों चल पड़े। कुमुद को लगा कि जैसे उसका मन अभीतक वहीं रम रहा, केवल उसका शरीर रास्ते पर बढ़ रहा हो।

१७

उस दिन अमल ने प्रभावती के मस्तिष्क को झकझोर कर उसमें जो झंझा प्रवाहित कर दी थी,उसे वह तुरत शमन करने मे समर्थ न हो सकी। उसने एकदिन हठात् अपने मन में निश्चय किया कि वह उसके विद्यालय का स्वयं चलकर निरीक्षण करेगी और यदि उस विद्यालय के काम से उसे संतोष मिला,तो वह निश्चय ही उसके लिए समुचित सहायता प्रदान करेगी।

प्रभावती के लिए ऐसा करना नया नही था। जब-कभी उसकी इच्छा होती, बे-रोक-टोक बाहर निकल पडती। वह जहाँ-कहीं जाती, अचानक ही, विना पूर्व सूचना दिये ही, पहुँच जाती। इससे उसके हृदय को परितोष मिलता। जिससे होता—जिस वस्तु से होता—उस वस्तु या व्यक्ति को उसी अवस्था मे वह पाना चाहती, जो सहज और स्वाभाविक भाव में उसे दीख पड़ता। वह स्वाभाविकता को हृदय से पसंद करती, अकृत्रिमता उसके हृदय को अधिक छूती। सच तो यह है कि उसका मन स्वयं अकृत्रिम था, इसलिए वह कृत्रिमता से सदा अलग रहती।

प्रभावती ने उसदिन गर्द की सादी धोती पहनी, सादे रेशम की

कंचुकी बाँधी, ऊपर से रेशमी हलकी-सी चादर ओढी, और पैरों में मखमली स्लीपर डाले। इसके बाद श्यामा और पारो को बुलाकर कहा-- चलो मेरे साथ!

दोनों पहले से तैयार थी, आकर कहा—जो आज्ञा!

सावन का महीना था, पर आकाश मे बादलों का नाम नहीं था, हवा कुछ तेज चल रही थी, पर धूप प्रखर न थी! प्रभावती आगे-आगे चल रही थी, श्यामा और पारो उसके पीछे-पीछे, कभी अगल-बगल, चल रही थी। रास्ता पगडंडी-मात्र था और मैदान जँगली झाड़-झँखाड़ों से भरा! उस पगडंडी पर लोग यदा-कद ही निकलते! आस-पास के गाँवों की गौएँ उस लंबे-चौड़े भूभाग में चरा करतीं! वह मैदान जाने कबसे परती पड़ा था और गोचरभूमि का काम कर रहा था!

श्यामा और पारो को कुछ पता न था कि उसकी स्वामिनी कहाँ उन्हे लिये जा रही हैं! वे दोनों समझ रही थी कि उनकी स्वामिनी योंही मन बहलाने को निकल पडी हैं? संभव है, आज वे अपनी जमींदारी की आखिरी सीमा पर जा खड़ी होंगी। फिरभी उनमें से श्यामा का मन सहज रूप में इसे स्वीकार नही कर सका। उसे जानने की उत्सुकता हुई; पर वह जिज्ञासा न कर सकी! जिज्ञासा कुतुहल में बदली। उसे लगा कि देखा चाहिए—आगे क्या होता है!

और आगे जो दिखलाई पड़ा, वह था नीलकोठी का पुराना खण्डहर! प्रभावती ने कहा—श्यामा, जानती हो, आगे क्या दीख रहा है?

—आगे? वह खण्डहर!—श्यामा जरा चौंक उठी, फिर बोली—क्या खण्डहर के बारे में पूछ रही है रानीमाँ?

—हाँ, खण्डहर!—प्रभावती सोच रही थी कि ऐसे खण्डहर में जो विद्यालय चला रहा है, वह मनस्वी, योगी या पागल ही हो सकता है।

पर वह पागल तो हो ही नहीं सकता, जिसका व्यक्तित्व अबभी प्रखर है। संभव है, वह योगी हो, पर योगी केलिए यह आवश्यक नहीं कि वह संसार पाले और संसार मे ही घिरे रहे ! तो रहा वह मनस्वी—मनस्वी के सिवा और कौन हो सकता है वह, जो इस खण्डहर में धूनी रमाकर ...

पारो इसी समय बोल उठी—अब तो इस जंगल में पगडंडी भी मिट गई, रानीमाँ ! जगल-ही-जंगल तो भरा पड़ा है चारोओर !

—क्यो जगल से डर लगता है पारो ?—प्रभावती हँस पड़ी और हँसकर बोली ।

—पगडडी तो नही है, मगर अब तो आ गये हमलोग ! वह जो खण्डहर देख रही हो, जानती हो, वह पहले क्या था ?

—नहीं—पारो ने छूटते ही कहा; पर तभी श्यामा बोल उठी—पारो कैसे जानेगी, रानीमाँ ! मगर मै जान गई। मुझे लगता है कि शायद यही पहले नील की कोठी रही होगी ! यही तो निलहे अँगरेज साहब रहते थे ! शायद वह यही कोठी है, जहाँ अँगरेजों की मृतात्मा प्रेत बनकर अब भी ..

—यह तुमने कहाँ सुना था श्यामा ?—पारो ने भीतर-भीतर भयभीत होकर पूछा—प्रेत क्या अबभी घुमा करता है यहाँ ?

प्रभावती अबतक चुप थी, पर पारो को भयभीत जानकर मुसकरा उठी, फिर बोली—प्रेत नहीं, अबतो जीवित मनुष्य यहाँ रहते है !

—खण्डहर मे जीवित मनुष्य !—पारो ने आश्चर्य प्रकट किया।

—जीवित मनुष्य रह सकते है—इसबार श्यामा मुसकरा उठी, और मुसकराकर हो कहा—पर वे पागल होंगे रानीमाँ !

जंगल से निकलते ही प्रभावती की दृष्टि सामने की जमीन पर पड़ी, जो जोती गई थी। मिट्टी के बड़े-बड़े ढेले छितराये पड़े थे और वे

सब-की-सब उन ढेलों को रौंदती चल रही थीं। ढेलों में चलने से पारो और श्यामा को कष्ट हो रहा था;पर उनकी स्वामिनी सहज भाव से अपने को यथासंभव उन ढेलों से बचाती हुई धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। उन ढेलेवाले खेतो के बाद सामने का खेत अच्छी तरह जुता हुआ जान पड़ा। वेसब उस खेत होकर चलने लगी। उस खेत के बाद प्रभावती ने देखा कि सामने की जमीन हरी-भरी लहलहाती लताओं से घिरी हुई है और बीच-बीच में उन लताओं को मचान लगाकर ऊपर उठाया गया है! ऐसी बीरान जगह मे लहलहाती लताओं से घिरा वह खेत प्रभावती को अच्छा लगा। रास्ता था नहीं, वे सब उन्ही लताओं के बीच पैर बचाते हुए,उसी खेत से, आगे बढ़ने लगी, पर अधिक बढ़ नही पाईं। जाने कहाँसे दो लड़के दौड़ते हुए कहते आये—इधर से रास्ता नही है, लौट जाइए!

प्रभावती रुक गई, वेदोनों लड़के पास आकर बोले—देखिए, यह खेत है, इधर से रास्ता नही, जा कहाँ रही है?

—रास्ता नहीं है तो क्या हुआ!—पारो तुरत गरम होकर बोली—हम जाएँगे।

पारो दो कदम आगे बढ़ गई। वे दोनों सामने बढकर रास्ता रोके बोल उठे—देखिये, आगे मत बढ़िये।

पारो की आँखें चमक उठीं, क्रोध से उसकी आकृति तमतमा उठी, बोली—जानते हो, किनके सामने बातें कर रहे हो?

—जानने की हमें जरूरत नही—निर्भय मुद्रा में एक ने कहा—हम इतना ही जानते है कि किसीकी चीज को नुकसान जो पहुँचाता, है वह आदमी नही, जानवर हो सकता है और उस जानवर को······

—बस, अब चुप रहो—इसबार श्यामा गरज उठी।

—चलो, हमलोग लौट चलें, आगे बढने की जरूरत नहीं—प्रभावती ने झगड़े को रोकना चाहा, फिर दोनो लडकों की ओर देखकर बोली—यह खेत किसका है?

—किसका है !–फिर उसी लड़के ने कहा—हमारा है, हमलोग···

—हाँ, तुमलोग कौन हो, यही तो हम जानना चाहते है !

—जानना हो तो अमल'दा से, जाकर, जानिए—जवाब में एक दूसरे लडके ने कहा—क्या आप उन्हें नही जानतीं ?

—नही जानती, पर जानने की इच्छा है–प्रभावती ने कहा ।

—तो मिलिये उनसे जाकर—फिर उसी लडके ने कहा—वे तो यहीं, इसी बॅगले पर, मिल जाएँगे ?

—बॅगले पर !—इसबार पारो बोलकर हॅस पडी—खूब है बॅगला !

लड़को ने पारो के कहने के ढॅग से जाना कि वह बॅगले पर मजाक कर गई, इसलिए उनमे से एक ने कहा–हॅस क्या रही हैं । बड़े-बड़े महल-अटारी हमारे किस काम आएँगे, हम तो जहाँ रहते हैं, वही हमारा महल-अटारी है ।

प्रभावती ने पारो की ओर दृष्टि डाली ! पारो चुप हो गई । फिर प्रभावती ने कहा—हम बॅगले पर ही जायँगी, मगर जब रास्ता ही नहीं है, तब अभी हम लौट चलती है ! किसी दिन रास्ता मिला, तो फिर हम आकर तुम्हारे अमल'दा को देखेंगी !

इसबार प्रभावती मुड चली, पारो और श्यामा भी लौट पड़ी । वे सब उस खेत से बाहर निकल पडी । उनके बाद ज्योंही दूसरे खेत की ओर वे सब बढनेवाली थी, त्योंही वेदोनों लड़के दौडकर सामने आए और बोल उठे—इसओर होकर आइए, हम रास्ता बतलाते है ! जाने कितनी दूर से आये हैं, योंही लौटिए—यह ठीक नही ! आई है तो हमारे अमल'दा से आज ही मिल लीजिए । हम साथ चलेंगे ।

इसबार प्रभावती ने समझा कि उनकी आवाज मे कितना मिठास

और कितना आग्रह है ! प्रभावती ने उन लड़कों की ओर स्नेह की दृष्टि डाली और बोल उठी—देखो, मैं तुम्हें साथ ले चलने का कष्ट नहीं देना चाहती ! पहले ही बहुत कष्ट तुमलोग उठा चुके हो !

इसबार वे दोनों हँस पड़े। मगर उत्तर देने के लिए एकने कहा—पहले इसलिए कष्ट हुआ था कि हमारे छोटे-छोटे पौदे पैरों-तले से कुचले जाते, मगर अब तो कुचलने का भय नहीं। आनंद ही होगा, जब हमलोग आपको अपने साथ लिवा ले चलेंगे !

प्रभावती कुछ क्षण ज्यों-की-त्यों सोचती हुई खड़ी हो रही, फिर बोल उठी—कष्ट पहुँचाना हमारा उद्देश्य न था। रास्ता भटककर अनजान में किसीका कुछ नुकसान हो जाय, तो वह अपराध नहीं होता ! मगर, अब तो जान-बूझकर तुम्हे कष्ट ही देना होगा। उधर तुम हम-लोगों को ले चलो, इधर कोई जानवर आकर खेत को नुकसान न कर दे।

—अब ऐसा अंदेसा नहीं है—एकने हँसकर कहा—जानवर से हमलोग नहीं घबराते। कष्ट हमे न होगा। किसीको रास्ते पर ले चलना कष्टकर नहीं होता।

प्रभावती उनदोनो की बुद्धिमत्ता पर प्रसन्न हो उठी। बोली—तो चलो, मैं तुम्हारे अमल'दा से मिलूँ।

वेदोनों खेतों के आर पर आगे-आगे बढ़े चले। पीछे-पीछे उन तीनों ने उनका अनुसरण किया। खेतों से निकलते ही परती और झाड़-झंखड़ों से भरी जमीन थी। दूसरी होकर पगडंडी निकल गई थी। उस पगडंडी पर वे सब-के-सब चल पड़े। वह पगडंडी ठीक खंडहर तक चली गई थी। खंडहर से घूमकर पूरब की ओर एक बंगलानुमा बड़ा मकान मिला ! मकान की दीवारें ईंटों की थीं, पर उसका छाजन फूसों का था और उन फूसों पर खपड़े थे, जो टूट-फूट चले थे, दीवारों की ईंटें भी जहाँ-तहाँ बिखरी पड़ी थीं। उस बंगले से सटे खूब लंबा-सा मकान था, जो पहले

किसी समय कचहरी और नौकरों के रहने का मकान रहा होगा। उसकी अवस्था बंगले से और भी खराब थी। सामने एक ताल था, जिसमें पानी भरा था, उसके एक किनारे छोटी-सी नाव बँधी थी।

प्रभावती उस स्थान पर पहुँचकर सोचने लगी कि यह स्थान किसी समय अवश्य ही रमणीक रहा होगा। जिन अंगरेज-साहबो ने इस स्थान को चुनकर नील की कोठी बनाई होगी, वे निश्चय ही कलाविद् रहे होंगे! प्रभावती को लगा कि उन कलाविद् व्यवसायी निलहे-साहबों को पराजित कर जिन पूर्वपुरुष ने इस भूभाग को अधिकृत किया होगा, वे अवश्य ही एक महान मनस्वी रहे होंगे। इस विचार मात्र से उसका हृदय गौरव से भर उठा। उसकी आँखें श्रद्धा के आँसुओं से भर उठी।

अबतक प्रभावती ने अलग से ही उन चीजों को देखा था। पर ज्योंही बंगले की ओर वेलोग घूमे, त्योंही देखा कि बंगले के सामने एक सुन्दर फुलवारी लहरा उठी है! हाता बाँस की फट्टियों से घिरा हुआ है। स्थान साफ-सुथरा और पवित्र दीख रहा है। जो बंगला बाहर से खण्डहर प्रतीत हो रहा था, वह सामने से देखने पर कुछ और ही जान पड़ा। प्रभावती आगे बढना ही चाहती थी कि उसी समय सामने के बंगले से एक आदमी बाहर आता हुआ दीख पड़ा, जो केवल गंजी और लूँगी पहने हुए था। प्रभावती ने पहली दृष्टि में उसे नहीं पहचाना; पर उसने सामने आकर नमस्कार करते हुए कहा—ओह, आप! बड़ी कृपा की आपने, रानीसाहबा!

—कृपा की कोई बात नही—प्रभावती ने शांत सरल भाव से कहा—आज मन में हुआ कि जरा चलकर देखूँ, आपका विद्यालय, जिसके लिए आपने एक दिन ......

—विद्यालय में अभी देखने की चीज तो कुछ है नहीं—अमल ने

स्वाभाविक भाव से कहा—यहाँ तो धनी के लड़के आते नही हैं। जो आते है, उनकी रसद भी यहीसे जुटानी पड़ती है!

—और उनसे खेत की रखवारी भी कराई जाती है—प्रभावती ने व्यंग के रूप मे अपने हृदय का भाव व्यक्त करते हुए कहा।

—रखवारी!—अमल ने खुलकर कहा—रखवारी ही क्यों, ये जो हरी-भरी फुलवारी और खेत दीख पड़रहे है, ये उन्ही बच्चों के श्रमदान का फल हैं! सिर्फ पुस्तकें तो यहाँ रटाई नही जाती। सच तो यह है कि यहाँ पुस्तक तो हैं भी नही!·····मगर अभीतक आपको बैठने के लिए मैंने नही कहा! आइए, भीतर चलकर बैठिए!

—नहीं, ठीक है, बैठने तो मै आई नही हूँ—प्रभावती ने कहा—जरा घूम फिरकर देख लेना चाहती हूँ! मैने यहाँ आकर आपके काम में विघ्न ही डाला!

—आप चाहें जो कहें, पर मै तो किसी बात को विघ्न मानता ही नही हूँ! प्रत्येक क्षण का अपना मूल्य होता है, और उस क्षण में जो बात बनने को होती है, संभव है, वह दूसरे क्षण नही भी होसकती! मनुष्य का मन इतना पेचीदा—इतना उलझनदार होता है कि वह एक क्षण में जो स्थिर कर पाता है, उसे दूसरे ही क्षण में नष्ट भी कर डालता है! जैसे···

अमल आगे जो कुछ कहने को तैयार था, वह कह न सका। प्रभावती से यह बात छिपी न रही। वह हँसकर बोली—जैसे शायद मै अचानक आ गई हूँ!

—आपने ठीक ही पकड़ा—अमल ने निस्संकोच भाव से अपनी स्वीकृति जनाई और उसी बात को पुष्ट करते हुए कहा—उस दिन आपने मेरे निवेदन को आवश्यक रूप से ग्रहण नही किया था। आपको लगा था कि मै यहाँ व्यवसाय फैलाने के लिए आ लगा हूँ! पर

आपने स्वयं पधारने का जो आज कष्ट उठाया है, उससे तो मुझे विश्वास करना ही चाहिए कि आप यहाँके काम से शायद असंतुष्ट होकर न जा सकेंगी! आइए, मेरे साथ, मै जरा आपको घुमा-फिराकर दिखलाऊँ!

अमल आगे बढा। प्रभावती साथ-साथ चलते हुए बोली—मेरे संतुष्ट और असंतुष्ट होने का प्रश्न नहीं, मै कर क्या सकूँगी!

—आप क्या नही कर सकती है?—अमल ने प्रभावती को ओर ताका, फिर बोल उठा—आप यहाँ की जमीदार है! जिस प्रकार आपपर लक्ष्मी की कृपा है, उसी प्रकार सरस्वती की भी सदय दृष्टि है! मे यह नहीं चाहता कि इस विद्यालय को आप दान देकर सनाथ करे, वरन् मैं चाहूँगा यह कि मे अपने स्वप्न को सार्थक कर सकूँ—कम-से-कम उस सार्थकता केलिए आपका प्रोत्साहन तो मुझे मिलना ही चाहिए।

प्रभावती बंगले के भीतर घुसी और उसने देखा कि सामने जो कमरा है, वह खूब बड़ा-सा हॉल है और उसके अगल-बगल और पीछे की ओर जाने कितने छोटे-बडे कमरे और है, पर उनके दरवाजे की काठ की किवाडे टूटी-फूटी है—आर कही चौकठ-मात्र रह गये है, पल्ले नही है, मगर उन कमरों में सादगी और स्वच्छता से चटाई बिछी है, उसपर दरी और बिछावन के बंडल बड़े अच्छे ढंग से रखे हुए है। उनमें कुछ कमरे, जिनके पल्ले साबित बचे है, बंद है, बाहर की सींकड़ लगी हुई है! उसके बाद दाईं ओर का एक खुला हुआ कमरा है, जो अमल का आफिस है! आफिस क्या है, वही सब-कुछ है! उसमे बाँस की कमचियों की कुर्सियाँ हैं, कुछ बेंत की कुर्सियाँ हैं, मोढ़े हैं और कमचियों की छोटे-सी टेबिल! दीवालों पर एक आलमारी-जैसी बनी हुई जगह है, उसकी कई परतों पर कुछ मिट्टी की मूर्तियाँ है और दीवालों पर कुछ रंगीन चित्र! वे चित्र और मूर्त्तियाँ ऐसी हैं, जो कुछ क्षण केलिए किसीका चित्त विमोहित कर सकती है। प्रभावती ने उनसब की ओर देखकर आनंद

के उछ्वास में कहा—इतनी कलात्मक मूर्तियाँ और चित्र 'ओह, ये जीवंत चित्र ! क्या ये सब आपके बनाये हुए हैं, अमलबाबू ?

—हाँ, मैंने ही बनाये है, पर इन्हें आप जीवंत नही कह सकती, रानीसाहबा ! मै अवश्य कुछ बना लेता हूँ, पर ऐसे नही, जो कलात्मक कहे जा सकें ! उसके बाद अमल प्रभावती को अपने साथ लेकर दूसरे लंबे मकान में पहुँचा, जहाँ कई करघे चल रहे थे, उन करघों पर सूत तने हुए थे और कुछ तैयार कपडे पाट में लिपटे हुए थे । प्रभावती ने उन कपडों को निकट जाकर देखा। अमल ने कहा—अभी तो प्रारंभिक अवस्था में ये करघे चल रहे है, लडकों का हाथ तो जमा नहीं है और न मन ही उनका जम पाता है । पर इतना ही परीक्षण के लिए पर्याप्त है अमलबाबू !

—प्रभावती ने किंचित् हँसकर कहा—कम-से-कम खाना और कपड़ा तो हर शिक्षार्थी प्राप्त कर ही लेता है, यह क्या कम बड़ी बात है ?

प्रभावती ने स्वाभाविक तौर पर ही ये बातें कहीं थी, पर अमल को लगा जैसे प्रभावती ने शायद व्यग के स्वर में कहा हो । इसलिए वह जरा संकुचित होकर बोल उठा—आप शायद यह समझती होगी कि जीवन की आवश्यक वस्तुओं का ही यहाँ ज्ञान कराया जाता है, उसमें मानसिक विकास की बात गौण हो पड़ी है अथवा मानसिक विकास का यहाँ कोई मूल्य ही नही है ! ऐसा समझना शायद गलत हो सकता है, भ्रमोत्पादक तो अवश्य ही हो सकता है, पर मै विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आप पाँच मिनट किसी खास विषय पर स्वच्छंद रूप से यहाँ के विद्यार्थियों के साथ बातें करें, तो उनसे निश्चय ही आपका संशय दूर हो जायगा और आप अतिशय प्रसन्न हो उठेंगी ! बुद्धि के विकास में हाथ और आँखों का व्यावहारिक उपयोग जितना आवश्यक है, उतना

दूसरों से नहीं। इस अर्थ में यह विद्यालय प्रचलित विद्यालयों से बिलकुल भिन्न है।

प्रभावती दूसरे कमरे की ओर बढ़ी। वहाँ बेतों और बाँस की खपचियों से बननेवाले मोढ़े, कुर्सी, टेबुल और छोटे-छोटे बकसे, पिटारा-पिटारी और दौरे थे, जो कुछ अधूरे और कुछ पूरे थे। उसीतरह दूसरे कमरे में बढ़ई और लोहारों के छोटे-मोटे कामों का भी निरीक्षण कराया गया। प्रभावती ने संपूर्ण वातावरण में घूमकर पाया कि इस विद्यालय का मुख्य उद्देश्य कुटीर-शिल्प को प्रोत्साहन देना ही है। इस प्रकार के विद्यालय का ज्ञान प्रभावती को न था। इसलिए उससे उसका प्रभावित होना स्वाभाविक था; पर वह जिस चीज को पाने केलिए आई थी, उसे अबतक दीख न पाने के कारण उसकी जिज्ञासा की तृप्ति न हो सकी। इसलिए वह बोल उठी—आपने ठीक ही बताया कि यह प्रचलित विद्यालयों से भिन्न है। पर क्या करघे चलवाकर और खपच्चियों के मोढ़े बनवाकर बुद्धि का विकास संभव हो सकता है?

—हाँ, संभव है—अमल ने बड़ी दृढ़ता के साथ कहा—आइए हम-लोग आफिस में चलकर बैठें, लड़के अभी बाहर निकल गये है, वे मौजूद रहते तो आप स्वयं उनसे वार्त्तालाप करके उनकी बुद्धि की परीक्षा लेतीं। वे भले ही पुस्तक न पढ़ सकें, पर आप उन्हें मूर्ख नहीं कह सकती। मेरा विश्वास है कि उनसे बातें कर आप निश्चय ही प्रसन्न होंगी।

प्रभावती विद्यालय के सारे कार्यक्रमों पर मन-ही मन विचार करने पर जिस परिणाम पर पहुँची, उससे निश्चय ही वह प्रभावित हुए विना न रह सकी। इससे उनके मन में अतिशय कुतूहल उत्पन्न हुआ, इसलिए उसने उससे सीधा ही प्रश्न किया, कहा—मगर, यह सब तो बहु-व्यय-साध्य और परिश्रम-साध्य हैं, अमलबाबू! आप इतना चलाते कैसे हैं?

—मैं चलाता नहीं, आप से-आप चलते रहता है —अमल ने हँसकर कहा।

—आप चलते रहता है,—प्रभावती ने भी हँसकर ही कहा—सो तो देखकर ही समझती हूँ! जान पड़ता है, इसमें आपने बहुत रुपये लगाने का संकल्प किया है! पर रुपये आते हैं कहाँ से?

—आपने अभी संकल्प की बात कही है—उत्तर में अमल ने गंभीर होकर कहा—सो ठीक है रानीसाहिबा! संकल्प ही प्रधान हैं, रुपये नहीं! मुझ-जैसे भिखमंगे को रुपये से क्या संबंध? उद्गम की ओर मेरी दृष्टि कभी गई नहीं, मैं जानता इतना ही हूँ कि सद्संकल्प अवश्य ही एक दिन पूरा होता है! आज न हो, पर होगा एक दिन अवश्य। इतना विश्वास तो कार्यकर्ता को होना ही चाहिए।

प्रभावती ने अवश्य अबतक विद्यालय के कामों पर ही सोचा था, पर इसबार उसकी दृष्टि अमल की ओर गई। उसके खुले मांसल बदन और उसकी उद्दीप्त आँखों की चमक देखकर उसे लगा कि वह साधारण नहीं, लौह पुरुष है, उसका संकल्प उससे भी कठिन है! प्रभावती ने स्वाभाविक भाव से कहा—और यह विश्वास आपमें अटल रूप से है, अमलबाबू! यह जानकर प्रसन्नता हुई। पर क्या मेरी एक बात स्वीकार करेंगे?

अमल ने प्रभावती की ओर देखा, फिर अपने सिर को नीचे झुका कर कहा—कहिए।

पर प्रभावती तुरत कुछ कह नहीं सकी। सच तो यह कि वह जो कुछ कहना चाहती थी, वह ऐसी थी कि अमल-जैसा पुरुष उसे स्वीकार करेगा—ऐसा उसे विश्वास न हो सका। इसलिए उसने कहा—कहूँगी, पर अभी नहीं। संभव है, आप उसे अस्वीकार न कर दें।

—क्यों, मुझसे ऐसा ··मैंने कहा कि आप क्या मुझपर इतना भी

विश्वास नही रख सकती ! ठीक है, धनी व्यक्ति इससे अधिक सोच भी नही सकते ।

प्रभावती अमल की बात समझकर भीतर से अप्रतिभ हो उठी ! उसने दृष्टि उठाकर उसकी ओर अवश्य एकबार देख लिया, और शांत स्वर में ही बोली—धनी व्यक्ति क्या सोचते है और किस अभिप्राय से सोचते है, वह मै नही जानती । मै यदि यह कहू कि मैं धनवान हूँ नही, तो आप शायद विश्वास भी नही करेंगे । आपको, देखती हूँ, धनवानों से क्या कोई खास विद्वेष है अमलबाबू ?

अमल हँस पडा और हँसते हुए ही उसने कहा—विद्वेष रखकर तो इतना बड़ा कार्य चलाया नही जा सकता ! मैं तो यह कहा चाहता था कि · ·

—जाने दीजिए, जो आप कहना चाहते थे, वह स्पष्ट हो चुका—प्रभावती ने बीच ही से उसे रोककर कहा—देखिये, आप जिस पहलू से ऐसी बात सोचरहे है, संभव है, उसमें सबका मतैक्य नही भी हो सकता ! धनवान होना या धनहीन होना पाप नही हो सकता ! मनुष्य धनहीन भी हो सकता है और धनवान भी ! जीवन केलिए धन साधन मात्र है, साध्य नही । जहाँ वह साध्य बन जाता है, वहाँ अनाचार का उद्भव होना स्वाभाविक है और आज अधिकाश आदमी ऐसे ही दीख पडेंगे, जो धन को साध्य समझते हैं और वैसा मानते भी हे ! पर सभी आदमी समान नही होते ! यदि वैसा समझ लिया जाय, तो वह समझना उसके प्रति अन्याय करना होगा ! मै आपसे न्याय की आशा करती हूँ। आप पढे-लिखे हैं, विद्वान् हैं, विद्वान् होकर एकागी होना या एकागी सोचना कहाँतक उचित होगा—यह मुझसे अधिक आप स्वयं जानते है ।

इसबार अमल को लगा कि वह भीतर-भीतर परास्त हो चुका है और जिससे पराजित हुआ है, वह उसके सामने अचल-अटल भाव से बैठी

है और उसकी ओर इस तरह देख रही है, जैसे उसके हाड़-मास को छेदकर उसके अंत:करण को देख रही हो ! अमल कुछ क्षण तक स्तब्ध हो रहा। कमरे में अंधकार बढ़ चला था, लगा जैसे अंधकार की छाया से अमल की मुखाकृति धूमिल हो चुकी है। प्रभावती भीतर से चंचल हो उठी। उसे लगा कि अब अधिक देर तक बैठना शायद उचित नहीं, इसलिए वह अपने आसन से उठकर बोली—अब मैं चल रही हूँ, अमलबाबू !

—चल रही हैं आप !—अमल भी उठ खड़ा हुआ, बोला—पर आपने मेरे यहाँ के लड़कों को तो देखा नहीं ! अब वेलोग खेल के मैदान से आते ही होंगे ।

—फिर कभी देख जाऊँगी—प्रभावती ने चलते हुए कहा—यदि आपको मेरा आना असंगत न जान पड़े !

—असंगत !—अमल हँसकर बोला—आप अपने मकान में आवें और वह असंगत कहा जाय—क्या आप मुझसे ऐसी आशा रखती हैं ? असंगत तो यह है कि मैं, विना पूछे-ताछे आपके मकान में आसन मार कर बैठ गया हूँ !

—जो बलवान् होता है, वह ऐसा ही करता है—प्रभावती ने मुसकराकर कहा—यह सदा से होता आया है और सदा होता रहेगा !

—पर मैं ऐसा कर सका कहाँ, मैं तो पूछने गया; पर ....

—पूछने पहले जाते, तो कुछ और बात हुई होती, बुलाने पर जाना और स्वयं पूछने जाना एक नहीं हो सकता !

अमल ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वे दोनों बाहर आये। श्यामा और पारो फुलवारी में घूम रही थीं। स्वामिनी को दरवाजे के पास आ खड़ी देखकर वेदोनों साथ आ लगीं। अमल भी अबतक पास खड़ा था। प्रभावती ने कहा—आज आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई अमलबाबू ! क्या आप मेरे यहाँ एक दिन नहीं आ सकेंगे ?

—निश्चय ही आऊँगा। पर, कब आऊँगा, यह मैं ठीक बता नहीं सकता।

—कोई बात नहीं, अपने सुभीते से ही आइएगा।

प्रभावती ने नमस्कार कर पैर आगे की ओर बढाया। पर अमल भी कुछ दूर साथ-साथ चला! कोठी पीछे की ओर छूट गई थी और वे सब हरे-भरे खेत के पास पहुँच गये थे। प्रभावती को वह हरा-भरा खेत देखते ही याद हो आया और वह बोल उठी—दो लडके यहाँ मिले थे! उन दोनों को देखकर ही मैंने जो अनुमान किया था, वह अनुमान नहीं, सच निकला! वे निर्भीक हैं और अपने कर्त्तव्य को समझते हैं! अमल बाबू, यदि मनुष्य को सचमुच अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हो जाय और उस ज्ञान के साथ उसमें निर्भीकता भी आ जाय, तो वह एक बडी बात हो! मेरा विश्वास है, इस दिशा में आपका परिश्रम सराहनीय है। मेरा सौभाग्य है कि आपने इस अंचल में आकर जो धूनी रमाई है, वह ···

अमल ने बोलने नहीं दिया, कहा—देखिए, अब मैं विदा लेता हूँ। आपने रास्ता छोड़ दिया। आइए, मैं आपको महल तक पहुँचाने का सही रास्ता बता दूँ।

पश्चिम क्षितिज पर सूर्य की लालिमा मिट चली थी; और पूर्व के आकाश में चाँद विहँस उठा था। इससे लग रहा था जैसे सारी प्रकृति दूध में नहा रही हो। प्रभावती ने अमल की ओर, साथ-साथ चलते देखकर, कहा—अब हमलोग सड़क के पास आ गये हैं। देखिये, मेरी गाड़ी भी सामने से आ रही है। आज आपको बहुत कष्ट दिया; पर क्या एक दिन आप आ नहीं सकेंगे?

—क्यों नहीं, क्यों नहीं!

—तो कब आते हैं?

—सो ही तो निश्चय नहीं कर सकता—अमल ने कहा—यहाँ तो अवसर निकालना ही कठिन हो उठता है। अच्छा, मै चला।

इतने में गाड़ी आ लगी और गाड़ी के साथ महेशसिंह भी सामने आ खड़ा हुआ। प्रभावती ने अभिवादन करते हुए कहा—हाँ जाइए; पर याद रखिएगा—एक दिन आपको आना ही होगा। और दो कदम बढ़ते हुए अमल ने कहा—हाँ, प्यादा भेज दीजिएगा, चला जाऊँगा। अमल बोलकर हँस पड़ा। प्रभावती भी अपने को रोक न सकी, वह भी हँस पड़ी।

१८

कुमुद का अनुमान सही निकला। उस दिन नंदलाल गुरुजी ने हेडमास्टर के निकट पहुँचकर अपना लिखित त्यागपत्र पेश करते हुए कहा—सचमुच मैं काम करने के लायक नहीं रह गया हूँ। आपने जो कुछ कहा है, उचित ही कहा है। अब मैं सदा केलिए अवकाश लेता हूँ। मुझसे आपको या इस संस्था को जो कष्ट या क्षति हुई है, उसके लिए मैं दुखी और लज्जित हूँ।

हेडमास्टर के सामने त्यागपत्र ज्यों-का-त्यों पड़ा रहा। उसने नंदलाल को अपने सामने खड़ा देखा और उसकी स्पष्टवादिता के प्रमाण-स्वरूप उसकी सारी बातें सुनीं। वह ऐसी बातें सुनने को बिलकुल तैयार न था। उसकी इच्छा यह भी नहीं थी कि नंदलालजी त्यागपत्र ही देकर विदा ले लें। उसका हृदय उसके प्रति सहानुभूति से उमड़ उठा। जो नंदलाल एक खानगी पाठशाला से मिडल इंगलिश स्कूल तक खुलवाने में समर्थ हुआ था, उसका इसतरह से विदा लेना—हठात् त्याग-पत्र दाखिल करना—हेडमास्टर को बहुत खला। उसने अपनी आँखों के सामने नन्दलालजी को देखा, और उसके उन्नत निर्विकार व्यक्तित्व को पाकर उसका हृदय

ग्लानि से भर उठा और वह बोल उठा—लज्जित मै स्वयं हूँ! मेरा मंशा यह नहीं था कि आप त्यागपत्र देकर सदा केलिए विदा ले लें! आप ऐसा हरगिज नही कीजिए। जीविका का प्रश्न है। आप वृद्ध है, मुझे बड़ा आंतरिक कष्ट होगा••• •••

—जीविका के लिए—नन्दलाल निर्विकार भाव से बोला—जो भगवान सबको जीविका पहुँचाते है—हाथी से च्यूँटी तक, वे मेरा भी ध्यान रखेंगे! मै उनसे दूर नही हूँ; पर मै जब अपना कर्त्तव्य-पालन ठीक-ठीक नही कर पा रहा हूँ, तब यह मेरेलिए बिलकुल उचित नहीं कि मै व्यर्थ ही संस्था का भार बनकर रहूँ••• मैंने अंतरात्मा की पुकार पर ही ऐसा किया है। इसमें आपको दुखी होने का कोई कारण नहीं। आपने अपना कर्त्तव्य ही किया है और कर्त्तव्य का नाते जो-कुछ किया जाता है, उसमें पाप-पुण्य का प्रश्न ही नहीं उठता! मुझे खुशी है कि आप से विद्यालय को सदा लाभ ही पहुँचता रहेगा।

उस दिन नन्दलालजी वहाँ से अपने घर पर आया। उसके मन में दृढ़ निष्ठा प्रतिष्ठित हो चुकी थी, इसलिए वह धीर गंभीर भाव से बिछावन पर लेट गया। उसे लगा कि आज उसके हृदय पर जमे हुए पहाड़ का बोझ उतर चुका है, मन प्रशांत आनंद-सागर में उतर गया है। उसके जीवन में एक बड़े अध्याय की पूर्ति हो चुकी है। और, इस तरह से सारे बँधनों से निर्मुक्त होजाने के बाद उसे गहरी नीद हो आई। असमय में सोने का उसे अभ्यास न था। फिरभी मन की थकान मिट जाने पर शरीर की जड़ता को मिटाना कुछ अस्वाभाविक नहीं था। पिछले कई दिनों से उसने अपने उलझे प्रश्न को सुलझाने केलिए जिसतरह करवट बदल-बदल कर रात काटी थी, उसीतरह आज वह निश्चित होकर सुख की नीद में निमग्न हो गया।

दूसरे दिन उसके घर में ताला जड़ा हुआ दीखा; पर नंदलाल गुरुजी फिर दिखलाई न दिया! लोगों ने जाना कि वह तीर्थाटन पर चला गया है।

और तीर्थाटन की चर्चा राष्ट्र हो चुकी। उसके शिष्यों-प्रशिष्यों और शुभाकांक्षियों में, उसके हठात् चले जाने पर तरह-तरह की बातें ;चलती रही, पर उनमें से अधिकाश का चित्त विषाद से मर्माहत हो चुका।

पर कुमुद जिसतरह स्कूल पढने आता था, उसीतरह वह आता रहा। गुरुजी तो विदा ले चुका था, पर कुमुद केलिए दयाल का बंधुत्व ही एक ऐसा आकर्षण था कि वह खीचकर चला आता। वर्ग को बगलवाला शिक्षक देख लिया करता था। नये शिक्षक के न आने तक यही प्रबंध किया गया था। वह कड़े मिजाज का आदमी था। जरा भी हल्ला या शोरगुल होता कि उसकी बेंत सपासप बरस पडती! लड़के डर के मारे थर्रा उठे थे! उन लड़कों को लगता था कि नंदलाल गुरुजी की विदाई के साथ-साथ पाठशाला का आनंद भी सदा केलिए विदा हो चुका! ज्यों-त्यों पढ़ाई तो कुछ चलती रही, पर वह पढाई यान्त्रिक रही। उसमें मन का मेल नहीं जुट सका! फिरभी कुमुद केलिए यह स्वाभाविक था कि वह पाठशाला आवे। पढ़ने में उसकी रुचि जग चुकी थी, आनंद का भी अनुभव हो चला था; पर उस आनंद का अधिकतर श्रेय दयाल को था।

छुट्टी मिल जाने पर कुमुद दयाल के साथ ही कमरे से निकलता और जहाँतक दोनों का एक रास्ता रहता, वे दोनों साथ-साथ चलते; पर जिस जगह दोनों के रास्ते अलग-अलग होते, उस जगह पहुँचकर कुमुद का मन दिग्भ्रात हो उठता! उसे लगता कि उसे महल न जाकर दयाल के घर जाना ही ठीक होगा। दयाल के घर का आकर्षण महल से उसे तीव्र जान पडता, जाने क्यों उसे लगता कि मिट्टी का घर ही उसके मनोनुकूल है, जहाँ उसे खुलकर हँसने-बोलने का अवमर मिलता है, जहाँ वह सीधा-सादा-सा जलपान—चना-चबेना, शाक-भाजी, दो-एक कच्चे अमरूद या इसीतरह की साधारण चीजें, जो गरीब घरानों में अनायास मिला करती

हैं—मिलतीं ! पर, दयाल उस जगह पर पहुँचकर कुमुद के दिग्भ्रांत मन को समझ लेता। उसे नित्य कुमुद को अपने घर ले जाने में जहाँ आनंद कुछ कम नहीं मिलता; वहाँ उस आनंद से अधिक उसे भय से ही गुजरना पड़ता। भय होना स्वाभाविक था ! राजघराने का बालक ! जाने कब क्या गुजर जाय ! दयाल बात बनाकर मुकर जाता—कहता, आज जाओ कुमुद, मुझे सीधे घर नहीं, दूसरी जगह जाना है। और कुमुद को बरबस महल की राह पकड़ने को वाध्य होना पड़ता।

पर एक दिन जब कुमुद ने पाठशाला आकर दयाल को नही देखा, तब उसे लगा कि दयाल के विना उसका पाठशाला में ठहरना निरर्थक है। वर्ग की पढाई चलती नही और न वहाँ किसी तरह का आकर्षण ही उसकेलिए रह गया है। इसलिए उसने सोचा कि उसे दयाल का घर जाकर उसका पता लगाना चाहिए कि वह कहाँ है और क्या कर रहा है।

कुमुद चुपके से निकल पड़ा। लड़के वर्ग में चुपचाप अवश्य थे, पर चुपचाप लड़के कबतक रह सकते हैं ! इसलिए अपने-अपने हमजोलियों के बीच गुप-चुप बातें हो रही थी। सामने किताबों के पन्ने अवश्य खुले पड़े थे। कुमुद से जमकर बात करनेवाला और उसे पढ़ानेवाला दयाल कई दिनों से जाने क्यों आ न सका था, जिसकेलिए कुमुद भीतर से अवसन्न हो उठा। इसलिए वह अपनी राह पर बढ़ चला, पर जिस जगह पर वह दिग्भ्रात हो उठता था, उस जगह पहुँचकर उसने निश्चय किया कि आज वह अचानक दयाल के घर जाकर उसे ताक लगा देगा कि देखो, कुमुद बे-बुलाए ही अकेला उसकी खोज में चला आया !

पर, कुमुद की इच्छा पूरी हुई नही ! वह बेधड़क उसके घर पर जा तो पहुँचा, पर घर में न उसकी माँ मिली और न वह दयाल को ताक ही लगा सका ! हाँ, नंदा अकेली घर में बैठ चावल बिन रही थी। आँगन में एक ओर कुछ धान सूख रहा था। कौवे मड़राकर धान पर

कभी-कभी झपट्टे मार रहे थे, कभी दूसरी ओर से बाहर की बकरियाँ आकर धान खा जाती थीं। इसलिए बाँस की एक लंबी लग्गी उसके पास पड़ी थी। लग रहा था जैसे कौवों और बकरियों के हँकाने से वह परेशान हो उठी हो। और जब उन परेशानियों की रेखाएँ उसके चेहरे पर बिखर पड़ी थीं, तभी कुमुद ने आकर पूछा—दयाल कहाँ है, नंदा?

—दयाल!—उलटकर नंदा ने कुमुद की ओर देखा और अप्रत्याशित रूप से अकेले कुमुद को पाकर वह अचंभे से बोल उठी—क्यों, वह तो रोज पाठशाला जाता है, आज वह नहीं गया क्या?

—वह तो कई दिनों से स्कूल नहीं जाता—कुमुद ने साफ-साफ कहा—अगर वह जाता तो मैं उसकी खोज में अकेला यहाँ आता क्यों नंदा? तुम्हारी माँ भी तो नही दीख रही है? मुझे प्यास लग रही है, पानी पिलाओगी?

—पानी पिओगे? अच्छा, बैठ जाओ।

नंदा उठ खड़ी हुई और दौड़कर बाहर से मोढ़ा उठा लाई। कुमुद अबतक अपनी जगह पर ज्यों-का-त्यों खड़ा था। नंदा ने कहा—बैठ जाओ, कुमुद! तुम सोचते होगे कि घर का काम चलाना कितना मुश्किल होता है! बकरियों और कौवों के मारे मैं परेशान हो उठी थी! अब तुम आ गये, देखना, आँगन में धान सूख रहा है! बकरियाँ या कौवे आवें, तो इसी लग्गी से भगाना। मैं तबतक तुम्हारे पीने का पानी ले आती हूँ।

लग्गी सामने पड़ी थी। कुमुद मोढ़े पर बैठ चुका था। नंदा लोटा लेकर कुँए की ओर चली गई।

नंदा ने लोटे को माँज-माँजकर साफ किया, फिर पानी से भरकर उसे कुमुद के पास धरा और बोली—जरा ठहरो कुमुद, घर में देखूँ कुछ, यों पानी कैसे पिओगे?

—नहीं, मै योंही पानी पिऊँगा।

—योंही—नंदा हँस पड़ी—यह कैसे हो सकता है! माँ आज खेत गई है। वह शाम को शाक लेकर लौटेगी। तुम समझते हो कि उसके बिना घर का काम चल ही नही सकता! पर मै तुम्हे दिखला देती हूँ कि उसके बिना भी घर का काम चल सकता है! ठहरो जरा।

पर, नंदा घर में जब खोजने गई, उसे कुछ मिला नहीं! उसकी झुँझलाहट बढ चली; मगर वह अपने घर आये अतिथि को खाली पानी पीने को दे कैसे सकती थी! उसने बरतन-बासन, इधर-उधर, हर जगह ढूँढ़ा और ढूँढ़ने का परिणाम यह हुआ कि एक बरतन में थोड़ा-सा गुड़ का ढेला मिल गया। उसे एक कटोरी मे लाकर उसके सामने रखते हुए बोली—देखो, कुमुद, हमलोग बहुत गरीब है, कुछ तो मुझे मिला नही, यह थोड़ा-सा गुड़ है। इसे खाकर पानी पीलो।

—तुम तो योंही जिद बाँधे हुई हो नंदा—कुमुद ने नंदा की ओर नजर डालते हुए कहा—प्यास में पानी ही अच्छा लगता है, पेट तो योंही भरा हुआ है, फिर गुड़ ·····

—इतना-सा गुड़ खा लोगे तो पेट फटेगा नही—नंदा गंभीर होकर बोली—तुम सोच रहे हो कि हमलोग गरीब है ·······

—गरीब!—कुमुद ने गुड़ का ढेला मुँह में रखते हुए कहा—तुम तो यह भी गरीब हो, मगर मै तो वह भी नहीं हूँ!

—वह भी नहीं हो, कह क्या रहे हो कुमुद?

—ठीक कह रहा हूँ, मै वह भी नही हूँ!

—हाँ, वह भी नहीं हो, सच है, तुम तो राजा हो, राजकुमार!

—राजकुमार!—कुमुद गंभीर हुआ और गंभीरता से उसकी आकृति की लाली और भी गाढ़ी हो उठी, बोला—महल में जरूर मै रहता हूँ, पर मै राजकुमार नहीं हूँ! मै तो रानीमाँ का बेटा नहीं हूँ, नंदा!

—बेटा नहीं हो, तब क्या हो कुमुद ?—नंदा आश्चर्य में डूबकर कुमुद की ओर टकटकी बाँधे देखती रही, फिर बोली—हाँ, तब तुम क्या हो कुमुद और महल मे कैसे रहते हो ?

—मै क्या हूँ और महल में कैसे रहता हूँ—कुमुद ने कहना शुरू किया—मै खुद नही जानता, नंदा! मै यह भी नहीं जानता कि मेरे माता-पिता कौन थे, कहाँ के थे, क्या करते थे, किस जाति के थे! तुम मेरा चेहरा देखकर समझती हो कि मै राजकुमार हूँ, शायद मुझे ऐसा और कोई भी समझ सकता है! क्या मै सचमुच राजकुमार-जैसा लगता हूँ नंदा, सच-सच बताओ ?

नंदा कुमुद की बातें सुनकर चकित-विस्मित हो उठी। उसे यह जानकर अचरज मालूम पडा कि कुमुद इतना साफ-साफ अपने बारे में कह सकता है! नंदा ने जाने क्यों एक आह छोड़ी, फिर बड़ी गंभीर होकर बोली—सच ही कहती हूँ, तुम्हे देखकर कोई भी राजकुमार कह सकता है—ये बडी-बड़ी आँखें, यह गोलगाल चेहरा, जैसे गुलाब का फूल खिला हो, यह नाक-कान-ओठ, सारे शरीर की बनावट, यह टस-टस बदन का रंग, उँगली की ठोकर लगी और लहू फन् से निकले! तुम्ही बताओ—तुम्हारी पाठशाला में लड़के तो बहुत होंगे, मगर तुम-जैसा उनमें हैकोई ? तुम ऐसा लगते हो कि बस, देखती ही रहूँ। जानते हो, मुझे लगता है कि तुम्हें मै अपनी आँखों मे छिपाये रहूँ—किसीको देखने भी न दूँ।

नंदा बोलकर ठहाका मार उठी। कुमुद से भी हँसे विना न रहा गया। दोनो की हँसी से घर भर गया।

—किसीको देखने भी न दूँ—कुमुद ने नंदा की बात दुहराते हुए हँसी के दौरान मे कहा—तुम बड़ी कँजूस जान पड़ती हो, नंदा! ओह, ऐसी कँजूस……

—कँजूस!—नंदा गंभीर होकर बोली—कँजूस कहो, चाहे जो कहो; मगर जो बात सच थी, कह दी! मुझे तो लगता है कि रानीमाँ ने इसी

लिए तुम्हें अपने पास रख छोड़ा है, नहीं तो वह रखतीं क्यों? ऐसे को भला कौन शरण देगा, जिसके न माँ हो, न बाप हो और न वह यही जानता हो कि कहाँ का है और किस जात का है। नंदा बोलकर कुछ क्षण चुप हो रही, फिर आप-ही-आप बोल उठी—कुमुद, चाहे तुम जो भी हो; मगर हो तुम अच्छे भागवाले।

—अच्छे भागवाले!—कुमुद ने नंदा की ओर देखा और कहा—सो कैसे नंदा?

—सो कैसे, यह क्या कहना पड़ेगा?—नंदा गंभीर स्वर में बोली—भाग नहीं रहता, तो रानीमाँ तुम्हें कैसे अपना बनाकर रखती! माँ-बाप न हों, मगर राजघराने में लालन-पालन तो होरहा है!

—मगर माँ-बाप के लिए मेरे दिल में कैसी आग जला करती है, वह मैं कैसे कहूँ नंदा! न मैं कह सकता हूँ और न तुम समझ सकती हो!

—मैं सब समझती हूँ—नंदा विचारक की तरह कुछ क्षण गंभीर बनी बैठी रही। फिर उसने कुमुद की आँखों में आँखें डालकर हमदर्दी के स्वर में कहा—मैं समझती नहीं हूँ—सो बात नहीं है! जिसके माँ-बाप नहीं रहते, उसका मन कुछ पाने केलिए विकल रहता है। जो वह पाना चाहता है, वह उसे मिलता नहीं। मैं तुम्हारे दुख को समझती हूँ कुमुद! मगर सबके माँ-बाप तो सदा जिंदा नहीं रहते। आदमी को अपने तरीके से ही चलना पड़ता है! तुम तो पुरुष-मानुष हो, खूब मन लगाकर पढ़ा-लिखा करो! तुम्हें भगवान ने इतना सुयोग तो दिया कि तुम अच्छा खासा आदमी बन सको! ऐसा भाग क्या सभीको मिलता है कहीं? तुम देख लो न, एक तुम्हारा साथी दयालभैया ही तो है, उसके कौन नहीं है—माँ है, बाबूजी है, भाई है और एक मैं उसकी बहन हूँ, मगर वह सुयोग कहाँ है, जो तुमको है? बाबूजी पाठशाला जाने से रोकते हैं। उसे घर के कामों में अपना हाथ बटाना पड़ता

है ! पाठशाला तो इसलिए उसे जाना पड़ता है कि उसे पढ़ने का चाव है; मगर वह जा कबतक सकेगा ? हम जो गरीब हैं और गरीबों के लिए जैसी लक्ष्मी अबूझ होती है वैसी सरसत्ती भी निगाह फेर लेती है।

नंदा इतनी बातें एक साँस से बोलकर चुप हो रही। कुमुद को सहसा कोई उत्तर ढूँढे न मिल सका। इसलिए वह आश्चर्य-चकित हो नंदा की ओर ताकने लगा। नंदा अपने छोटे-से अंतर में इतनी बातें संजोकर रख सकती है—कुमुद केलिए यह एक रहस्य-सा जान पड़ा। नंदा के बदन पर एक रंगीन साड़ी मात्र थी, पर फटी-चिटी थी। उसके केश लंबे जरूर थे, पर तेल के अभाव में बे-संवारे और हवा मे फर्र-फर्र उड़ रहे थे। फिरभी उसकी आँखों मे दूर तक धँसनेवाली ऐसी जोत थी, जिससे उसके हृदय की विशालता का सहज ही परिचय मिलता था ! कुमुद को नंदा इसीलिए सबसे अच्छी भाई। राजघराने की अन्य लड़कियों से उसने नंदा का मिलान करते हुए सामने रखा—यद्यपि वे सब-की-सब सुन्दरता में किसीकी समता नही रखती थी तथापि—उसे लगा कि नंदा में एक ऐसा आकर्षण है, जो अन्यत्र सुलभ नही।

दोनों कुछ क्षण चुप हो रहे। नंदा ने कुमुद की ओर देखा और जब उसने पाया कि कुमुद एकटक उसकी ओर ही निहार रहा है, तब वह हँसकर बोली—देखो, कुमुद, तुम इसतरह मेरी ओर मत ताका करो। मुझे लगता है कि इतना बड़ा पहाड़ को मै ढो नही सकूँगी !

—पहाड़ !—कुमुद हँस पड़ा और हँसते ही बोला—मै क्या पहाड़ हूँ नंदा, कह क्या रही हो तुम ?

—मै ठीक कह रही हूँ, तुम पहाड़ हो ! धौलागिर पहाड़ !—नंदा बोलकर हँस पड़ी, कुमुद भी हँस पड़ा। पहाड़ कहने का जो नंदा का लक्ष्य था, वह ठीक से कुमुद समझ नही सका, पर उसने इतना अवश्य ही समझा कि नदा को उसका बार-बार ताकना अच्छा न लगा। इस

खिए वह बोल उठा—मै नही समझता कि तुम क्यों दुख मान गई! तुम जान नही सकती कि तुम्हें देखकर मेरा मन जाने कैसा-कैसा करने लगता है!

--कैसा-कैसा करने लगता है, कुमुद,सच-सच बताओ—नदा ने कुमुद के मुँह पर आँख गडा दी।

—तुम जानती हो कि मै कितना अभागा हूँ कि जनमते ही मै अपने माँ-बाप से अलग हुआ! माँ-बाप मर गये या जिन्दा है—यह भी मै नहीं जानता! भाई-बहन मेरे है या नही—यह मै जानूँ या मानूँ किस तरह? मगर मुझे लगता है कि मेरे अगर तुम्हारी-जैसी बहन होती, तो मै कितना खुश होता! नंदा, उसदिन दयाल ने तुमसे कहा था कि मुझे तुम भैया कहकर पुकारा करो और तुमने मुझे भैया कहकर पुकारा भी! क्या तुमने नहीं पुकारा था, नंदा?

नंदा लजाकर नीचे की ओर ताकने लगी। वे दोनों बातों में इतने उलझ पड़े थे कि जाने किधर से चुपके-चुपके तीन बकरियाँ आकर कबसे धान खा रही थीं! नदा ने अपनी नीची निगाह को ऊपर की ओर करते समय उन बकरियों की ओर देख लिया और हड़बड़ाकर आँगन की ओर दौड़ पड़ी। दौडने से बकरियाँ तो भाग खड़ी हुईं,पर उसका गुस्सा आँखों और भवों पर उतर आया और बकरियाँ रखनेवाली पड़ोसिनों के प्रति उसका आक्रोश अजस्र गालियों के रूप में फट पड़ा! कबसे निगोड़ी बकरियाँ धान निगल गईं! उस धान पर नजर पड़ते ही नंदा की गालियाँ रुआँसी में बदल गईं। उसे अपने-आपपर भी कुछ कम रंज नही आया और रोते-रोते ही वह अपने-आपको भी पाँच-सात गालियाँ सुनाकर धान इकट्ठा करने लग गई।

कुमुद ने नंदा को प्रसन्नवदन और गंभीर विचारक के रूप में ही अबतक देखा था; पर उसने जब उसका रौद्र और करुण रूप भी देखा

और जब उसे अपने-आपको भी क्षमा न कर गालियों से अपने कलेजे को ठंढा करते हुए पाया, तब वह अवाक् होकर कुछ क्षण तक उसकी ओर ताकता ही रह गया। उसे लगा कि उसके कारण ही नंदा से धान की ठीक-ठीक रखवारी संभव न हो सकी! कुमुद को गरीबी का अनुभव था या नहीं—नहीं कहा जा सकता, पर उस समय उसे लगा कि गरीबी जीवन का कितना बड़ा अभिशाप है, जो नंदा-जैसी विवेकशील भी इतनी फूहड़ गालियाँ बक सकती है!

कुमुद उठ खड़ा हुआ। दिन ढल चुका था। उसे महल में लौट चलने की चिंता हो आई। इसलिए वह आगे बढ़कर बोल उठा—मैं अब चलता हूँ नंदा! जान पड़ता है कि माँ आज तुमपर बहुत बिगड़ेगी।

—बिगड़ेगी क्यों नहीं—नंदा ने विवेकशील होकर ही कहा—कितनी मुश्किल-मसक्कत के बाद इतना-सा धान घर आ सका है। इसी धान के लिए जाने उसकी माँ कहाँ मर रही होगी! इतना-सा धान कबतक चलेगा। उपवास करके आदमी जिन्दा कबतक रह सकता है भला! मगर तुम यह क्या समझ सकोगे?

कुमुद ने कोई उत्तर न दिया। वह बाहर की ओर चल पड़ा। नंदा धान जमा करने मे लगी थी। वह कुमुद को बाहर निकलते देखकर दौड़ी आई और बोली—क्या तुम नाराज तो नहीं हो गये, कुमुदभैया!

—नाराज!—कुमुद ने उसके गाल पर एक मीठी चपत लगाते हुए कहा—नाराज इसतरह हुआ जाता है।

नंदा हँस पड़ी, बोली—फिर आना; अच्छा?

—देखूँ, अब कब आ सकता हूँ—कुमुद सहसा खड़ा हो रहा, कुछ क्षण सोचता रहा, फिर बोल उठा—शायद मैं अब आ न सकूँगा, नंदा! नंदलालगुरुजी तो जाने कहाँ चले गये हैं। पाठशाला से उन्होंने विदा ले ली है। अब लगता है कि रानीमाँ मुझे वहाँ आने न देगी!

—क्यों नही आने देंगी?—नंदा चिंता में पड़ गई। किसी अज्ञात

आशंका से उसका मुँह धूमिल हो गया। वह खिन्न होकर बोली—नंदलालगुरुजी गये, तो क्या दूसरा नहीं आ सकता? जो आयगा, वह पढ़ाने केलिए ही तो आयगा?

—जरूर पढ़ाने केलिए आयगा—कुमुद ने उसे साफ-साफ कह दिया—पर मुझे नंदलालगुरुजी ने पढ़ने का मौका दिया था नंदा! मेरा नाम इस स्कूल में दर्ज तो है नहीं। मै इस स्कूल का विद्यार्थी तो हूँ नही, नंदा?

विद्यार्थी इस स्कूल का नही है—यह बात नंदा समझ न सकी। उसे सुनकर बड़ा अचरज लगा कि स्कूल में पढ़ने पर भी वह विद्यार्थी नही है। इसलिए नंदा बोल उठी—तुम कभी-कभी ऐसी बात कह देते हो कि मेरी समझ में खाक नही आती! रानीमाँ का स्कूल ठहरा और वहीं तुम पढने नहीं पाओगे—यह कैसी बात है!

पर जब कुमुद ने सारी बातें उसे समझाकर अंत में कहा कि हर सरकारी स्कूल का नियम-कायदा होता है और उसे मानकर सभीको चलना पड़ता है। मेरे माँ-बाप का नाम मुझे मालूम था नहीं! और बे-माँ-बाप के लड़के नाम लिखाकर स्कूल का विद्यार्थी बन नहीं सकते! अब तो तुम समझ गई होगी कि………

—तो तुम अब पढ़ोगे नहीं?—नंदा ने सोचकर पूछा।

—पढ़ूँगा क्यों नहीं—कुमुद ने जवाब दिया—रानीमाँ कुछ तो करेंगी ही; पर मै इस स्कूल में शायद नहीं पढ सकूँगा। इसलिए दयाल से कह देना कि कुमुद यहाँ आया था और तुम्हारी खोज कर रहा था। अच्छा, मै चला।

इसबार कुमुद चल पड़ा। नंदा को लगा कि जो कुमुद अपने आप उसके घर आकर उसे आनंदित कर चला है, वह आनंद क्या अपने साथ ही लेता चला? नंदा वहीं अचल खड़ी एकटक रास्ते की ओर देखती रह गई!

१९

साधारण-सी बालिका नंदा में जिस आत्मीयता का अनुभव कुमुद कर सका था, वह आत्मीयता उसे न तो पारो में मिल सकी और न महल की अन्य लड़कियों में! फिरभी महल में अपने सुख-दुःख की बात वह पारो से खुलकर करता रहता था। पारो भी खुलकर उसकी बातों में रस लेती रहती थी। यही कारण था कि वह महल के अभिजात्य वातावरण में अपने को खपा सका था! श्यामा का स्नेह इतना प्रगाढ़ था कि उसमें कुमुद तैर नही सकता था। चंपी विनोदनी थी अवश्य; पर उसके विनोद से कुमुद का संकुचित रहनेवाला हृदय खिल नहीं सकता था। मंजु में स्नेह के साथ-साथ आत्मीयता भी कुछ कम नही थी, पर उस आत्मीयता का मूल स्रोत ऐसे उद्गम से प्रवाहित होता था कि जहाँ मंजु स्वयं खो जाती थी, ठीक-ठीक वह कुमुद के सामने अपने को व्यक्त भी न कर पाती थी। इसलिए कुमुद को उससे जो प्राप्य था, वह पा नहीं सकता था। और रानी प्रभावती? वह महीयसी नारी? कल्याणी के रूप में जो प्रभावती उसके जीवन का कण-कण अपनी साँसों के तार में पिरोया करती थी, उसका आसन इतना ऊँचा था कि वहाँतक कुमुद की बाँह पहुँच नहीं

पाती थी। उसमें कुमुद को स्नेह से अधिक करुणा ही मिलती—वह करुणा जो विश्व को मानवता के रंग में रँगती है, जो विधाता का वरदान है, जिससे संसार का अस्तित्व है और जिसके विना मनुष्य मनुष्य नही रह जाता! कुमुद का निश्छल हृदय उस महीयसी नारी के प्रति उच्छ्वसित हो उठता है, उसके चरणों में कुमुद की श्रद्धा लोटती रहती है, वह नारी उसकी भक्ति की भी अधिकारिणी है, पर कुमुद को लगता है कि प्रभावती माता नही–देवी है! वह देवी को पहचान गया है; पर माँ को नहीं ! माँ केलिए उसके हृदय में जो माँग है ,जो टीस है, जो वेदना है, जो कसक है, वह क्या माँ के अभाव में, कहीं मिट सकती है।

नंदलालगुरुजी के विदा लेने का समाचार जब हवा के पंखों पर तिरकर महल के अंदर जा पहुँचा, तब सबसे पहले पारो ही व्यथित हो उठी। उसने सोने के समय कुमुद के कमरे में जाकर देखा कि कुमुद लेट तो गया है, पर अबभी जगा हुआ है। कुमुद को पारो के आने पर आश्चर्य नहीं हुआ। सोने के समय केसर से छना हुआ गरम दूध अक्सर पारो ही दे जाती थी। उस रात को भी पारो दूध लेकर ही पहुँची थी। इसलिए पारो ने दूध का गलास उसकी ओर बढाते हुए कहा—लो दूध पी लो, और मुझे सुनाओ कि आजकल स्कूल में कुछ पढ़ाई तो होती नहीं; फिर तुम सारा दिन वहाँसे निकलकर करते क्या हो? मै जानती हूँ कि नन्दलालगुरुजी स्कूल से विदा लेकर तीरथ पर चले गये हैं।

कुमुद ने दूध का गलास हाथ में थामे दो घूँट पीकर कहा—हाँ, वह चले गये हैं; पर, पारो, यह तो बताओ कि आज तुम ऐसा क्यों पूछ रही हो ? क्या रानीमाँ भी जान गई हैं ?

—उन्होंने जाना है या नहीं, मै कैसे बता सकती हूँ—पारोउसके सामने पलंग से सिमटकर खड़ी होकर बोली—मगर मैं तो जानती हूँ।

उनके गये हुए चार-पाच दिन बीत चुके है; मगर तुमने यह बात मुझने छिपाई क्यों? तुम बड़े छली हो, मुझसे भी बातें छिपाया करते हो। जाओ, अब मै तुमसे न बोलूँगी।

पारो का अभिमान स्वाभाविक था। वह उस अभिमान मे भरकर वहाँ से बाहर निकली और दो कदम आगे बढ़ गई। कुमुद ने जाना कि पारो रंज से ही लौटी जा रही है। वह पलंग से जल्दी उतर तो नहीं सका, उसने हाथ बढ़ाया और उसकी उँगलियाँ पारो के लंबे सटकारे केशों की फुनगियाँ ही पकड़ सकीं। पारो ने केशों की खींचावट का अनुभव किया, वह छुड़ाकर निकल न सकी, उसने उलटकर अपनी जगह खड़े होकर कहा—छोड़ दो कुमुद, मै तुससे बोलूँगी नही।

—क्यों, मैने तुम्हारा बिगाड़ा क्या है?

—मेरा तुम क्या बिगाड लोगे?—पारो उसके पास आकर बोली—मगर अपने को जो बिगाड़ रहे हो, इसे मै सह नही सकूँगी।

—मै अपने को बिगाड़ रहा हूँ, यह क्या कह रही हो पारो?—कुमुद ने पारो की ओर देखते हुए जरा सहमकर कहा—तुम तो कभी-कभी ऐसी बात कह जाती हो कि मन जाने कैसा करने लगता है!

—अच्छा, यह तो बताओ—पारो ने कहा—तुम क्या दयाल के घर जाकर खेला नहीं करते? उन सबके घर खाते-पीते नही हो? सच-सच कहो, स्कूल से निकलकर ......

—समझ गया, ओह समझ गया, पारो—कुमुद खिलखिलाकर हँस पडा और हँसते हुए कहा—दयाल के घर जाना क्या अपने को बिगाड़ना है? यही कहना चाहती हो न, पारो?

—ठीक यही नही—पारो ने संशोधन करते हुए उत्तर दिया—मेरा मतलब यह नही कि तुम कहीं अपने साथी से मिलो नही, हँसो-बोलो नही; मगर तुम राज-परिवार मे रहते हो, रानीमाँ ने अपने पुत्र-जैसा

प्यार के साथ लालन-पालन करते हुए तुम्हें अपना बना लिया है। जानते हो, रानीमाँ को कितना दुख होगा, जब वे जान जायँगी कि तुम गाँव-गाँव में चक्कर मारा करते हो, सभी के साथ, सभी के घर जाकर, खाया-पिया करते हो ?

रानीमाँ को दुख होगा--सुनकर कुमुद भीतर से घबरा उठा। उसे लगा कि उसके व्यवहार से रानीमाँ को यदि दुख होगा, तो उसका वैसा न करना ही अच्छा! पर वह समझ नहीं सका कि अपने साथियों के घर जाना और उसके आदर से दिये हुए अन्न-जल को ग्रहण करना क्या ऐसी बुरी बात है, जिससे उनके मन मे दुख हो! कुमुद मन-ही-मन सोचने लगा कि उसने अभीतक कभी-रानीमाँ की बात का उलंघन तो किया नहीं और न कभी करने का वह इरादा ही रखता है! फिर वे क्यों दुखी होंगी ? साथियों के घर जाना तो गुनाह नही है ?--उसके मुँह से अनजाने में निकल गया।

--हाँ, गुनाह नही है--पारो ने भी समर्थन किया, कहा--हाँ, मै भी ऐसा मानती हूँ। मगर, बहुत-सी ऐसी बात होती है कुमुद, जिसे मानकर भी नहीं किया जाता!

कुमुद जरा गंभीर होकर सोचने लगा। उसे लगा कि पारो सच कह रही है कि बहुत-सी बातें आदमी मानते जरूर है, पर उन्हे कर नही सकते! लाचारी कहाँ से आकर उन्हे धर दबाती है और वैसी लाचारी आती है क्यों—कुमुद इसे समझ नही सका। इसलिए वह बोल उठा—पारो, तुम बहुत बुद्धिमती हो। संसार की बात तुम्हारी समझ में आने लगी है। मै उतनी दूर तक अभी समझ नही सकता।

पारो अपनी प्रशंसा की बात से जाने क्यों लजा गई, उसके गालों का रंग और भी गाढ़ा हो उठा। सहसा वह कुछ जवाब न दे सकी।

पारो को अपने सामने लज्जा से सिर झुकाए देखकर कुमुद ने कहा—तुम कितनी अच्छी लड़की हो, मैं कैसे बतलाऊँ! तुम मुझे छली कहती हो, इससे मुझे बड़ा दुख होता है। मैंने तुमसे कोई बात अबतक तो छिपाई नहीं! सच पूछो तो, मैं तुमसे कुछ कहने को आप छटपटाता हूँ। जो बात मैं रानीमाँ से नहीं कह सकता, मंजु से नहीं कहता, यहाँ तक कि श्यामा से भी नही कह सकता, वह तुमसे कहता हूँ! लगता है, तुम मेरी कितनी अपनी हो—कितनी अपनी हो······

पारो ने कुमुद की ठुड्ठी पकड़कर हिलाते हुए कहा—चुप रहो, चुप रहो, कुमुद! देखती हूँ, तुम मुझे यहाँ रहने नही दोगे! लो, अब मैं जा रही हूँ! कमरा खुला है, कोई उठकर देख लेगा, तो जाने क्या कहेगा···

पारो वहाँ से चल पड़ी; पर बाहर नही निकल सकी, दरवाजे के पास आकर खड़ी हो रही, फिर वहीं से बोल उठी—कुमुद, तुम्हारा मन बड़ा साफ है, मैं जानती हूँ कि तुम मुझे अपना समझते हो; मगर मुझे लगता है कि यह अपनापन कुछ अच्छा नही होता। अपनापन के विचार से बड़ा दुख उठाना पड़ता है, सुख थोड़ा ही मिलता है, पर उससे ज्यादा दुख ही उठाना पड़ता है·

इसबार पारो उसके पास पहुँच गई और कुमुद के सिर को दोनों हाथों से थामकर उसके कान के पास मुँह सटाए बोली—मैं भी तुम्हें वैसा ही समझती हूँ, कुमुद!

इसबार पारो हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही वहाँ से निकलकर कमरे के पल्लों को भिड़काते चली गई।

कुमुद अब भी बिछावन पर लेटे-लेटे पारो की अंतिम बात पर सोचता रहा। उनके आनंद का भला क्या कहना। यद्यपि कुमुद प्रारंभ से ही पारो को अधिक-अधिक चाहने लगा था, पारो इसे न भी कहती—इससे बनता-बिगड़ता कुछ नहीं, तथापि आज उसे ऐसा जान पड़ा कि पारो

के कहे हुए अंतिम कुछ शब्दों में इसके हृदय की अंतरंग भावना उसके सामने साकार हो उठी ही, जिसे वह अपनी मुँदी हुई पलकों के बीच सजोकर रखना चाहता हो। कुमुद उसे संजोने मे ही जैसे एकाकार हो गया! उसी रूप में उसे नीद हो आई और वह गहरी नीद में सो गया।

पर दूसरे दिन सबेरे जब रानीमाँ कुमुद को अपने पास बैठाकर, सदा की तरह, जलपान कराने में संलग्न थी और पारो ही जलपान की सामग्रियो को जुटाने में लगी थी, तब सबसे पहले पारो ही सामने ठहर कर बोली—नन्दलाल गुरुजी तो चले गये, रानीमाँ! अब तो कुमुद की पढ़ाई में बखेड़ा उठ खड़ा हो सकता है!

—बखेड़ा!—रानीमाँ के ओठों से एक अस्पष्ट ध्वनि निकली। उसने एकबार पारो की ओर देखा, फिर उसने कुमुद की ओर दृष्टि डाली, फिर हँसती हुई कुमुद से कहा—देखते हो, कुमुद, पारो तुम्हारी कितनी याद रखती है। फिर पारो की ओर नजर उठाते हुए बोली—कुछ भी बखेड़ा नही होगा। नन्दलाल नही है, तो कितने और आ जाएँगे!

—मगर स्कूल में तो मेरा नाम दर्ज नहीं है, रानीमाँ—कुमुद ने रानीमाँ की ओर ताका।

प्रभावती की दृष्टि कुमुद की आँखों पर गई, और उसकी बातों की ध्वनि उसके कानों में गूँज उठी। इससे प्रभावती को लगा कि कुमुद का सारा व्यक्तित्व तिक्त हो उठा है। उसे स्मरण हो आया कि कुमुद के नाम दर्ज कराने में कौन-सा कारण व्याघात बनकर उठ खड़ा हुआ था। वह यह भी समझती है कि अज्ञात कुल-शील के कारण पाठशाला में इस बालक को जाने कितनी व्यंग-भर्त्सनाएँ सुननी पड़ी है! पर नन्दलाल गुरुजी ने जिस तरह इसके मन को मोह कर, पढ़ने-लिखने की उत्कंठा जगाकर, व्यंग-भर्त्सनाओं पर विजय दिलाई, उस तरह से अब और कौन कर सकेगा? प्रभावती अधिक कुछ और न सोचकर बोल उठी—दर्ज न

हो '' ही अच्छा था कुमुद ! बंधन तो कुछ है नहीं ! निर्बंध रहकर भी प॰ जा सकता है ! मै अच्छे-से मास्टर का प्रबंध किये देती हूँ।

प्रभावती कुछ क्षण चुप रही। उसी समय उसके मस्तिष्क में अमल का स्मरण हो आया। अमल की विद्वत्ता और तेजस्विता के प्रति जो उसके मन में एक साधारण आकर्षण हो आया था, उससे वह, कुमुद के कारण, इतनी प्रभावित हो उठी कि उसे जान पड़ा जैसे अमल ही कुमुद का योग्य अध्यापक हो सकता है। सच तो यह कि कुमुद के सौभाग्य से ही मानो ऐसी वीरान जगह में अमल का आना संभव हुआ हो ! पर, अमल क्या महल मे रहकर कुमुद के पढाने का भार स्वीकार कर सकता है ?

प्रभावती सोच ही रही थी कि इतने में कुमुद बोल उठा—मैं किसी से भी पढ सकता हूँ, रानीमाँ ! मगर उस स्कूल में नहीं ! अब तो दयाल भी वहाँ पढने नही आता ! उसके सिवा और जितने लड़के हैं, उनसे बनी-बनाव मेरे है नही ! वे सभी कहते हैं .....

प्रभावती कुमुद के मन का भाव ताड़ गई, इसलिए झटपट बोल उठी—अब तुम्हें उन सब की बातें कभी सुननी नहीं पडेगी, कुमुद ! तुम्हारा वहाँ न भेजना ही अच्छा होता, मगर मैंने इसलिए तुम्हे भेजा था कि तुम्हारे मन में ऐसा न हो कि तुम बँद कमरे में डाल दिये गये हो ! मैं जानती हूँ कि महल एक बंदीशाला से भिन्न और कुछ नहीं ! मनुष्य के लिए, बाहर की खुली हवा आवश्यक है, अपेक्षित भी--वह हवा जो फूलों की गंध को भी स्पर्श करती है और काँटों को भी छूकर निकल जाती है ! मै जानती हूँ कि उस हवा में तुम उत्फुल्ल हो उठते हो, वह हवा निश्चय ही प्राणदायिनी होती है, उस हवा में जीवन का संदेश घुला-मिला रहता है, कुमुद ! तुम अभी बच्चे हो, पर इतना तो समझते ही होगे कि मैने तुम्हारा विचार करके ही वह अवसर

दिया था ! तुम जैसा चाहोगे, मै वही सुविधा तुम्हे दूँगी ! तुम प्रसन्न रहो—यही मेरा सबसे बड़ा कर्त्तव्य होगा ।

प्रभावती की सारी बातें कुमुद ने सुनी, पर उतनी बातों को एक साथ वह पकड़ नहीं सका । फिर भी इतना तो उसकी समझ पर अवश्य चढ़ा कि उसकी रानीमाँ उसके प्रति कितनी सदय रही है। उनकी दयालुता, ममता को समझ कर कुमुद का अंतर भर उठा; पर मुँह से वह एक शब्द भी प्रकट न कर सका । फिर भी उसकी आँखें कृतज्ञता के आँसुओं से छलछला आई । प्रभावती से यह छिपा न रह सका ! उसने कुमुद के केशों पर हाथ फिराते हुए कहा—मै सब समझती हूँ, कुमुद ! तुम सुख से रहो, इसीमें मुझे भी सुख मिलेगा ।

कुमुद का जलपान करना शेष हो चुका था । पारो वहाँ से हटकर रानीमाँ के कमरे की पलंग की चादर बदलने में लगी थी और वह वहीं से छिपकर उनदोनों की बातें सुन रही थी । उन बातों से उसे लगा कि उसका पढाई के संबंध का प्रश्न छेड़ देना अच्छा ही रहा । वह भीतर-भीतर प्रसन्न हो उठी । उसी समय रानीमाँ ने उसे पुकार कर कहा—पारो, कुमुद को अपने कमरे में लिये जाओ । आज कुमुद मुझे लिखकर दिखलायगा कि उसके अक्षर कैसे बनते है और कितना कुछ लिख सकता है !

प्रभावती उठ खड़ी हुई । पारो कमरे से बाहर आई और जूठे बर्तनों को उठाते हुए कुमुद से बोली—आओ कुमुद, तुम्हें अपने कमरे में पहुँचा दूँ !

प्रभावती वहाँसे चलकर अपने आफिस के कमरे में आई, टेबिल पर पिछले दिन की कुछ फाइलें अबतक रखी हुई थी । उन्हें बाहर भिजवाने के लिए श्यामा भी उस कमरे में आई और कहा—क्या ये फाइलें देखी जा चुकी है, रानीमाँ ?

—हाँ, देखी जा चुकी है—प्रभावती ने गंभीर होकर उत्तर में कहा, फिर कुछ क्षण रुक गई । *श्यामा उन फाइलों को, बाहर भिजवाने के लिए, उठाकर ज्योंही मुड़ने को प्रस्तुत हुई, त्योंही प्रभावती ने कहा—दीवानजी से कह देना कि वे मुझसे आज संध्या समय मिलें । बड़ी ड्योढी के संबंध में मुझे मालूम न हो सका कि आखिर क्या-कुछ हो रहा है ।

—जैसी आज्ञा !—कहकर श्यामा बाहर निकलना ही चाहती थी कि फिर से प्रभावती ने उसकी ओर ताका । श्यामा रुक गई और जिज्ञासा भरी दृष्टि से, और कुछ आदेश पाने के लिए, उनकी ओर देखने लगी ।

प्रभावती ने जरा गभीर होकर कहा–श्यामा,जरा यह तो बतलाओ कि कुसुद केलिए अब मैं क्या करूँ । नन्दलाल गुरुजी तो अब हैं नहीं, स्कूल में कुसुद को लड़के सदा छेड़ते रहते हैं ! कुमुद तो नन्दलाल गुरुजी के कारण स्कूल में जाता था । अब क्या किया जाय-कुछ बता सकती हो ?

श्यामा से ये बातें छिपी न थी । यद्यपि कुसुद से उसने कुछ भी शिकायत की बात कभी सुनी नही थी, तथापि वह पारो के झंकार भरे शब्दों से इतना तो समझ ही गई कि कुसुद को स्कूल का वातावरण अधिक दुस्सह हो उठा है । श्यामा कुछ सोच-विचार के बाद बोली—अब क्या किया जाय—यह कौन-सी बड़ी बात है, रानीमाँ ! मेरा खयाल है कि उसका स्कूल मे न जाना ही अच्छा रहेगा । क्यो न एक अच्छा-सा मास्टर ही रख लिया जाय ?

—मास्टर !—प्रभावती बोलकर कुछ क्षण चुप हो रही, फिर कुछ सोच-विचारकर बोल उठी--उस दिन तुम भी नया स्कूल देखने गई थी, श्यामा ! अमल मास्टर को तो तुम देख चुकी हो ... ..

—पर अमल मास्टर यहाँ रह कैसे सकेंगे ?—श्यामा के सामने नये

विद्यालय का सारा चित्र खिंच आया, उस दिन की सारी घटना उसे स्मरण हो आई। वह कुछ क्षण चुप रहने के बाद गम्भीर भाव से बोल उठी—वह विद्यालय छोड़कर यहाँ आ नही सकेंगे, जबकि उन्हे सारा काम अपने हाथों वहाँ सम्भालना पड़ता है। पर मै समझती हूँ कि अमलजी ही कुमुद केलिए उपयुक्त मास्टर हो सकते है। आपने ठीक ही सोचकर कहा है, रानीमाँ! अगर वह भार ले सकें तो फिर कहना ही क्या? क्यों न उन्हे बुलाकर उनसे परामर्श लिया जाय!

—अच्छा देखूँगी—कहकर प्रभावती काम में लग गई। श्यामा वहाँ से फाइलों के साथ बाहर चल पड़ी।

प्रभावती टेबिल पर के छितराये कागजों की ओर देखती रही; पर भीतर-भीतर कुछ गंभीर भाव से कुमुद की पढ़ाई के प्रश्न को लेकर व्यस्त हो उठी! वह प्रश्न उसके सामने इतना दुरूह हो उठा था कि वह समझ नही पा रही थी कि वह हल किस तरह से हो सकेगा! अमल पर उसकी दृष्टि अवश्य ललक उठती थी, पर उसे लगता था कि वह किसी कीमत पर यहाँ रहने को तैयार न हो सकेंगे।कुमुद को ही आँखों से ओझल कर उस विद्यालय में भेजना संभव नही और न वह मिडिल स्कूल में अब भेजा ही जा सकता है! इस तरह की जाने कितनी समस्याएँ प्रभावती के सामने उठ खड़ी हुई; पर उन समस्याओं का वह समाधान न कर सकी। फिर भी उसे लगा कि क्यों न अमल को यहाँ बुलाया जाय! ऐसा विचार आते ही उसने लेटरपैड उठाया। दो-चार पंक्तियों में पत्र समाप्त कर लिफाफे में बंद किया और उसे लेकर वह उठ खड़ी हुई।

२०

कुमुद नित्य की तरह स्कूल जाना न भूला। पढ़ाई का क्रम यद्यपि ढीला हो चला था और उसके बंधुओं में दयाल, महेश और सुक्खू भी अनुपस्थित रहने लगे थे। उस वर्ग के लड़कों में सिर्फ वैसे लड़के ही रह गये थे, जो कुमुद से ईर्ष्या रखते थे। कुछ ऐसे भी थे, जो उसके वंश-परिचय को लेकर मजाक उड़ाने में बड़े प्रवीण थे। फिर भी कुमुद के मन में जो बाहर रहने का एक सहज आकर्षण हो गया था, उससे विवश होकर स्कूल में जाने केलिए वह चंचल हो उठता था। जबतक महल में रहता, तबतक उसे लगता कि कब स्कूल जाने का समय हो और किस तरह वह बंधन से मुक्त हो स्कूल से निकल भागे।

उस दिन समय से पहले तैयार होकर स्कूल केलिए कुमुद निकल पड़ा, पर चौराहे पर पहुँचकर देखा कि कुछ लड़कों का दल उसी होकर गुजर रहा है। उस दल में जाते हुए दयाल पर उसकी दृष्टि अचानक जा लगी। दयाल की नजर सामने की ओर थी, इसलिए वह बढ़ा जा रहा था, पर कुमुद को लगा जैसे दयाल कतराता जा रहा है। तभी वह जोर से पुकार उठा—दयाल, दयाल! अरे, उधर कहाँ?

दयाल ने आवाज सुनी, बोली पहचानी, उसने मुड़कर देखा और झपटकर उसकी ओर आते हुए बोला—ओह, कुमुद, तुम क्या अब भी स्कूल जाते हो?

—मगर तुम कहाँ जा रहे हो?—कुमुद ने उलटा प्रश्न किया—वाह, मैं तो तुम्हारे घर पर गया था! बात क्या है दयाल? क्या तुमने सचमुच पढना छोड़ दिया?

—पढ़ना!—दयाल ने कहा—पढना छोडा तो नही है, पढने ही तो जा रहा हूँ। देखो, मेरे इतने साथी चल रहे हैं!

कुमुद ने उसके साथियों की ओर देखा, जो उसकी ओर ही आश्चर्य से टकटकी बाँधे देख रहे थे। उन अपरिचित लड़कों को देखकर कुमुद भीतर से जरा सहम उठा। फिर वह कुतूहल से भरकर बोला—मगर ये सब तो तुम्हारे नये साथी है, दयाल! क्या तुम किसी दूसरे स्कूल में पढ़ रहे हो?

कुमुद की बात सुनकर दयाल हँस पड़ा, बोला—हाँ, दूसरे स्कूल में; मगर वहाँ सिर्फ पढाई ही नही होती, कुमुद, देखोगे तो तुम खुश हो जाओगे। मगर... ...

दयाल आगे न बोल सका। उसे याद हो आया कि कुमुद साधारण लड़का है तो नहीं। रानीमाँ से बिना आज्ञा पाये वह जा कैसे सकेगा ..

कुमुद भी मन-ही-मन यही सोच रहा था। वह बोल उठा—मगर कहकर तुम चुप क्यों हो गये दयाल? तुम समझते होगे कि रानीमाँ मुझे वहाँ जाने न देंगी। मगर मै जरूर जाऊँगा! तुम मुझे वहाँ लिवाये चलो। मैं पहले देख लूँगा कि वह कैसा स्कूल है। अगर मुझे पसंद हो आया, तो रानीमाँ मुझे खुद ही वहाँ भेजा करेंगी। पर, एक बात है।

कुमुद सिर झुकाकर संकोच में पड़ा रहा। दयाल सोच नहीं

सका कि कुमुद बोलकर हठात् क्यों चुप्पी मार गया। इसलिए उसने कुमुद का हाथ पकड़कर कहा—तुम चुप क्यों हो गये? वह कौन-सी बात है, कुमुद?

—क्या वहाँके गुरुजी मेरा नाम लिख सकेंगे?

—नाम?—दयाल समझ गया कि कुमुद के संकोच का कारण क्या था। इसलिए उसने उत्तर में कहा—वहाँ तो नाम लिखाने का बखेड़ा कुछ है नहीं, और न वहाँ गुरुजी ही पढाते हैं!

—गुरुजी नहीं पढ़ाते हैं—कुमुद अचरज में पड़कर बोला—गुरु ही तो पढाता है दयाल, तुम कहते क्या हो?

—मैं ठीक कह रहा हूँ, कुमुद!—दयाल ने कहा—पढानेवाला गुरु कहलाता है—यह ठीक है; पर उन्हें तो सबकोई अमलदादा ही कहा करते हैं! अमल'दा को देखोगे, तो तुम समझ सकोगे कि वह गुरु नहीं, अपने बड़े भाई हैं। ओह, देखोगे तो खुश जाओगे तुम।

कुमुद उसकी बातों से अभिभूत हो उठा। उसे यह भी याद न रहा कि उसे वहाँ जाने केलिए रानीमाँ से कहना चाहिए, यद्यपि कुछ क्षण पहले वह यही सोच रहा था। वह आनंद की उमंग में चलने को उत्सुक होकर बोल उठा—तब चलो दयाल, मैं भी चलता हूँ।

सभी चल पड़े। कुमुद ने आज नई राह पकड़ी थी। इसके पहले स्कूल और दयाल के घर के सिवा वह कहीं जा नहीं सका था। इसलिए उसने जब खुला हुआ मैदान, हरियाली से लहराते हुए खेत और भरी हुई पतली नदी-जैसा खाल देखा, तब उसके आनंद का ठिकाना न रहा। लगा जैसे वह बंधन से मुक्त हो चुका है! उसकी पुरानी स्मृति सजग हो आई,जब वह साधुओं के गिरोह में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाया करता था! आज भी तो उसी तरह के एक छोटे-से दल के साथ, जिसमें सभी समवयस लड़के-ही-लड़के हैं, प्रसन्नता में सने वह बढ़े चला जा

रहा है! कुमुद को लगा जैसे वह निर्बंध हो चुका है, उसे बढ़ना ही चाहिए—बढते रहना ही चाहिए ।

पर कुमुद को अधिक दूर बढ़ना नही पड़ा ! जगल-झाड़ से बाहर निकलते ही दयाल ने उँगली के इशारे से बताते हुए कुमुद से कहा—सामने जो खण्डहर दीख रहा है, वही हमारा विद्यालय है, कुमुद !

खण्डहर देखकर कुमुद के मन में निराशा जगी, बोला—खण्डहर मे विद्यालय है—यह क्या कह रहे हो दयाल ? अरे, यह कैसा स्कूल है ?

—स्कूल नहीं, विद्यालय कहो !—दयाल ने अपनी समझ के अनुसार कहा—स्कूल तो वह है नही। वह विद्यालय है, जहाँ सब तरह की चीजें सिखलाई जाती हैं, वहाँ चित्र बनवाये जाते हैं, मिट्टी की मूरते बनवाई जाती है, कपड़े बीने जाते है, मेज और कुर्सियाँ बनवाई जाती है—तरह-तरह की चीजें—इतनी चीजें और इस तरह से कि लड़के समझ नही पाते कि उन्हें कैसे थोड़े दिनों में इतनी सारी चीजें बनाने आ जाती है !

—और पढ़ना-लिखना ?

—पढना-लिखना सब कुछ होता है कुमुद !—दयाल उत्साह मे भर कर कहता चला—मगर तुम्हें पता भी नही चलेगा कि कैसे वहाँ के लड़के इत्ती सारी बातें सहज में जान जाते हैं,जो सिर्फ किताबें पढ़कर उतने कम समय में जान नहीं सकते....

खण्डहर के बाद कोठीनुमा बडा मकान और कई लंबे-लंबे घर दिखलाई पडे, सामने हरी-भरी फुलवारी दीख पडी। कुमुद ने चकित होकर चारो ओर नजर डाली। तभी दयाल ने कहा—इस तरह तुम देख क्या रहे हो कुमुद ! मकान सारे पुराने जरूर हैं, मगर भीतर चलकर देखोगे तो तुम्हें मालूम पड़ेगा कि यह विद्यालय कैसा है और क्या है !

कुमुद कुछ उत्तर न दे सका; उसे तो उस स्थान की रमणीयता देखकर निश्चय ही ऐसा भान होने लगा कि यह उसके मन के ज्यादा अनुकूल है! ऐसे बीरान और खण्डहर में विद्यालय का मनोरम वातावरण ऐसा लगा जैसे वह किसी स्वप्नलोक में विचरण कर रहा हो! उसने विद्यालय के आँगन में पहुँचकर देखा लड़के छोटे-छोटे समूह में मिलकर हँस-बोल रहे हैं, पर सबके हाथ अपने-अपने काम में लगे हैं! कुमुद जहाँ जाकर खड़ा हुआ, वहाँ उसने देखा कि पाँच-छ लड़के बरामदे पर मिट्टी की मूरतें तैयार करने में लगे है। उन मूरतों में किसीका धड़ बन चुका है, किसी के पैर बन चुके है; पर उसमें हाथ नहीं हैं। सिर नहीं है, किसीमें हाथ और धड़ तो तैयार हैं; पर उसके पाँव बनाये जा रहे हैं। इसी तरह किसीका कोई अंग बन चुका है तो कोई अभी योंही पड़ा हुआ है, पर उन सभी मूरतों मे लक्ष्य करने की बात उसे यह मिली कि सभीका ठट्ठर खड़ और पुआल से तैयार किया गया है। शरीर के जिस भाग में जितना मुटापा या पतलापन होना चाहिए, उसी हिसाब से खड़-पुआल को रस्सी से कसकर इस तरह रखा गया है कि वह खासा शरीर का ढाँचा बन गया है। लड़के उसीपर अच्छी सनी गीली मिट्टी चढ़ा रहे हैं · ···

कुमुद इन मूरतों को देखने में इतना तल्लीन हो उठा कि उसका साथी दयाल और दयाल का दल कब वहाँ से खिसककर अपने-अपने काम में लग चुका है—इसका भी पता नही रहा। पर मूरतें बनानेवाले लड़कों ने टकटकी बाँधे कुमुद को देखकर किसी तरह की विरक्ति या वितृष्णा नही दिखलाई, बल्कि उनमें से एक ने हँसकर कहा—क्यों, कैसी लग रही है ये मूरतें ?

—अच्छी तो लग रही हैं—कुमुद ने निस्संकोच भाव से अपनी सम्मति प्रकट करते हुए कहा—मगर अभी सिर तो लगा नही है। जब सिर लगेगा , तब ठीक-ठीक कहा जा मकता है कि ये मूरतें कैसी होंगी!

कुमुद को बातो से सभी खुश हुए। उनमे से एक ने पूछा—क्या तुम भी मूत्ति बनाना सीखना चाहते हो?

—हाँ, यह मुझे बडा अच्छा लगता है, मगर इससे भी अच्छा वह लगता है, जो कागज पर बना होता है! क्या कागज पर यहाँ मूरत बनाना नही सिखाया जाता है?

—हाँ-हाँ, क्यो नही—उनमे से एक बोल उठा—उस कमरे में जाओ, देखो उधर, वहाँ जो स्टैंड खड़े दीखते है

कुमुद उत्सुक होकर उस कमरे में दाखिल हुआ और देखा कि वहाँ कुछ स्टैंड पर कनवस तने पड़े हैं और उन कनवसों मे कुछ पर छोटी-मोटी रेखाएँ खींची हुई है, कुछ पर एक-दो रंग भी डाले गये है। दीवालों पर काले बोर्ड लगे हुए है, जिनपर खल्ली से कही सिर बने हुए हैं, कही धड, कही संपूर्ण शरीर की बाहरी रेखाएँ और कही तरह-तरह की प्राकृतिक छटाएँ! उन बोर्डों पर लड़के लगे है। कुमुद उन लड़कों के पास खडा होकर आश्चर्य से देख रहा है कि किस तरह दो-चार टेढी-मेढ़ी रेखाओं से एक सुन्दर चित्र बन जाता है और वह चित्र किस तरह हँसता हुआ दीखने लगता है और फिर कुछ ही रेखाओं को घना कर देने से वह रोनी सूरत का बन जाता है। कुमुद अपना कुतूहल रोक न सका, बोल उठा—मुझे भी चित्र बनाना सिखा दो, मैं सीखना चाहता हूँ।

—सीखोगे—उनमें से एक ने उसकी ओर ताका, फिर उसकी ओर एक चॉक की पेंसिल बढाते हुए कहा—यह लो चॉक, बोर्ड खाली पडा हुआ है, और इस बोर्ड की ओर देखो—मै किस तरह रेखाएँ खींचता हूँ।

कुमुद उस बोर्ड की ओर देखने लगा और उसने विस्मय-विमुग्ध देखा कि किस तरह उन रेखाओं मे शकल बनती चली जाती है।

रक्त और रंग

—तुम तो जादूगर हो—कुमुद ने प्रसन्नता से उच्छ्वसित होकर उससे कहा ।

—जादूगर—चित्रकार हँसा और हँसते-हँसते कहा—सुनते हो अमल'दा, यह मुझसे कह क्या रहा है ? फिर कुमुद से कहा—तुम भी जादूगर बन सकते हो । रेखा खींचकर देखो ··

कुमुद ने कुछ रेखाएँ खींचीं, पर वे वैसी न खीची गईं, जैसी बोर्ड पर थी । इसलिए उनसे एक अजीब शकल बन गई । कुमुद झेंप गया, बोला—यह तो ठीक बना नही ।

—ठीक बन जाता है—कहकर वह चित्रकार बालक उन्हीं रेखाओं पर अपनी रेखाएँ खीचने लगा और धीरे-धीरे वह शकल बदलती गई । कुमुद बड़े गौर से देख रहा था । ज्यों-ज्यों शकल बदलती गई त्यों-त्यों उसका उत्साह बढ़ता चला और जब सारी शकल एक सुंदर चित्र में बदल गई, तब कुमुद आनंद में उछलकर बोल उठा—सचमुच, तुम जादूगर हो-जादूगर !

इसबार वह चित्रकार फिर से खिलखिलाकर हँस पड़ा, और हँसते-हँसते ही बोला–देखते हो अमल'दा, यह मुझे जादूगर कह रहा है, मगर इसे क्या मालूम कि जादूगर अलग बैठा हुआ सबको नचा रहा है !

—तुम भी कुछ कम नही नचाते नटवर—अमल से किसीने उत्तर में हँसते हुए कहा ।

कुमुद ने उस तरफ नजर फेरी और देखा कि वह भी एक चित्र बनाने में लगा है और उसके ओठों पर अब भी हँसी खेल रही है; पर वह बालक नहीं, युवक है । उसके केश बड़े-बड़े और अस्त-व्यस्त हैं, आकर्षक आकृति पर हँसती-विहँसती हुई दोनों आँखें चमक रही हैं । कुमुद उस ओर बढ़ चला । उसके स्टैंड पर रखे चित्र को देखा, देखा कि उस

चित्र का चित्रकार कितनी सफाई से कूँची चला रहा है, और प्रत्येक कूँची मे वह निखरता चला जा रहा है।

अमल'दा का नाम दयाल से वह सुन चुका था और उसने जब अभी-अभी दोबारा उस नाम को सुना, तब उसने नामधेय व्यक्ति की ओर इस तरह ताका, जैसे कोई इच्छित वस्तु के अनायास पाने पर प्रसन्न हो उठता है और उस प्रसन्नता को शब्दों में समेटकर प्रकट नही कर सकता। कुमुद को अमल ने इसी रूप मे अपने सामने पाकर उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा—तुम तो सबसे अधिक जादूगर निकलोगे भाई। इस तरह मेरी ओर ताक क्यों रहे हो?

कुमुद को अमल की वाणी में आत्मीयता का एक मधुर स्पर्श मिला। इसलिए उत्साहित होकर वह पूछ बैठा—अमल'दा, मै भी यहाँ पढ़ना चाहता हूँ। क्या तुम मुझे पढ़ा सकोगे?

—यहाँ तो कोई किसीको पढाता नही है—अमल ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—यह तुम्हे किसने कहा कि अमल'दा पढाया करता है?

कुमुद की समझ में अमल की बात आई नही, इसलिए वह उपालंभ के स्वर बोल उठा—मैं आ जाता हूँ, अमल'दा! तुम मुझे पढ़ाना नहीं चाहते, मगर मै पढ़ूँगा तो यही पढ़ूँगा, नही तो नही। क्या तुम फिर भी नहीं पढाओगे?

कुमुद की बातें सुनकर अमल ने समझा कि वह उसकी कही हुई बात न समझकर कुछ और ही समझ गया, पर उसके मन की दृढ़ता अमल से छिपी नही रही। इसलिए वह बोल उठा—मै सच कह रहा हूँ भाई, मै तो किसीको पढाता नही, मगर जो यहाँ पढ़ने आते है, उनकी मै पढ़ने में जरूर मदद करता हूँ। तुम भी वह मदद मुझसे पा सकते हो; पर क्या मै तुम्हारा नाम जान सकता हूँ?

कुमुद को अपने पुराने स्कूल की बात याद हो आई। उसे लगा कि उसके नाम के साथ-साथ उसका वंश-परिचय भी अवश्य पूछा जायगा। इसलिए उसकी उत्फुल्लता जाती रही। उसका मुँह क्षण-भर में ही फीका पड़ गया। उसने सिर झुकाकर कहा—मै रानीमाँ के यहाँ रहता हूँ, मेरा नाम कुमुद है।

अमल को यह समझते देर न लगी कि आज सुबह-सुबह ही रानी प्रभावती ने पत्र भेजकर उसके आने का जो अनुरोध किया है, उसका उद्देश्य अवश्य ही कुमुद का पढ़ाना ही हो सकता है, यद्यपि उस पत्र में इस बात का संकेत नही किया गया है! उसने कुमुद की ओर एकबार गहरी दृष्टि डाली, पर उसे देखकर यह जाने विना न रहा कि नाम पूछने के पहले वह जितना प्रसन्न दीख रहा था, उतना अब नहीं है। इसलिए उसे उत्साहित करने के विचार से वह बोल उठा—कुमुद, तुम बड़े भाग्यवान हो कि तुम्हारी रानीमाँ तुमसे प्रसन्न है! तुम निश्चय ही यहाँ पढ़ सकते हो; पर क्या तुम यहाँ टिक सकोगे? यहाँ तो किसी बड़े आदमी का लड़का पढता नही और न इनमें कोई ऊँची जाति का ही है! फिर तुम महल में रहते हो, अच्छा खाना खाते हो, अच्छों के साथ उठते-बैठते हो—वे बातें तो यहाँ मिलेंगी नहीं! और मुझे तो लगता है कि तुम्हारी रानीमाँ स्वयं यहाँ तुम्हे पढ़ाना नही चाहेगी··· ·

—नहीं, यह बात गलत है—कुमुद ने निस्संकोच भाव से बड़े निडर होकर कहा—रानीमाँ जरूर चाहेगी। रानीमाँ मुझे इतना मानती हैं कि जो मै चाहूँ, उसे पूरा हुआ ही समझिए। उन्होंने एक दिन कहा था, जानते है अमल'दा क्या कहा था?

—क्या कहा था, कुमुद?

—कहा था कि—कुमुद अपने-आप कहता चला—कहा था कि तुम चिंता

मत करो। नन्दलालगुरुजी नही है तो क्या हुआ, बहुत-से गुरुजी मिलेंगे। जहाँ तुम पढ़ना चाहोगे, वही पढ़ सकोगे।

अमल ने तुरत उत्तर में कहा—तब तुम निश्चय ही यहाँ पढ़ सकोगे।

विद्यालय मे दोपहर को जलपान देने का विधान था। समय हो चुका था, इसलिए चारोओर से लड़के सिमटकर बड़े हॉल मे इकट्ठे होने लगे। अमल भी वहाँ जाने को तैयार होकर बोला—आओ कुमुद, मेरे साथ और कुमुद को लेकर अमल उस बड़े हॉल मे आया। कुमुद ने देखा कि सभी लड़के यथास्थान बैठे है, सभी प्रसन्न है, हँस रहे है, बोल रहे है और कुछ लड़के पत्तों के दोने में जलपान की चीजें सभीके सामने रख रहे है!

अमल उन लड़कों के बीच बैठ गया। उसने कुमुद को भी अपने सामने बैठ जाने का सकेत किया। दोनों के सामने जलपान के दोने रखे गये। कुमुद ने देखा कि उस दोने में कुछ हरा चना, कुछ खीरे के टुकड़े, कुछ अमरूद के टुकडे, एक बड़ी-सी पपीते की फाँक और कुछ मुँगफली के भूने हुए दाने है। कुमुद केलिए ऐसी चीजें न थी, जो प्रलोभनीय हों। पर उस दिन के सम्मिलित हास-परिहास के बीच यह साधारण-सा जलपान उसे ऐसा अच्छा लगा, जैसे इससे अच्छा ससार में और कुछ खाने को हो ही नही सकता! सबसे अधिक उसकेलिए आकर्षण का कारण यह जान पड़ा कि मानो वे सब-के-सब एक ही परिवार के हों—सब भाई-भाई हों! सबका उल्लास लिये हँसना, बोलना, खाना और फिर काम के समय अपने-अपने काम में तत्पर हो जाना कुमुद को अत्यंत ही आह्लादक लगा।

जलपान के बाद सभी लड़के यथास्थान लौट गये। उसके बाद कुमुद से अमल ने कहा—घूम-फिरकर तुम और कुछ देखना-चाहते हो, तो देख सकते हो। यहाँ कोई रोक-टोक नही है।

कुमुद वहाँसे निकल कर लंबे मकान की ओर बढ़ा। पहले कमरे मे ही उसे दयाल से भेंट हो गई। दयाल एक करघे पर बैठकर खटाखट सटल चलाये जा रहा था और स्वयं एक-एक सूत मिलकर कपड़ा बनता जा रहा था। कुमुद ने कपड़ा बीनना कभी देखा नही था और न यही उसे मालूम था कि उसका साथी दयाल कपड़ा बीनने में इतना प्रवीण हो चुका है। इसलिए कुमुद उल्लास में भरकर बोल उठा—तुममें इतना गुण होगा—यह तो तुमने कभी बताया नहीं। तुम कितना सुन्दर कपड़ा बीन रहे हो? वाह!

—यह सुन्दर तो खाक होगा—अपने सामने कुमुद को पाकर सटल चलाना रोकते हुए कहा—अभी तो एक सप्ताह से भी अधिक नही हुआ है कुमुद, तुरत तो सीखा है, अभी उतना अच्छा होता कहाँ है! और तुम इसको सुन्दर कहते हो? जब तुम सुन्दर कपड़ा देख लोगे, तब जाने और क्या कहोगे! इसमे मेरा कोई गुण तो है नहीं। मै पहले जानता ही नही था तो तुमसे कहता ही क्या? क्या तुम सभी चीजें देख चुके? कैसा लग रहा है यह विद्यालय? सच-सच बतलाओ।

—सच-सच बतलाऊँ—कुमुद ने बड़े उल्लास और उत्साह में भरकर कहा—मुझे लगता है कि मै यही पड़ा रह जाऊँ! कभी यहाँसे हटूँ नहीं! मगर मुझे दुख होता है कि रानीमाँ मेरे विना रह कैसे सकेंगी? जानते हो, एक क्षण रानीमाँ मुझे नही देखती हैं, तो वह कितनी दुखी हो जाती हैं! छुट्टी यहाँ होती है किस समय? मै अकेला तो जा नहीं सकूँगा!

—पर मैं तो यही रहता हूँ, कुमुद!

—क्या तुम घर नही जाते, यही रहते हो?—कुमुद ने चौंककर पूछा—रात को भी यहीं रहते हो दयाल?

—यहाँ जितने लड़के अभी तुम देख चुके हो, वे सब-के-सब यही रहते, खाते-पीते, सोते-पढते हैं!

—तब तुम आज घर से कैसे आरहे थे?

—कल रविवार था न, रविवार को जो घर जाना चाहता है, जा सकता है, और किसी दूसरे दिन नही—दयाल ने कहा—जाने की जरूरत भी नहीं रह जाती ! अमल'दा की ओर से कोई रोकटोक तो है नही, सच पूछो तो यहाँ से कोई जाना ही नहीं चाहता ! जाने अमल'दा कैसा जादू जानता है······

—हाँ, तभी एक लड़का मुझसे कह रहा था–कुमुद ने हँसकर कहा—सबसे बड़ा जादूगर अमल'दा है !

दयाल ने कुमुद को अपने साथ लेकर सभी कमरे घूम-घूमकर दिखलाये और कुमुद जहाँ-जहाँ गया, वहीं उसे देखकर अचरज में पड़ना पड़ा ! फल यही हुआ कि वह विभ्रात हो पड़ा ! वह कोई निश्चय पर पहुँच नही सका कि उसे कौन-सा काम पसंद आया और कौन-सा नहीं ।

देखते-देखते समय निकलता गया । विद्यालय की आखिरी घंटी पड़ी । सभी लड़के अपने-अपने कमरे से निकल आये । सभीकी सामूहिक ध्वनि गूँज उठी । उसी समय अमल कुमुद के पास आकर बोल उठा—कुमुद, देख लिया सब-कुछ ?

—हाँ, सब-कुछ देख लिया !—कुमुद ने प्रसन्न होकर उत्तर में कहा—मगर दयाल कहता है कि वह तो यही रहता है, घर जाता नहीं, मै अकेले जा कैसे सकूँगा ? मै तो रानीमाँ से कुछ कहकर आया नही था ।

—अगर चाहो तो मै उनके पास खबर भिजवा सकता हूँ । क्या तुम आज से ही यहाँ रहना चाहते हो ?

—चाहता तो जरूर हूँ—कुमुद ने कहा–कि मै सदा केलिए यहीं रह जाऊँ ! मेरे तो कोई है नही ! ऐसी जगह से भला कौन जाना चाहेगा ? मगर मै रह कैसे सकूँगा, अमल'दा ? आप तो जानते नहीं

कि रानीमाँ मुझे आँखों से ओट नहीं कर सकती ? नहीं-नहीं, जबतक वह मुझे यहाँ रहने की आज्ञा नहीं दे देती, तबतक मैं यहाँ रह कैसे सकूँगा !

अमल ने कुमुद की बातों का मर्म समझा, इसलिए उसने भी प्रसन्न होकर कहा—हाँ, तुम्हे जाना ही चाहिए, कुमुद ! अच्छे लड़के ऐसा ही सोचते है। मै ब। खुश हुआ तुम्हारी बातें सुनकर। यहाँ रहने केलिए उनकी आज्ञा तो चाहिए ही कुमुद ! तुम आज जाओ। मै कल तुम्हारे यहाँ आऊँगा। फिर अमल ने दयाल से कहा-दयाल, इसे महल तक तुम पहुँचा आओ। अकेला कुमुद जा नहीं सकेगा।

—चलो कुमुद, मै पहुँचा आऊँ।

और दोनो वहाँसे चल पड़े।

२१

कुमुद जब विद्यालय से महल में लौट आया, तब शाम हो चुकी थी; पर आज उसके मन में इतना आनंद था कि उसने महल में आकर, विलंब का कारण पूछने के पहले ही, अपनी स्नेहमयी रानीमाँ के सामने नये विद्यालय के अभियान के संबंध में सारी बातें कह सुनाई। फिर, अंत में, आनंद के उल्लास में उसने कहा—मै वही पढ़ूँगा, रानीमाँ! अमल'दा इतना अच्छा आदमी है कि क्या बतलाऊँ! मै तो आज वही रह जाता; पर मै आपकी आज्ञा पाये विना वहाँ रह सकता था कैसे? सोचा—आपको मेरे विना बड़ा दुख होगा, इसलिए मै चला आया। आप तो कुछ बोलती नही है रानीमाँ! क्या आप वहाँ पढ़ने की आज्ञा नही दे सकती?

प्रभावती को यह समझते देर न लगी कि कुमुद की इतनी प्रसन्नता का कारण क्या है। वह अमल को जान चुकी है। उसके विद्यालय को अपनी आँखों देख भी चुकी है। उसे यह भी पता है कि वहाँ किस तरह के लड़के पढ़ते हैं। इनमे कौन-सी बात कुमुद के मनोनुकूल जान पड़ी, जिससे वह इतना प्रभावित हुआ है! प्रभावती सोचने

लगी कि संभव है, सबसे अधिक या सबसे विशेष आकर्षण का कारण अमल का व्यवहार और उनके शिक्षा देने का ढंग ही हो सकता है। उसे अमल के प्रति कुछ कम आकर्षण नहीं था और उस आकर्षण की पुष्टि में जब कुमुद, वहाँ की सारी बातें एक-एक कर सुना गया और वहीं जाने की वह आज्ञा चाहता है, तब अधिक सोचने या चुप रहने की उसे आवश्यकता नहीं रह गई। वह कुमुद को अप्रसन्न नही कर सकती। इसलिए, प्रभावती को कहना पड़ा—अमलजी को यहीं बुलाया है, कुमुद! मै तो वह विद्यालय देख आई हूँ।

—देख आई है?—आश्चर्य से प्रभावती की ओर देखते हुए कुमुद ने पूछा। फिर कुछ क्षण के बाद वह स्वयं उल्लास में बोल उठा—तब तो आपने खुद देखा ही होगा कि वहाँ किसतरह माटी की मूरतें बनाई जाती हैं, किसतरह कागज पर चित्र बनाये जाते हैं, किस तरह कपड़े बीने जाते है, टेबिल-कुर्सी-तिपाई, हसुए-भाले-बर्छे, चाकू-सरौते—रानीमाँ, इत्ती सारी चीजें और सब-के-सब लड़के ही बनाते है—मेरे-जैसे लड़के—और वे सब लड़के किसीसे झगड़ते नही, ताने नही कसते, किसीसे घृणा नही करते–सब भाई-भाई जैसे लगते है! रानीमाँ, वह तो स्कूल नहीं, विद्यालय है, नाम लिखाने का वहाँ बखेड़ा कुछ नही! वहाँ तो मेरा वंश-परिचय भी कोई जानना न चाहेगा ·····

कुमुद ने इतनी बातें एक साँस मे सुना दीं। प्रभावती ने आज उसकी आकृति से अनुभव किया कि वंश-परिचय की ग्लानि से उसके मुँह पर किसी प्रकार की विकृति नही आई, यह तो बड़ा शुभ लक्षण है! वह प्रसन्न हो उठी और प्रसन्नता से उसकी ओर देखते हुए वह कुछ बोलना ही चाहती थीं कि तभी उसी तरह के उल्लास में कुमुद ने कहा—जानती है, रानीमाँ, अमल'दा को वहाँ सभी लड़के क्या कहा करते हैं?

—हाँ, क्या कहते है कुमुद ?—प्रभावती ने विस्मय से पूछा।

—कहते है, अमल'दा बड़ा जादूगर है! वह जो चित्रबनानेवाला लड़का था न,उसने मेरे चित्र पर दो-चार टेढी-सीधी रेखाएँ खींच दी और वह चित्र सुन्दर हो उठा। तब मैने कहा—तुम जादूगर हो। और मेरी बात सुनकर वह चित्रबनानेवाला लड़का हँसा और हँसकर बोला—मै नहीं, मै नहीं, सबसे बड़ा जादूगर अमल'दा है। दयाल ने भी अमल'दा को ही बड़ा जादूगर बताया!

—और उसी जादूगर का जादू तुम्हारे सिर पर चढ़कर बोल रहा है—प्रभावती बोलकर खिलखिलाकर हँस पड़ी! कुमुद ने प्रभावती को मुसकुराते हुए देखा था, और कभी-कभी हँसते हुए भी, पर इस तरह खिलखिलाकर वह हँस भी सकती है—कुमुद को मालूम नही था! प्रभावती की खिलखिलाहट सुनकर कुमुद भी अपनेको रोक नहीं सका, वह भी खिलखिलाकर हँस पड़ा।

प्रभावती, हँसी की लहर नि शेष हो जाने के बाद, गंभीर हो उठी। उसने जादूगर का सिर पर चढ़कर बोलने की बात पर मन-ही-मन सोच कर जब देखा, तब उसे लगा कि वह जादू कुमुद के सिर पर ही चढ़ा हुआ नही है, वरन् वह स्वयं उस जादूगर की ओर खींचती- जा रही है! उस दिन विद्यालय को देखकर प्रभावती ने समझा था कि वहाँ केवल गृह-उद्योग के ढंग की शिक्षा दी जाती है, उसमें बौद्धिक विकास की गुंजाइश नहीं। अत वह कुमुद-जैसे राजघराने से संबधित बालक केलिए उपयुक्त नहीं! आज कुमुद की बातों से उसे जान पड़ा कि बालकों के मानसिक धरातल को परिष्कृत करने केलिए विद्यालय ने जिस प्रकार की शिक्षा का क्रम अपनाया है, वह सर्वथा उपयुक्त है, प्रशंसनीय है। पर उसे कुछ बातें ऐसी लगीं, जिन्हें उसका मन स्वीकार न कर सका था! उसे लगा कि उन बातों पर गंभीरता से विचार करने के बाद ही वह कुछ निर्णय कर

सकती है, और उस विचार केलिए उसेःएकात में सोचना अपेक्षित होगा। इसलिए वह वहाँसे उठकर चलते हुए बोली--अच्छा, जाओ कुमुद, अभी आराम करो।

प्रभावती पूजाघर की ओर चल पडी। पर वह वहाँतक पहुँच नहीं सकी। रास्ते में ही श्यामा ने आगे बढ़तेहुए सुनाया कि दीवानजी आ रहे हैं, क्या उन्हें आने को कहा जाय या नही! प्रभावती खडी हो रही, वह स्वयं उनसे मिलने को उत्सुक थी। इसलिए उसने उत्तर में कहा—दीवानजी से जाकर कहो कि वे निश्चय ही आवें।

प्रभावती अपने आफिस-कमरे की ओर बढी।

कुछ ही क्षणों के बाद दीवानजी ने आफिस के कमरे में प्रवेश कर रानी प्रभावती के प्रति अभिवादन प्रकट किया। प्रभावती खड़ी होकर उनके प्रति दोनों हाथ जोड़कर प्रतिअभिवादन करते हुए बोली–पधारिये, अच्छे है न!

दीवानजी छड़ी को कुर्सी की पीठ पर टेककर बैठतेहुए बोले—हाँ, अच्छा ही हूँ, रानीमाँ! पर अब तो तन के साथ मन भी थकता जा रहा है··· ··

—थकना तो अस्वाभाविक नही—प्रभावती ने संयत स्वाभाविक मधुर भाव से इषत् मुस्कान के साथ कहा—वह तो उसका धर्म है; पर उसके भीतर जो ज्ञान संचित होता रहा है, उसका लाभ ही पर्याप्त है, वह लाभ मिलता रहे।

—लाभ!—दीवानजी हँस पडे, उन्होंने नाक पर चश्मे को ठीक से जमाते हुए प्रभावती की ओर देखा, फिर गंभीर होकर बोले—लाभ की बात जो कह रही है रानीमाँ, वह आप तो उठा लेती है, पर बड़े तो उठाना चाहते नहीं! उन्हें जिद् है कि जमीदारी नीलाम पर चढ ही जाय, पर वे अपना अंश आपको देना नही चाहेंगे! यह अजीब बात है!

दीवानजी इतने गभीर हो उठे कि उनके मुख की सारी रेखाएँ घनी हो उठी । प्रभावती ने उनकी ओर दृष्टि डाली और मौन होकर दीवानजी को चिंतित मुद्रा में सोचतेहुए देखकर वह कुछ कहना ही चाहती थी कि उतने मे दीवानजी स्वयं बोल उठे—चौधरी-वंश में ऐसा भी घटेगा, इसकी कोई कल्पना भी नही कर सकता ! पर जब किसीकी बुद्धि मारी जाती है, तब ऐसा ही सूझता है ! आप जानती है कि वे जो बात ठान लेते है, उसे पूरा कर छोड़ते है !

प्रभावती चिंतित हो उठी। कुछ क्षणतक वह अन्यमनस्क भाव से सिर झुकाये पड़ी रही, फिर बोली—आखिर वे कहते क्या हैं ?

—कहेंगे क्या ?—दीवानजी गंभीर स्वर में चिंतित होकर बोले—जो साफ बोलनेवाले है, वे प्रिय-अप्रिय का विचार किये विना ही, जो मुँह में आता है, निकाल देते है, वे भीतर रखकर सड़ाना नही चाहते। बड़े राजाबाबू मे यही तो बड़ा दोष है कि वे मुँह से कुछ कहना नही चाहते ; पर उनकी नीयत साफ बताती है कि वे आपकी बात का हर्गिज समर्थन नही करना चाहते। वे आपसे रुपये लेकर जमींदारी बचाना नहीं चाहते, चाहे ऋण के भीतर सारी जमीदारी ही क्यों न चली जाय !

—सारी वे अपनी दे सकते है, मै उन्हें रोकती नही—प्रभावती का स्वर तीव्र हो उठा और वह कुछ उद्विग्न होकर बोली—मगर मेरी जमीदारी जो जाना चाहती है, इसके संबध में वे क्यों नही सोचते ? एकके चलते साझे की चीज नष्ट हो जाय, यह कहाँका न्याय है ? नीति की बात तो सदा उनके ओठो पर ही पडी रहती है; पर काम के समय उनकी नीति कहाँ चली जाती है !

प्रभावती भावावेश में बोलकर चुप हो गई, जाने वह और क्या

सोचने लगी। उसके बाद वह अचानक बोल उठी-तब तो नीलकोठी के सम्बन्ध में भी उन्होंने ऐसा ही कुछ कहा होगा?

—हाँ, आपका अनुमान सही है, रानीमाँ!—दीवानजी ने प्रभावती की ओर देखा, फिर बोले—यह तो मानी हुई बात है कि जिस बात को आप करना चाहेंगी, उसमें वे कभी साधक तो रहे नहीं—बाधा उनकी ओर से मिलनी ही चाहिए। वे तो समझते हैं कि नये मास्टर को आपने ही मँगवाया है। आपने ही कोठी में विद्यालय खोलने की उन्हें इजाजत दी है और ऐसा इसलिए किया गया है कि आप प्रजा में नाम कमाना चाहती हैं और सबसे अधिक आप कुमुद को अपने तरीके से शिक्षित करना चाहती हैं।

प्रभावती ने दीवानजीकी बातें सुनी और उन-सब बातों पर अपना विचार व्यक्त न कर वह हँस पड़ी। दीवानजी से उसके हँसने का कारण छिपा न रहा। वे जानते हैं कि जब-जब रानी प्रभावती के सामने कोई गूढ़ समस्या आ पहुँचती है, तब-तब वे उसे हँसी में ही डुबो देना चाहती हैं। उसपर खिन्न नहीं होती और न चिंतित ही होती हैं। पर दीवानजी के सामने जो भविष्य का चित्र विकराल रूप धरकर खड़ा दीखता है, उनकेलिए वह हसी प्रत्यक्ष एक विडंबना-सी प्रतीत हुई और इसीसे वे दुखी होकर बोल उठे—आप हँसी में उड़ा नहीं सकतीं रानीमाँ! मैं देखता हूँ कि बड़े राजाबाबू चारो ओर से सर्वनाश करने पर तुले हुए हैं—अपना तो करेंगे ही, आप, आप

दीवानजी सचमुच भविष्य की कल्पना से खिन्न हो उठे और उसी खिन्नता में अपना बात पूरी न कर जोर-जोर से हाँफने लगे। प्रभावती को मौन रहना असंभव हो उठा। इसलिए वह संयत भाव से बड़े मधुर स्वर में बोली—इसकी मुझे चिन्ता नहीं! आपका जो कर्त्तव्य था, उसे आपने पूरा किया। आपने चेतावनी दे दी, साथ-साथ सहायता भी करनी

चाही, पर जब वे इसे अंगाकार नही करना चाहते है, तब हमसब इससे अधिक और कुछ कर भी क्या सकते है। जो घटने को होगा—वह घट कर रहेगा। मनुष्य की शक्ति है ही कितनी! फिर जहाँ अपनी शक्ति काम नही आती, वहाँ शक्तिशाली प्रभु की शक्ति काम करती है! हमारी दृष्टि उसी शक्ति की ओर रहनी चाहिए, दीवानजी!

—हाँ, उस शक्ति के प्रति हमें नतमस्तक होना चाहिए- कहकर दीवान जी ने आँखें मूँदकर सिर झुकाया, फिर कुछ क्षण चुप रहने के बाद बोले—आपकी निष्ठा का मै सम्मान करता हूँ, रानीमाँ! पर मुझे लगता है कि जमीन्दारी का बटवारा हो जाना ही उचित होता! यदि ऐसा हुआ होता, तो आज हमारे सामने चिंता का पहाड़ न दिखाई पड़ता! अपने तरीके से जमीन्दारी चलाई जाती और आज हमे ग्लानि का गरल-पान न करना पड़ता!

—गरल-पान!—ओठों-ओठों मे प्रभावती ने कहा, फिर रुक-रुक कर बोली—आवश्यक हो है दीवानजी! गरल का पान करना आवश्यक ही होता है कभी-कभी, उससे लाभ ही होता है—हानि नही।

दीवानजी इन बातों को सुनकर भीतर से प्रसन्न न हो सके। प्रभावती बुद्धिमती है, विदुषी भी है, पर राज-काज केलिए जिस प्रभुत्व और रोब की जरूरत समझी जाती है—उनका अभाव दीवानजी को खला, पर सहसा वे भी सकोच मे पड़कर कुछ बोल न सके। वे जैसा बचाव का रास्ता सोचते हैं, उसपर प्रभावती जने को तैयार नही! प्रभावती जहाँ अदृश्य शक्ति पर भरोसा रखकर शासन-भार चलाती आई हैं, दीवानजी सिर्फ उसी शक्ति का सहारा नही लेना चाहते, अपने उद्यम पर विश्वास रखते आये है। पर प्रभावती को अब इस ओर उत्साहित करना उनके वश की बात नही दीखती। इसलिए भीतर से खिन्न तो हो उठे,पर वे भी अपने रास्ते से हट न सके। इसीलिए वे फिर बोल उठे—

—लाभ-हानि का प्रश्न नहीं है, रानीमाँ !—दीवानजी जरा सँभलकर बैठे, फिर कहने लगे—पर यह तो प्रतिकार का पथ नहीं ! हमें तो वह पथ ढूँढ निकालना ही पड़ेगा, जिससे चौधरी-वंश की मर्यादा भी अक्षुण्ण रह जाय और इतने दिनों से चली आती जमीन्दारी पर जो बिषाद का बादल मँडरा रहा है, उसका भी समूल नाश हो जाय।

प्रभावती उनकी बातें बड़े ध्यानसे सुन रही थी। वह आशान्वित होकर उसकी ओर देखती हुई बोली—वह कौन-सा पथ है, मैं नहीं जानती, पर अभीतक तो हम कुछ कुपथ या विपथ पर चले नहीं हैं। हमलोगोंने जो-जो प्रश्न उनके सामने रखे, उन्होंने उनमें से किसीको स्वीकार किया नहीं और न उनसे ऐसी स्वीकृति की आशा रखी जा सकती है ! आपही बतलाइए—अब आखिर कौन-सा पथ रह गया है, जिसपर हमें सफलता मिलेगी ?

प्रभावती चुप होकर दीवानजी की ओर देखने लगी, पर वे सिर झुकाकर बड़े गंभीर भाव से कुछ सोच रहे थे। इसलिए उनकी ओर से सहसा कुछ कहा न गया। इतने में प्रभावती चिंतित भाव से बोली—चौधरी-वंश की मर्य्यादा की रक्षा करना हमारा धर्म है, हम कैसे भूल सकते हैं उस मर्यादा को, जो एक परंपरा से चली आ रही है ! दीवान जी, उस पथ को बताना ही होगा—ढूँढ़कर निकालना ही होगा। आप अनुभवी हैं, सहसा आप मन में हार स्वीकार कर लेंगे—इसे मैं सोच भी नहीं सकती।

दीवानजी की आकृति खिल उठी, उनकी आँखें चमकने लगीं और प्रसन्न भाव से वे बोल उठे—जीवन की बाजी में हार-जीत का कोई विशेष मूल्य नहीं होता, रानीमाँ ! उससे मैं न कभी घबराया और न प्रसन्न ही हुआ। यदि ऐसा नहीं होता, तो यह गाड़ी इतनी दूर तक खींची नहीं जा सकती ! हमारे सामने, देखता हूँ, जो बड़ा-सा खाई-खन्दक आ गया है,

जहाँ आकर गाडी चल नही रही--हमारा कर्त्तव्य होना चाहिए कि हम उसे पाट दें या वहाँसे दूसरा मोड़ लें। इसकेलिए मैं सदा सचेष्ट हूँ, रानीमाँ! मै उस रास्ते पर भी बढने केलिए तत्पर रहूँगा।

प्रभावती उठ खड़ी हुई। उसके मन में कहने केलिए बहुत-सी बातें इकट्ठी हो चली थी, जिन्हें वह संभाल नहीं सकी और संभालने के प्रयत्न मे लगा, जैसे उसका मस्तिष्क इतना बोझिल हो उठा कि वह जिस पथ की बात जानना चाहती थी, उसके संबंध में उसे कुछ स्मरण तक भी नही रहा। वह खड़ी होकर दोनों हाथ जोड़ स्मित भाव से नमस्कार जनाते हुए बोली—आपपर मुझे पूरा यकीन है दीवानजी, आप जो भी करेंगे, वह चौधरीवंश की मर्यादा के अनुकूल ही होगा।

दीवानजी उठ खड़े हुए और खड़े होकर विनम्र भाव से प्रभावती के प्रति अभिवादन की स्वीकृति मे दोनो हाथ संपुटकर और दो पग आगे बढ़कर बोले--अनुकूल ही होगा, रानीमाँ, चाहे उसकेलिए जो कुछ संकट उठाना पड़े।

—संकट!—प्रभावती कुछ क्षण केलिए रुक गई और बोली—पर वह संकट मेरी अंतर्व्यथा को बढानेवाला सिद्ध होगा। मैं किसी भी कीमत पर उसे सहन नहीं करूँगी, दीवानजी!

—यह आप क्या कह रही हैं, रानीमाँ?—दीवानजी खिन्न होकर बोल उठे।

—मैं ठीक कह रही हूँ, दीवानजी!—प्रभावती का स्वर तीव्र हो उठा। वह उसी तीव्रता में बोल उठी—आपकी कृपा केलिए मैं अनुगृहीत हूँ और रहूँगी; पर आपकी वृद्धावस्था का मुझे खयाल तो रखना ही पड़ेगा! क्या इतना भी अधिकार आप मुझे नहीं देना चाहते हैं?

दीवानजी हँस पड़े और हँसते-हँसते ही बोले—रानीमाँ, देखता हूँ

कि आप अब भी वही बच्ची रही हैं, जैसी आप पहले-पहल यहाँ आई हुई थीं ! इतने साल निकल गये, पर आ.......

प्रभावती हँस पड़ी और हँसते हँसते ही उसने दीवानजी के पैरों का स्पर्शकर अपने स्पर्शित हाथों को आँखों से लगाते हुए कहा—मैं वैसी बच्ची ही बनी रहूँ, यही आशीर्वाद दीजिए ।

दीवानजी प्रसन्न होकर विदा लेते हुए बोले—मेरा आशीर्वाद सदा आपके साथ रहेगा—सदा साथ रहेगा, रानीमाँ !

दीवानजी अभिवादन-विनिमयकर चले गये,पर उनकी आशीर्वाद-वाणी प्रभावती के कानों में गूँजती रही ! आज जिस समस्या को लेकर दीवानजी के साथ बातें हुई थीं, वे ऐसी न थीं कि प्रभावती स्वस्थ हो पाती। उसका चित्त चंचल हो उठा था, भविष्य की आशंका से उसकी आकृति की रेखाएँ फूट उठी थी। उसे लग रहा था कि चौधरी-वंश का विनाशकारी क्षण आ पहुँचा है, वह सहज रूप से टलनेवाला नहीं ! यदि उसकेलिए अन्य कोई पथ सोचकर नहीं निकाला जा सका, तो सर्वनाश निश्चित है ....

प्रभावती सर्वनाश की कल्पना से घबरा उठी। उसका सहज सरल हृदय विचलित हो उठा। वह महल से चुपचाप निकलकर बाहर की ओर चल पड़ी।

२२

दूसरे दिन कुमुद तड़के उठ पड़ा। उसके मष्तिष्क में विद्यालय का मारा दृश्य इसतरह अंकित हो उठा था कि वह अस्तव्यस्त हो पड़ा। उसने सबेरे-सबेरे अपने पैंट की जेब से एक चॉक का टुकड़ा निकाला, जो चित्र बनाने के समय चित्रकार लड़के ने उसे दिया था। बह पलंग से उतरकर दीवाल के सामने खड़ा हो गया। खिड़की की राह से सूर्य की किरणें उस दिवाल को उज्ज्वल बना रही थी, यद्यपि दीवाल की पुताई हलके नीले रंग को गई थी। उस नीली दीवाल पर कुमुद बड़े मनोयोग से टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ खीचने लगा और उन रेखाओं से एक ऐसा चित्र निर्मित हो उठा, जिसे देखकर वह स्वयं अपनी हँसी रोक न सका। और उस हँसी की तरङ्ग जब बगल के कमरे में आकर टकराने लगी, तब पारो अपने-आपको रोक न सकी। उसे लगा कि ऐसी कौन-सी बात कुमुद को देखने मे आई, जिससे इस तरह वह खिलखिला रहा है। पारो वहाँसे उस कमरे में दौड़ पड़ी और उसनें कुमुद को दीवाल से सटकर खड़े देख कुतूहल से पूछा--तुम बड़े अजीब लड़के हो, कुमुद! हँस क्यों रहे हो?

रक्त और रंग

पारो को अबतक पता नहीं चला कि उसके हँसने का कौन-सा कारण हो सकता है। पर कुमुद ने सहसा जब उसे अपने सामने देखकर हँसी का कारण पूछते हुए पाया, तब उसने संकेत से दीवाल की ओर बतलाते हुए कहा—आँख फॉडकर मेरी ओर क्या देख रही हो पारो, जरा इधर तो देखो भला—यह तुम्हारे चेहरे से मिलता-जुलता है न ?

पारो ने इसबार उस चित्र की ओर अपनी दृष्टि डाली और भद्दे चित्र को अपनी शकल से मिलान करतेहुए उसका चेहरा रंज से लाल हो उठा। वह रोष-सने वचनों में बोल उठी—यह मजाक मुझे पसंद नही कुमुद ! तुम समझते हो कि तुम्हारे-जैसा और कोई सुन्दर है नहीं ! जाओ, मै तुमसे नही बोलती ! मै असुन्दर ही सही।

पारो रंज में थी, इसलिए वहाँ ठहर नही सकी। वह मुड़ चली, पर कुमुद सामने आकर खड़ा हो गया और उसके सिर को दोनों हाथों से जकड़कर कुछ क्षण उसकी आँखों में आखें डालकर देखता रहा। पारो की आकृति रोष के मारे लाल-सूर्ख हो उठी थी, इसलिए उसकी आँखें और भी बडी दीखने लगी थीं। कुमुद को उसकी आकृति में ऐसी कुछ चीज दीख पडी, जिसे उसने कभी उसमें देखा नही था ! वह उत्फुल्ल हो उठा और तुरत उसे छोड़कर फिर उस दीवाल के सामने जा पहुँचा और चॉक को ठीक से जमाकर उसी चित्र की रेखाओं को सुधारने लगा। पारो अपनी जगह से टल नही सकी। उसे कुमुद के व्यवहार से रंज तो जरूर हुआ; पर उसी कुमुद के चित्र बनाने की कुशलता पर वह मन्त्र-मुग्ध हो पड़ी और टकटकी बाँधकर देखती रही कि कुछ रेखाओं के हेर-फेर से उस चित्र की शकल किस तरह बदल रही है। और, उसने अब देखा कि वह चित्र पहले से अधिक-अधिक निखर उठा है और उससे लगता है कि वह चित्र हँसने की अपेक्षा रोष की रेखाओं से भर उठा

है। इसबार पारो हँस पड़ी और हँसतेहुए बोली—ऐसा चित्र बनाना तुम्हे आ गया कैसे कुमुद! पहले तो तुम्हे कभी ऐसा बनाते नही देखा।

—अमल'दा के यहाँ सीखा है—कुमुद ने उमंग में भरकर कहा—जब मै अच्छा चित्रकार बनूँगा, तब सबसे पहले तुम्हारा चित्र ही बनाऊँगा पारो! उसदिन तुम देख लेना कि मै कितना तुम्हे सुन्दर बना सकता हूँ।

—सुन्दर बनाओगे?—पारो विस्मित होकर बोल उठी—नही-नही, कुमुद, मै जैसी हूँ.वैसी ही बनी रहना चाहती हूँ। न कुछ ज्यादा सुन्दर,न कुछ ज्यादा असुन्दर! हाँ,—पारो कुछ क्षण रुककर जरा हँसती हुई बोली-अगर तुम ठीक-ठीक मेरा चित्र बना सको तो बनाना। मै ठीक ठीक को ही ज्यादा पसद करती हूँ। जैसी मैं हूँ नहीं, वैसा बनाकर मुझे हँसी का पात्र न बनाना कुमुद, मै तुम्हारा अहसान मानूँगी।

पारो रह-रहकर उस चित्र को देख लेती, फिर कुमुद की ओर भी उसकी आँखें जा लगती। अवश्य उसे लगता कि कुमुद अच्छा चित्रकार बनकर रहेगा। कुमुद उसकी भाव-भंगिमा को देखकर प्रसन्न हो उठा और बह आनंद-मग्न होकर बोला—अहसान मानने की जरूरत ही नहीं आयगी, पारो!

पारो सहसा उसकी बात समझ नही सकी। इसलिए उसने कुमुद से पूछा—तो तुम क्या अमल के स्कूल में ही पढा करोगे?

—हाँ—कुमुद ने उत्तर में उसके प्रश्न को सुधारते हुए कहा—वह तो स्कूल नही, विद्यालय है पारो!

—विद्यालय कहो, स्कूल कहो चाहे पाठशाला कहो, मतलब साफ है।

कुमुद को पारो की बात अच्छी न लगी। यद्यपि वह भी समझता है कि जो स्कूल होता है वही विद्यालय भी होता है, मौलिक कोई भेद नहीं;

तथापि उसे लगता है कि विद्यालय में जो एक प्रसन्न वातावरण होता है, वह स्कूल में नहीं होता। इसलिए विद्यालय का ऊँचा स्थान स्कूल पा नहीं सकता। इसलिए वह विरोध प्रदर्शित करतेहुए बोल उठा —मतलब साफ होने पर भी उनदोनों में अन्तर ता है ही। जिस तरह, एक तुम हो कि महल के अंत पुर की सेविका हो और दूसरी वह है जो घुड़साल में झाड़ू लगाया करती है।

पारो पहले तो हँस पड़ी, पर उसे कुमुद की बातों में तीखा व्यंग का आभास मिला। वह भीतर से तिलमिला उठी। उसे लगा कि इसका जवाब उसे तीखे शब्दों में ही देना ठीक होगा, पर उसे उससे कहते न बना। जो बात उसके मन में आकर घुमड़ रही थी, यदि वह कह दी जाती, तो अनर्थ खड़ा हो सकता था और वह अनर्थ सिर्फ कुमुद तक ही सीमित न रहकर रानीमाँ के कानों में पड़ता, तो एक विराट काण्ड उठ खड़ा होता। पारो उनतक की कल्पना मन-ही-मन कर गई। उससे उसका चेहरा आप-से-आप मुरझा गया और वह मुरझाकर ही बोली—मैं दासी ठहरी, इसलिए तुम ऐसा सुना गये कुमुद! मैं जानती हूँ कि तुम अब दासी और बाँदी में भी अंतर समझने लग गये!

पारो वहाँसे तीर की तरह निकल भागी। कुमुद को उसका इस तरह से चला जाना अच्छा न लगा। वह कुछ क्षण बाहर देखते रहने के बाद कमरे से निकलकर नित्य नैमित्तिक कामों में जा लगा।

उस दिन जल्दी-जल्दी खाकर जब चलने को तैयार होकर कुमुद बाहर निकलना ही चाहता था,तभी पारो जाने किधर से दौड़ती हुई आकर बोली—तुम क्या विद्यालय में पढ़ने जा रहे हो?

—हाँ, विद्यालय ही जा रहा हूँ।

—विद्यालय जाने की आज्ञा क्या रानीमाँ ने दे दी है तुम्हे?

कुमुद को याद हो आई कि वह तो अबतक उनकी. आज्ञा लेना भूल ही चुका था; इसलिए वह बोल उठा—आज्ञा तो ली नहीं पारो! रानीमाँ अभी होंगी कहाँ? जरा तुम भी चलो न मेरे साथ!

पारो ने उँगली के इशारे से रानीमाँ के आफिस की ओर बताते हुए कहा—तुम खुद जाओ! मै तो दासी-बाँदी ठहरी। मेरा क्या प्रयोजन?

—प्रयोजन—कुमुद हँस पड़ा, उसने पारो के कान में ओठ सटाकर मुस्कुराते हुए कहा—तुम्हारा प्रयोजन मुझे हर समय रहेगा, पारो!

—नही-नही, मै दासी-बाँदी ठहरी!

—हाँ, दासी-बाँदी ठहरी—कुमुद ने गंभीर होकर कहा—रानीमाँ केलिए, मेरेलिए नही! मेरेलिए जैसी तुम आज पारो हो. वैसी पारो ही रहोगी, जैसा मै तुम्हारेलिए आज कुमुद हूँ, वह कुमुद जो पहले था!

पारो अधिक व्यस्त हो उठी। उसने अपनी उँगलियाँ उसके मुँह पर रख दी और कान में सटकर कहा—चुप रहो कुमुद, वैसी बात मुँह से न निकालो। मै हाथ जोड़ती हूँ।

इसबार पारो स्वयं आगे बढी। कुमुद उसके साथ आफिस के सामने आया। प्रभावती कुर्सी पर बैठी कुछ फाइलों का काम कर रही थी। कुमुद को तैयार देखकर वह कुछ बोलना ही चाहती थी कि पारो ही बोल उठी—कुमुदजी विद्यालय जाने की आज्ञा चाहते है।

—आज्ञा!—प्रभावती को सारी बातें स्मरण हो आईं, और कुमुद को सामने खड़ा देखकर कुछ क्षण सोचते रहने के बाद बोली—मगर विद्यालय तो दूर है कुमुद, अकेले तुम जा कैसे सकते हो?

—दूर है तो क्या हुआ रानीमाँ!—कुमुद ने कहा—रास्ता तो देखा हुआ है। मै चला जाऊँगा।

—नहीं, वैसा कैसे हो सकता है?—प्रभावती ने बड़े स्नेह से कहा—यह तो स्कूल है नहीं कि तुम दौड़ते चले जाओगे! वहाँकेलिए तो मैं सोच चुकी हूँ। तुम्हें वहाँ गाड़ी पर जाना होगा। ऐसे कैसे जा सकते हो! अगर जाना ही तुम चाहते हो, तो पारो जाकर सब इंतजाम किये देती है! फिर पारो की ओर देखकर कहा—पारो, जरा तुम गाडी का प्रबंध कर दो और गाड़ीवान से कह दो कि वह पहुँचाकर चला आवे; फिर पिछली पहर जाकर ले आवे। समझ गई?

—हाँ, समझ गई, रानीमाँ!

पारो कुमुद को लेकर लौटने को दो कदम आगे बढ़ी थी कि प्रभावती ने अपनी जगह से ही कहा—कुमुद, अमलबाबू से कह देना कि उन्होंने चिट्ठी का जवाब क्यों नही दिया? अच्छा!

—कह दूँगा, रानीमाँ!

वे दोनों बाहर निकल गये।

प्रभावती का ध्यान कुमुद की ओर जा लगा। कुमुद को लेकर उसके हृदय में जो मधुर मातृत्व की भवना लहरा रही थी, उसपर भी विचार करते हुए उसे लगा कि कुमुद ने उसके अतर में जो स्नेह की मुहर लगा दी है, वह ऐसी नहीं कि वह योंही मिट जाय! उस कुमुद को आदमी बनाना होगा, उसकेलिए जो भी करणीय होगा, उससे वह तिल-मात्र भी पीछे न रहेगी! प्रभावती को कुमुद की विद्यालय-संबंधी सारी बातें फिर से ताजा हो उठीं और उसी प्रसंग में यह भी उसे स्मरण हो आया कि अमल जादू करना जानता है—वह सबसे बड़ा जादूगर है।

—जादूगर!—प्रभावती जादूगर के नाम से हँस पडी। उसके रोम-रोम उस हँसी से पुलकित हो उठे! उसने मन ही-मन स्वीकार किया कि हाँ, अमल जादूगर से भिन्न और कुछ नही है। पर तुरत ही वह गंभीर

हो उठीं--अमल-जैसे जादूगर के हाथ कुमुद को सौंपना क्या ठीक होगा ? कुमुद को उससे जो इतना आकर्षण हो गया है, उसका अंतिम परिणाम कहीं यह तो नहीं होगा कि उसका मन महल से फिर जाय ? प्रभावती इस विचार से भीतर-ही-भीतर चंचल हो गई । उसे लगा कि वह पागल हो उठेगी । वह कमरे से निकलकर बाहर आई । उसने श्यामा को पुकारा और श्यामा ने पहुँचकर जब उसकी चिंता से खिन्न आकृति देखी, तब उसने अत्यंत विनीत भाव से कहा—क्या आज्ञा है, रानीमाँ ?

प्रभावती खड़ी न रह सकी, वह चुपचाप सिर झुकाये धीरे-धीरे चलने लगी । श्यामा ने भी अपनी स्वामिनी का अनुसरण किया । चलते-चलते ही प्रभावती बोली—श्यामा, जानती हो, कुमुद मुझसे आज्ञा लेकर विद्यालय चला गया है—अमलजी का विद्यालय ! मुझे लगता है कि मैंने ऐसी आज्ञा देकर कुछ गलत तो नहीं किया !

--गलत !—श्यामा समझ गई कि कुमुद केलिए ही रानीमाँ चंचल हो उठी है । उसे सारी परिस्थिति का ज्ञान हुआ और वह उत्तर में बोल उठी–गलत तो नहीं,यह तो आपने उचित ही किया है, रानीमाँ ! अमल तो कुछ साधारण गुरुजी है नहीं ! उनके साथ रहकर कुमुद का उपकार ही होगा ! आप तो अमल को अच्छी तरह जानती है, रानीमाँ !

—अच्छी तरह !—प्रभावती इसबार हँस पड़ी और हँसतेहुए ही बोली—अच्छी तरह क्या कोई किसीको जान सकता है श्यामा ! मनुष्य का रूप तो सदा एक-जैसा रहता कहाँ है ? मनुष्य को पहचानना क्या इतना आसान है ?

दोनो अंतःपुर के उद्यान की ओर बढ चली ! प्रभावती उद्यान में बहुत कम ही जाती रही है ! इसलिए श्यामा को लगा कि उसकी रानीमाँ आज कुमुद के कारण सचमुच चंचल हो उठी है और अमल पर भी वह आस्था का स्थापन नहीं कर पा रहीं, यद्यपि श्यामा ने अमल के साथ

बातें की हैं और रानीमाँ से बातें करते हुए देखा है और उनकी शालीनता और सुशिक्षा के प्रति उसकी अपनी अच्छी धारणा बन चुकी है ? इसलिए श्यामा आश्चर्य में पड गई और बडे संयत रूप में बोली—क्या आप अमल के संबंध में कह रही हैं, रानीमाँ ?

प्रभावती प्रकृतिस्थ हो चुकी थी। इसलिए श्यामा की बात सुनकर वह खड़ी हो रही और श्यामा की ओर देखती हुई बोली—नहीं री श्यामा, मैं तो साधारण रूप में ही कह रही थी। अमल भी हो सकते है, साधारण नियम का अपवाद तो शायद ही कहीं दीख पडे! पर वह अपवाद भी नहीं हो सकते!

श्यामा की धारणा और भी दृढ़ हो चली कि कुमुद के कारण ही उसकी रानीमाँ इतनी चचल हो उठी है। पर उस चचलता को पाकर श्यामा भीतर से घबरा उठी! कुमुद ने महल में आकर रानीमाँ को कितना व्यस्त, कैसा चंचल और कैसा-कुछ बना दिया है—यह श्याम से छिपा नही है! श्यामा उसकी अंतरंग सेविका है और कभी-कभी उसकी सहेली भी होने का उसे सौभाग्य मिला है। वह अपनी रानीमाँ को निकट से जानती और पहचानती है। फिर भी उसे आज लग रहा है कि क्यों उसकी रानीमाँ इतनी व्यथित-शंकित हो उठीं! शंका का प्रश्न ही कहाँ है ? अमल तो मात्र शिक्षक है, शिक्षा ही देना उनका व्यवसाय है। वह कुमुद को यदि पढाना चाहते हैं और कुमुद उनसे पढने को उत्सुक है, तो वहाँ शंका या संशय का स्थान कहाँ ? श्यामा और कुछ न सोचकर सीधे इसी प्रश्न को उसके सामने रखतेहुए बोली—जब अपवाद भी वह नही है रानीमाँ, तब संशय करने का तो कोई स्थल नही दीखता! मालूम होता है, आप अमल के हाथ कुमुद को सौंपना नही चाहती, जब वह उस विद्यालय में पढ़ने को इतना उत्सुक है!

प्रभावती प्रसन्न हो उठी, बोली—हाँ, तुम्हारा कहना सच है श्यामा! मै यही सोच रही थी।

—पर क्या अमलजी पर आप विश्वास नहीं कर सकती, रानीमाँ?

—विश्वास!—प्रभावती ने श्यामा की ओर देखा, फिर वह बोली—विश्वास का प्रश्न नही है, श्यामा! अमलजी सुशिक्षित हैं, सुसभ्य है, कलाविद् हैं—इतना गुण-संपन्न व्यक्ति बहुत कम देखने में आता है। उनसे किसीकी हानि की शंका ही नही उठ सकती। इतने दयावान और इतने भावुक है कि वह अपने व्यक्तित्व को उत्सर्ग कर रहे हैं जनता-जनार्दन की सेवा में! उसपर मै अविश्वास करूँ, तो मै कितनी पातकी कहलाऊँगी श्यामा! संशय उनको लेकर नही है, संशय तो मेरे भीतर में ही घुसा पडा है!

—संशय!—श्यामा ने चकित होकर रानीमाँ की ओर देखा।

—हाँ, संशय—प्रभावती कहती चली—संशय की बात कह रही हूँ श्यामा! कमल की याद हो आती है और उसीके साथ संशय भी हो आता है। जानती हो, कमल की मृत्यु के पहले एकदिन इसी संशय से मै कितनी घबरा उठी थी, और आज वही सशय उस समय से उठ रहा है, जिस समय कुमुद मुझसे आज्ञा माँग रहा था। कुमुद कितना आज्ञाकारी हो उठा है श्यामा, तुम स्वयं जानती हो और यह भी जानती हो कि उसका मन पढ़ने में कितना लग चुका है! उसे आज्ञा देने को मुझे वाध्य होना पडा। उसे मै मूर्ख बना तो सकती नही, जबकि वह स्वयं पढ़ने को उत्सुक हो उठा है! किसीकी उत्कंठा को दमन करना नैतिक अपराध है, जब वह उत्कंठा किसी अच्छी दिशा में हो! कुमुद चला गया, पर उसी समय से रह-रहकर संशय उठ रहा है······

श्यामा चौक उठी। कमल की मृत्यु के पहले का संशय! तभी

श्यामा घबराकर बोली—क्यों न कुमुद को रोक दिया जाय रानीमाँ? जब मनमें सशय उठ खड़ा हो चुका है, तब रोकने के सिवा दूसरा चारा क्या है?

प्रभावती हँस पड़ी और हँसतेहुए ही बोली—तुम पागल हुई हो, श्यामा! मै रोक दूँ, कुमुद को? यह मुझसे कैसे हो सकता है?

—तो-तो, रानीमाँ!—श्यामा प्रभावती की ओर देखने लगी।

—नहीं, यह-सब कुछ नही है, श्यामा!—प्रभावती आश्वस्त होकर बोली—कुमुद पढ़े न और अमल से ही पढ़े न! अमलजी सौभाग्य से मिल गये है। मै उनकी भरपूर सहायता करूँगी—इतनी करूँगी, श्यामा, कि वह प्रसन्न होकर कुमुद को सारा ज्ञान उढेल देंगे—सारी विद्या उसे दे डालेंगे।

प्रभावती प्रसन्न-मुद्रा से उद्यान से महल की ओर चल पड़ी। श्यामा भी उसके साथ लौटी। प्रभावती अपने शयन-कक्ष में आकर लेट रही।

प्रभावती जब पलग से उठी, तब दिन ढल चुका था। उसने अपने मन को सब तरह से स्वस्थ अनुभव किया। उसके मनमें जो अवसाद पुँजीभूत हो उठा था, वह नीद के साथ ही मिट चुका था। वह उठकर सीधे स्नानागार में गई और जब नहा-धोकर उज्ज्वल धौत वस्त्र में बाहर आई, तब उसकी काति दमक उठी थी। उसके सटकारे लंबे केश उसके पृष्ठभाग पर छितराये पड़े थे। उसका शारीरिक सोंदर्य कुछ ऐसा अपूर्व हो उठा था कि जब वह आईने के सम्मुख आकर खड़ी हुई, तब वह अपने-अपनेको देखकर मानो देखती ही रही। उसे लगा कि सारा अंग-प्रत्यंग यौवन के वसंत से मुकलित हो उठा है, उसकी श्री-संपदा जैसे बता रही हो कि उससे अधिक सुन्दर और कुछ नही हो सकता। प्रभावती विमुग्ध नेत्रों से उस रूप-राशि को देखती रही। इसी समय दौड़ताहुआ कुमुद उसके पास आ पहुँचा, पर उसकी पगध्वनि भी उसके कानों सुनाई न पड़ी। जब कुमुद ने उसके

लटकते अंचल का छोर खीचतेहुए कहा कि मे आ गआ रानीमाँ, न आ गये। और मेरे साथ अमल'दा भी आये है, तव प्रभावती अपने-आप में चौक उठी और कुमुद की ओर कुतूहल-पूर्ण नेत्रों से देखती हुई बोली—ओह, तुम आ गये कुमुद !

—हाँ, मै आ गया रानीमाँ !—कुमुद ने दुहराया, फिर कहा—अमल'दा आये हैं। वह बाहर है, मिलने की आज्ञा चाहते है।

इसी समय पारो और श्यामा दोनों साथ-साथ वहाँ आ पहुँची। श्यामा ने आते ही कहा—दीवानजी ने कहला भेजा है कि अमलबावू आपसे मिलने को पधारे है, क्या आज्ञा है ?

प्रभावती ने श्यामा से उत्तर में कहा -जाओ, उन्हे लिवाकर मेरे आफिस-कमरे में बिठाओ। और, पारो, तुम कुमुद को मुँह-हाथ धुलवा कर इसके जलपान की व्यवस्था करो। और सुनो, चपी से कहना कि कुछ ताजे मिष्ठान्न और फल की व्यवस्था रहे।

श्यामा आगे बढ गई थी। उसके बाद पारो भी कुमुद को लेकर नीचे की ओर चल पड़ी।

उन-सब के चले जाने पर प्रभावती ने और कुछ नही किया, केवल केशों पर उल्टे-सीधे कघी चलाकर हलके हाथों से गर्दन तक लटकाये जूड़ा बाँधा, आधे सिर तक साड़ी रखकर अचल से शरीर ढँका और, ऊपर से रेशम की हलकी झोनी चादर रखी और आभिजात्य वंश की गंभीरता से पग भरतीहुई नीचे की ओर चल पडी।

अमल जब अंत पुर मे प्रवेश कर चुका था, तब प्रभावती सीढियों से उतरकर अपने कमरे की ओर बढ रही थी। अमल की दृष्टि अब तक उसकी ओर पड़ नही सकी थी; पर प्रभावती ने ज्योंही उसे आतेहुए देखा, त्योंही उसने दोनों हाथों को सिर से लगातेहुए कहा—

आइए अमलबाबू, मै तो सोच रही थी कि आप आ भी नहीं सकेंगे।

अमल ने बड़े विनम्रभाव से अभिवादन सूचित करतेहुए कहा—हाँ, आपका अनुमान गलत नहीं है। अक्सर बहुत कम ही बाहर निकलने का मौका मिलता है। पर आपकी आज्ञा थी, मै टालकर अपनी अशिष्टता प्रकट कैसे कर सकता था? कहिए, क्या आज्ञा है?

—आज्ञा!—प्रभावती ने शिष्टता-पूर्ण रीति से कहा—खडे-खडे तो बातें हो नही सकेंगी। आइए कमरे में . . .

और प्रभावती अपने कमरे में आई और सामने की कुर्सी की ओर संकेत करतेहुए बोली—विराजिए।

अमल अबतक खड़ा था, खड़ा ही रहा, बोला—यह कैसे हो सकता है, रानीसाहबा! आप खड़ी रहें और मै बैठूं?

—तो यह भी कैसे हो सकता है कि अपने घर आये अतिथि को खडे रखकर मै बैठ जाऊँ?

—आप तो आतिथेया ही नही हैं, स्वामिनी भी है। मै अतिथि होकर भी सेवक हूँ।

—सेवक!—इसबार प्रभावती के ओठों पर एक हलकी-सी हँसी खेल गई, बोली—सेवक तो मै मानती नही, और यदि मै कुछ क्षण के लिए ऐसा मान भी लूँ, तो क्या सेवक स्वामिनी का आज्ञा-पालन नही कर सकता है?

—आज्ञा कीजिए, देखिए, सेवक आज्ञा-पालन में सचेष्ट है या नहीं।

—रहने दीजिए आज्ञापालन की सचेष्टता!—प्रभावती ने शात भाव से कहा—आप तो सेवक है नही, अतिथि हैं। देखिए, मै आपकी बातों से जीत नही सकती। आप कृपाकर बैठ जाइए।

अमल के बैठ जाने पर प्रभावती भी अपने आसन पर बैठ गई। अमल ने तब पूछा—पत्र मे तो कुछ आपने लिखा था नही, केवल मुझे याद किया था, पर किसलिए आज्ञा हुई है, सो तो मै जान न सका। कहिए, क्या आज्ञा होती है?

—आज्ञा!—प्रभावती क्षणभर गंभीर होकर चुप रही, फिर धीरे से आँखें उठाकर उसी गंभीरता से कहा-पहली बात यह कि जमीन-बंदोवस्ती के संबध मे आखिर आपने क्या निर्णय किया है, मै जानना चाहती हूँ। और, मै यह भी जना देना चाहती हूँ कि यदि आपने अभी तक उस सम्बन्ध में कोई निर्णय या निश्चय नही किया है, तो शीघ्र किसी निश्चय पर आपको पहुँचना चाहिए।

प्रभावती ने बात खतम कर अमल की ओर देखा। उसे लगा कि अमल से इसतरह का सीधा प्रश्न करना शायद उचित नही हुआ। उसने अमल की ओर से दृष्टि हटाकर नीचे कर ली। उसी समय अमल ने बड़े शांत भाव से कहा—इस जिज्ञासा केलिए मै आपका अत्यंत अनुगृहीत हूँ। सुनसान-बयावान जंगल में आकर मैने धूनी रमाई है, पर अबतक किसीने आपके सिवा, न तो पूछना ही उचित समझा और न किसीने वहाँतक पधारने की कृपा ही की। ये दोनों बातें मैने आपमें ही पाई हैं। उसदिन जब आप अपनी कोठी में पधारी थीं, तब भी आपके मस्तिष्क मे यही प्रश्न रह-रहकर चक्कर काट रहा था—वह मैने आपकी भाव-भगिमा से जाना। आज वही प्रश्न आप फिर से मेरे सामने रख रही है। मै बड़े दरवार में अबतक जा नही सका हूँ। मेरा निश्चय अटल है! जब काम इतनी दूर तक अग्रसर हो चुका है, तब कुछ तो पक्का प्रबंध मुझे करना ही पड़ेगा। पर बड़े दरवार का रूख कुछ अच्छा दीख नहीं रहा है। यदि मैने ऐसा जाना होता, तो या तो मै इस स्थान को पसंद ही नहीं करता अथवा और कोई प्रबध किया होता।

—रूख अच्छा नही दीखता—प्रभावती ने संयत भाव से पूछा—क्या इसे आप खुलासा बतला सकेंगे ? देखिए, संकोच की बात नही! जो कुछ कहिए, निस्संकोच कहिए !

—मै निस्संकोच ही कहूँगा, रानीसाहबा—अमल ने अपनेको संभाला, फिर कहता चला—मेरे पास इतना द्रव्य अवश्य है कि मै बड़े दरवार की आज्ञा का अक्षर-अक्षर पालन कर सकता हूँ ! मै चाहता हूँ कि बदोबस्त की रश्म पूरी हो जाय·· ···

—फिर ! ···प्रभावती ने अमल की ओर ताका।

—फिर सोचता हूँ कि मेरी जो शिक्षा-संबंधी योजना है, या कहिए कि मेरा जो जीवन का स्वप्न है, उसे सार्थक करने की जो शक्ति अपेक्षित है, उसका मै अपने-आपमें अभाव पाता हूँ और वैसी दशा में मुझे लगता है कि मै इतनी माया पसारकर आखिर करूँगा क्या ? यही कारण है कि मै कुछ कर पा नही रहा हूँ !

—क्या मै उस योजना की रूप-रेखा को जान सकती हूँ ?

—क्यों नही—अमल प्रसन्न हो उठा, उसने अपनी जेब से एक भाज किया हुआ कागज निकाला और उसे पसारकर टेबिल पर रखते हुए कहा—सारी योजना इसीमें अकित है, आप देख लीजिए।

प्रभावती ने उसे उत्सुक होकर उठा लिया और गभीर भाव से उस पर दृष्टि फेरने लगी। अमल अपनी जगह से प्रभावती की ओर टकटकी बाँधे देखने लगा। अबतक उसने इतना गौर से प्रभावती को देखने का दुस्साहस नही किया था। नैष्ठिक और सदाचार-संपन्न व्यक्ति जितनी दूर तक किसी भद्रमहिला की ओर दृष्टि-निक्षेप कर सकता है—उसी सीमा तक वह देख सका था। पर प्रभावती के चढते-उतरते भावों की क्षण-क्षण परिवर्तित रेखाओं की ओर जब उसकी दृष्टि निबद्ध हुई,तब उसे लगा:कि जिस नारी के सम्मुख वह बैठा है, सो सामान्य नही ! उसमे कुछ

ऐसी वस्तु है जो दुर्लभ है, असामान्य है, जो केवल देखी जा सकती है, पर जिसे व्यक्त नही किया जा सकता।

प्रभावती ने बड़े मनोयोग के साथ उसे पढ़ डाला और बड़े उल्लास से मतव्य के रूप में व्यक्त करतेहुए कहा—आपके विचार बड़े उदात्त हैं अमलबावू! मैने अब समझा कि आपके हृदय में कितनी बडी आकाँक्षा छिपी पड़ी है!

—आकाँक्षा!—अमल में उल्लास भर आया, उसकी आँखें चमकने लगी, उसकी आकृति की रेखाएँ खिल उठी, ओठों पर मुसकान खेल गई और वह बोल उठा—आपने ठीक कहा, रानीसाहबा! मुझमें आकाँक्षा है, मैं अपनी उस आकाँक्षा को मूर्त्त रूप देना चाहता हूँ।

प्रभावती के मस्तिष्क मे अब भी अमल की सारी योजनाओं पर विचारों का संघर्ष चल रहा था। उनमे कुछ तो उसकी समझ में आया और कुछ अस्पष्ट-जैसा लगा। इसलिए वह बोल उठी–कला के साथ विज्ञान का, अर्थ शास्त्र के साथ दर्शन का और साहित्य के साथ गणित का सामंजस्य जिस तरह आपने अपनी योजना मे दिखलाया है और आपने विज्ञान और ललित कला पर जितना बल दिया है, मै यह समझ नही सकी कि ललितकला का जीवन मे इतना प्रयोजन और सार्थकता क्या है? दर्शन जीवन को विवेकशील बनाता है, पर वह भौतिक जगत के दैनन्दिन प्रयोजन को किस तरह पूर्ति कर सकेगा—यह समझ में न आया। आपने धार्मिक शिक्षा का अपनी योजना मे उल्लेख नही किया है, क्या ऐसी शिक्षा की आवश्यकता आपकी दृष्टि में आई नही?

अमलने प्रभावती की सारी बातें बड़े ध्यान से सुनी। प्रभावती ने जिन समस्याओं को उसके समक्ष रखा था, उनका खुलासा उसे करना ही चाहिए। इसलिए उसने बड़े संयत-विनम्र भाव से और स्पष्ट शब्दों में

कहा—मैंने ललितकला को निश्चय ही प्रमुखता दी है, वह इसलिए नहीं कि उसमें उच्छृंखलता की सृष्टि हो। कला हमारे जीवन को सुन्दर-सरस-मनोज्ञ ही नहीं बनाती, वह हमें सच्चिदानंद की ओर भी उन्मुख करती है। जब चित्रकार किसी कल्पना को मूर्त्त रूप देना चाहता है, तब उसे तादात्म्य हो जाना पड़ता है, उसकी दृष्टि जगत और जीवन के क्षितिज से वहाँ चली जाती है जहाँ कलाकार का अपना जगत है। शायद मैं ठीक-ठीक बता न सका, रानीसाहबा।

अमल चुप होकर प्रभावती की ओर देखने लगा। प्रभावती सिर झुकाये उसके प्रत्येक शब्द को हृदयंगम करती रही। उसने आँखें उठाकर अमल की ओर देखा। उसे अमल की आकृति में कलाकार की भावना स्पष्ट दीखती हुई जान पड़ी और उसने पाया कि अमल कितना मनोज्ञ कितना सुभग हो उठा है। उसने सिर झुका लिया और जरा मुस्कुराकर कहा—मैं इसे मानती हूँ।

—तब आपको यह भी मानना पड़ेगा—अमल ने उत्साह में भर कर कहा—दैनन्दिन प्रयोजन केलिए—आपका उद्देश्य यदि भौतिक प्रयोजन से हो तो—मैंने विज्ञान का सहारा लिया है। हम उस युग से गुजर रहे है, जिसे मोटे रूप में वैज्ञानिक युग ही कहा जा सकता है। आपको बताना नहीं होगा कि पाश्चात्य जगत ने जो इतनी उन्नति की है, वह विज्ञान के बल पर ही की है। मैं विज्ञान को इसीलिए अपनी योजना में प्रमुखता देना चाहता हूँ। दर्शन के विना मानव संस्कार-हीन हो उठेगा। भोग जीवन केलिए जितना अपेक्षित है, उतना ही अपेक्षित त्याग भी होना चाहिए। विज्ञान जहाँ भोग केलिए प्रेरित करेगा, वहाँ दर्शन त्याग केलिए अनुप्राणित भी करेगा।

—और धर्म?—प्रभावती ने संकेत किया।

अमल हँस पड़ा और हँसकर ही कहा—मेरी दृष्टि में धर्म का कोई

महत्त्व नहीं, रानीसाहबा! मैं किसी धर्म को नहीं मानता—न हिंदू, न मुस्लिम, न ईसाई–मैं कुछ भी नहीं हूँ। हाँ, मैं एक मानवधर्म मानता हूँ!

—मानवधर्म?—प्रभावती ने पूछा—मानवधर्म से आपका अभिप्राय क्या है?

—हाँ, मानवधर्म—अमल ने खुलासा किया—जो मनुष्य-मनुष्य को समान समझता है, जो राग-द्वेष का वर्जनकर एक दूसरे को वधु के रूप में समझता है, जिसकी दृष्टि में कोई घृणय नहीं, कोई त्याज्य नहीं! मजहब हमे संकीर्ण बनाता है, सीमित रखता है, इसलिए मैंने अपनी योजना से इसे अलग रखा है। क्या अबभी आपको कुछ शंका रह गई है, रानीसाहबा!

प्रभावती धर्म-कर्म को ही सब-कुछ समझती आ रही थी। वह हिंदू धर्म और संस्कृति में पली-बढ़ी थी और हिंदू-धर्म के आचार-विचार का विधिवत् पालन उसका अंग बन चुका था–स्थान-पूजा को कठिन-से-कठिन अवस्था में छोड़ नहीं सकी थी। वैधव्य जीवन के आचार का अक्षरश रूप में उसने पालन किया था। पर आज उसे लगा कि वे-सब मात्र ढोंग के सिवा और कुछ नहीं हैं। यह क्या सत्य है? धर्म को गहराई से समझने का उसने कभी चेष्टा तक नहीं की थी! उसने जो-कुछ किया था अथवा धर्म के नाम पर अबतक जो-कुछ करती आ रही थी, वह साधारण अवस्था में ही करती आ रही थी! उसकी दृष्टि में ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, धनी-निर्धन, आदि का मूल कारण उसके पूर्वजन्म का फलमात्र था, पर आज उसने जाना कि वह अबतक कितनी भूल में पड़ी थी! उसकी दृष्टि अबतक संकीर्ण सीमा में फँसी थी—ऐसा उसे अनुभव हुआ और उस अनुभूति के साथ उसे लगा कि वह जैसे विस्तीर्ण क्षेत्र मे पहुँच गई है, जहाँ सीमा दीख नहीं रही और न किसी प्रकार का बँधन है। उसने फिर से अमल की ओर दृष्टि डाली और उसकी आकृति में लगा

कि जैसे वह कितना महान् है, कितना उच्च है, कैसी उसकी निष्ठा है, कितना सहज सरल निश्छल उसका हृदय है! प्रभावती ने बड़े प्रसन्न भाव से उत्तर में कहा—कोई शंका नही है, अमलबाबू! पर, मैं सोच नहीं रही कि मै किसरूप से आपके काम आ सकती हूँ! मुझमें उतनी विद्या-बुद्धि तो है नहीं!

—विद्या-बुद्धि!—अमल जरा सतर्क होकर और स्पष्ट हृदय से कहता चला—कौन कहता है कि आपमें विद्या-बुद्धि नही है? यदि ऐसी बात होती तो आप मेरी योजना को हर्गिज पसंद नहीं कर सकतीं! और रही काम मे आपके आने की बात! उसके संबंध में निवेदन है कि मैं तो बुद्धिजीवी आदमी ठहरा, मैंने अर्थ-उपार्जन की ओर कभी ध्यान नहीं दिया! विद्या या ज्ञान मैं संचव केलिए किसतरह सात समुन्दर लाँघकर देश-विदेशों में घूमता-फिरतारहा—वह एक लंबी कहानी है। कभी आवश्यकता होगी तो उसे सुनाया जा सकता है। इसतरह जो-कुछ ज्ञान-संचय कर पाया है और उसे वितरणकर मानवता की जो सेवा इस योजना के रूप में चरितार्थ करने का विचार मैंने निश्चित किया है,उसका मूर्त्त रूप देने केलिए सबसे पहले अर्थ की परम आवश्यकता है! मेरे पास कुछ हैं अवश्य; पर उतना नहीं हैं कि जमीन को बंदोवस्त करने और कोठी को खरीद लेने के बाद उसे मै बचा सकूँ! वैज्ञानिक शिक्षा के विकास केलिए विद्युत-उत्पादन की आवश्यकता है, उसके सिवा छोटा-मोटा एक वर्कशॉप चाहिए। अभी तो प्रारंभिक रूप में यह विद्यालय चलेगा। अतएव उसी रूप में उसके सब-कुछ रहेगे······

अमल बोलकर कुछ क्षण चुप रहा, फिर बोला—देखिये, मैं आप पर अधिक भार लादना नहीं चाहता। द्रव्य यदि आपसे न भी मिले, तो उतनी चिंता की बात नही, वह मै भिक्षाटन से भी जुटाने की क्षमता रखता हूँ, पर आपकी सहानुभूति और शुभेच्छा की अपेक्षा तो रखता

ही हूँ ! आपसे यदि मुझे इतना ही मिलता रहे, तो मैं अपने स्वप्न को सार्थक कर लूँगा—इतना तो मैं ज़ोर डालकर कह ही सकता हूँ।

प्रभावती अमल की निश्छलता और स्पष्टवादिता से कही गई बातें सुनकर हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही बोली—आपकी बातें तो बड़ी अनोखी है अमलबाबू ! आपको क्या इतना विश्वास है कि मेरी शुभेच्छा और सहानुभूति से ही आपका स्वप्न सार्थक हो उठेगा ?

—अवश्य, क्यों नही !—अमलने उल्लास-भरे शब्दों में कहा—विश्वास नही रहता, तो मैं आपको हर्गिज कष्ट न देता !

अमल कुछ क्षण चुप रहा, फिर प्रभावती की ओर देखकर कहा—और मुझे तो आपको देखकर उस दिन विश्वास जमा, जब मैं आपके यहाँ से निराश होकर वापस लौटा था । मैं जानता था कि आपके हृदय में कोमलता के साथ-साथ जो मानवता छिपी पड़ी है, उससे यह कब संभव हो सकता था कि आप विद्यालय के प्रति उपेक्षा प्रदर्शित कर सकें । और मैंने ठीक ही पहचाना था । इसकेलिए मुझे अत्यधिक हर्ष है ।

प्रभावती ने सिर झुका लिया, जाने वह क्या सोचने लगी,··पर कुछ क्षण के बाद उसने धीमे अस्फुट स्वर में कहा—शायद पहचानने में भूल भी हो सकती है !

प्रभावती बोलकर भीतर-भीतर कुछ चंचल हो उठीं, पर उसीसमय श्यामा एक चमकती ट्रे पर जलपान की कुछ तश्तरियाँ और चाय का सामान लेकर आ पहुँची। प्रभावती केलिए श्यामा का इस रूप में आना अच्छा ही हुआ। श्यामा ने ट्रे को टेबिल पर रखा । उसने तश्तरियों को उठा-उठाकर अमल के सामने सजा दिया । प्रभावती ने हँसकर कहा—श्यामा, जलपान तो तुम ले आई; पर अमलबाबू ने तो अबतक अस्वीकार

करना ही जाना है!—फिर अमल की ओर देखकर बोली—क्यों अमल बाबू, मैं ठीक कह रही हूँ न!

—शायद आप सच कह रही है—अमल ने भी हँसकर ही जवाब दिया—पर आज आप प्रसन्न है, और मै जानता हूँ कि इतना सामान आपके संकेत से ही आया है! दूसरी बात यह भी है कि मेरे भोजन का भी यही ठीक समय है और मै भूख का भी अनुभव कर रहा था! कहकर अमल ने तश्तरियों की ओर गहरी दृष्टि डाली; फिर वह बड़े चंचल होकर बोल उठा—देखिए रानीसाहबा, मै गरिष्ट भोजन रात को नहीं लेता। यदि आप मुझे अपने नियम से व्यतिरेक न करना चाहे, तो मुझे अपनी इच्छा के अनुसार हलका भोजन ही लेने दीजिए।

—अवश्य, मै भी यही चाहूँगी—प्रभावती ने मुस्कुराते हुए कहा—आप निश्चय समझिए कि इनमें कोई भी गरिष्ट नही है। ये सब फल और दूध से तैयार हुए हैं, कुछ शाक और सब्जियों के विभिन्न रूप है। आप स्वतंत्र है, जो रुचे, जितना रुचे, उसे अंगीकार कीजिए।

अमल खाने लगा और बडी रुचि से खाता चला! प्रभावती ने उस अवसर पर कुमुद का प्रसंग छेड़ा और उसी प्रसंग में वह यह भी कह गई कि कुमुद उसे सबसे बडा जादूगर समझता है और उस जादूगर के पास जाने को वह कितना आतुर रहता है।

और अमल भी कुमुद को जितना जान सका है और उसके संबंध में जैसी उसकी धारणा बँध सकती है, उसे वह व्यक्त करतेहुए, अंत में यह भी कह देता है कि उनदोनों (अमल और प्रभावती) को एक दिशा में लगाने का मूलकारण कुमुद से भिन्न और दूसरा नही हो सकता।

और जब जलपान-ग्रहण कर अंत में पान के बीड़े भी अमल

लेने से अस्वीकार न कर सका, तब वह बोला—मैं आपका अतिशय अनुगृहीत हुआ कि आज की संध्या बड़े आनद से कटी, पर मुझे पहुँचना ही चाहिए, मैं आदेश चाहता हूँ।

और अमल उठ खड़ा हुआ। प्रभावती भी उठ खड़ी हुई, बोली—प्रयत्न करूँगी कि मैं यथासंभव कुछ अपनी सेवा समर्पित कर सकूँ। पर निश्चय पूर्वक अभी कुछ नही बता सकती कि वह सेवा किस रूप में हो सकेगी!

—जिस रूप में भी हो—अमल प्रसन्न होकर बोल उठा—वही यथेष्ट होगा रानीसाहबा! मैं केवल आपको चाहता हूँ-केवल आपको ही चाहता हूँ, विद्यालय आपसे सनाथ होगा, मेरा स्वप्न सार्थक होगा, आप धन्य होंगी!

दोनों कमरे से बाहर निकले। अमल ने अभिवादन सूचित किया; तभी प्रभावती बोल उठी--जरा ठहरिये अमलबाबू, आपकेलिए सवारी का प्रबंध किये देती हूँ। और वह पारो को पुकारने लगी।

—सवारी मुझे नहीं चाहिए—अमल ने बड़े प्रसन्न भाव से कहा-नही, नही, मै योंही चाँदनी रात का आनंद लेता हुआ पैदल चल चलूँगा! चाँदनी रात योंही मुझे बड़ी भली लगती है! प्रकृति के साथ जितना एकाकार हो सके, उतना ही उत्तम! शायद आप जानती होंगी कि कलाकार कुछ अजीब टाइप के जीव हुआ करते हैं!

—हाँ, इतना तो मैं ही नही, आपका कुमुद भी जानता है—प्रभावती ने मुस्कुराते हुए कहा।

—हाँ, तभी तो कुमुद मुझे जादूगर समझता है; पर आप तो मुझे वैसा नहीं समझतीं?

—शायद!

प्रभावती हँस पड़ी और अमल भी अपनी हँसी नी रोक सका। और उसी हँसी के बीच प्रभावती से विदा-ग्रहणकर वह चलता बना।

२३

प्रभावती ने कई दिनों तक गंभीरता पूर्वक सोचकर अंत में यही निश्चय किया कि विद्यालय को निरापद भाव से चलने केलिए यह आवश्यक होगा कि वह एक स्वतंत्र संस्था के रूप में खड़ा हो, उसका अपना भवन हो, अपनी जमीन हो, और लोभी और निरंकुश जमीन्दार का उसपर कोई स्वत्त्व न रह जाय। इसकेलिए जो प्रबन्ध और धन की आवश्यकता पड़े, उनदोनों से अमल को मुक्त कर दिया जाय। इसके लिए अनुभवी दीवानजी से परामर्श लेने की उसे आवश्यकता महसूस हुई और इसी उद्देश्य से उसने दीवानजी को समाचार भिजवाया।

और दीवानजी के आने पर प्रभावती ने विद्यालय की सारी स्थिति और अपना विचार उसके सामने व्यक्त करते हुए पूछा—क्या अब भी बड़े दरबार से आपत्ति का प्रश्न उठेगा ?

दीवानजी के सामने बड़े दरबार को रुपयों की कितनी जरूरत रहा करती है और उन रुपयों केलिए वहाँ कैसे-कैसे हथकंडे चला करते है—वे सब बातें प्रत्यक्ष हो उठीं। इसलिए उन्होंने गंभीर भाव से

कहा—आपत्ति का प्रश्न ही अब कहाँ रह गया रानीमाँ, जब आप अपनी तरफ से रुपया चुकाना चाहती है। आखिर, अपना भी तो आधा हिस्सा है ही। यदि चाहे तो अपनी ओर से ही, अपने नाम वह कोठी खरीदी जा सकती है और जमीन का बंदोबस्त किया जा सकता है।

—नहीं-नही—प्रभावती ने असमंजस मे पड़कर कहा—दर्खास्त अमलबाबू की ओर से दी गई है, उनके नाम से ही यह काम होना चाहिए। अपने नाम से ऐसा करना अब न तो न्यायसगत होगा और न उचित ही समझा जायगा।

—जब विद्यालय ही बनेगा तब तो यह भी उचित और न्यायसंगत होगा कि वह संपत्ति किसी खास व्यक्ति के नाम से न तो ली जाय। व्यक्ति को आगे चलकर प्रलोभन भी हो सकता है।

—पर, अमल ······

—अमल में भी हो सकता है, रानीमाँ। —दीवानजी गंभीर होकर बोले—संपत्ति किसके मन में भ्रम नही पैदा करती। सभी तो प्रभावती-जैसे नही हो सकते। अपने बड़े दरबार को ही देख लीजिए न।

प्रभावती ने सिर झुका लिया। उसे अपनी प्रशंसा और अमल में आगे चलकर संपत्ति के संबंध मे मोह उठने की बात यद्यपि प्रिय नही जँची, तथापि उसे लगा कि दीवानजी ने जो-कुछ व्यक्त किया है, वह अपने अनुभव के आधार पर ही व्यक्त किया है। उसने मन-ही-मन विश्लेषण करके देखा कि वह किसके प्रति रुपये अपनी ओर से लगाकर कोठी और जमीन को हस्तगत करना चाहती है—वह अमल है या अमल की संस्था है?

प्रभावती ने अबतक इस प्रश्न को इतनी गहराई से सोचा नहीं था। उसे अब दो वस्तुएँ विभिन्न रूप में दीख पड़ीं। अमल और अमल की

संस्था! संस्था कोई भी स्थापित कर सकता है! अमल तो अनादि से अनंत तक रह नही सकता, संस्था रह सकती है, उसका विकास या संकोच हो सकता है! वह बढ़ सकती है और टूट भी सकती है! प्रभावती आगे सोच न सकी। उसके सामने एक दूसरी समस्या उठ खडी हुई। इसीलिए वह बोल उठी—तो क्या संस्था के नाम से जमीन-बंदोबस्त करना ठीक होगा, दीवानजी? आप क्या यही कहना चाहते है?

—हाँ, आपने ठीक ही पकड़ा—दीवानजी बोले—अमल के नाम से लेने का अर्थ होगा-अमल को दान करना! आप तो अमल को कुछ दान नही कर रही है और न अमल ही चाहेगा कि वह आपका दान स्वीकार करे! आप विद्यालय चाहती है, विद्यालय के प्रति आपके हृदय में जो भाव उदित हुआ है, आप उसी भाव को चरितार्थ करना चाहती है। मै समझता हूँ—यही ठीक होगा।

—क्या ठीक होगा?

दीवानजी इस प्रश्न केलिए तैयार न थे। उन्हे भीतर से कुछ अच्छा न लगा। पर जब प्रभावती की ओर उन्होंने दृष्टि डाली, तब उन्हे लगा कि प्रभावती ने जैसे ठीक से उनकी बात समझी नहीं, शायद वे अन्यमनस्क हो उठी हों। इसलिए उन्होंने खुलासा करने के विचार से कहना शुरू किया। उन्होंने कहा—ठीक तो मै यही समझता हूँ कि संस्था के नाम से ही सब-कुछ किया जाय। इसमें कोई झंझट नही होगा और न बडे दरबार को कुछ आपत्ति उठाने का प्रश्न सामने आयगा।

प्रभावती अबतक गभीर बनी बैठी थी, उसने भी सोचकर जो-कुछ निश्चय किया, उसे व्यक्त करतेहुए उसने कहा—आप ठीक कह रहे हैं, दीवानजी! मै अब समझ गई कि संस्था की ओर से, आपके कहे अनुसार, सब-कुछ करना ही ठीक होगा। पर सारा भार आपको ही उठाना होगा,

और इन कामों में जो भी खर्च होगा, वह जमींदारी के पैसे से नही, मेरे निजी धन से होगा। आप मुझसे रुपये लेकर इन कामो को पूरा कर दीजिए.......

प्रभावती दीवानजी को आगे कहने का भी अवसर न देकर वहाँ से उठ खड़ी हुई और अपने सोने के कमरे में आकर उसने अपनी तिजोरी खोली! कुमुद जाने किधर से वहाँ आ पहुँचा, पर उसे लगा कि शायद उसका आना उचित नही हुआ। इसलिए वह तुरंत लौटना ही चाहता था कि प्रभावती को लगा जैसे कोई उसके पीछे आकर खड़ा है। उसने सिर घुमाकर देखा और कुमुद को लौटतेहुए देखकर वहींसे बोल उठी-लौटे क्यों जा रहे हो, कुमुद? यहाँ आओ, मेरेपास आओ।

कुमुद रुक गया, थोड़ी देर खड़ा हो रहा, फिर वह आगे बढ़ा और तिजोरी के भीतर नोटों और सोने-चाँदी के अनगिनत सिक्कों की ओर कुतूहल से देखता रहा। तभी प्रभावती बोली—जानते हो कुमुद, ये-सब तुम्हारे हैं, तुम्हारेलिए है।

—मेरेलिए है, मेरे हैं!—आश्चर्य से कुमुद ने हकलाते हुए कहा। लगा जैसे वहाँ कोई अनहोनी घटना घट गई हो, जिसकेलिए वह तैयार नही था। इसलिए वह बोल उठा—नहीं-नहीं, रानीमाँ, यह झूठ है, यह-सब मेरे नहीं हैं, मेरेलिए नहीं है। ये तो तुम्हारे हैं, रानीमाँ,तुम्हारेलिए हैं! मै तो तुम्हे चाहता हूँ, रानीमाँ! तुम्हे चाहता हूँ और तो कुछ नहीं चाहता!

प्रभावती ने उसके सिर पर हाथ फेरतेहुए उसके ललाट को चूमा और वह बड़े स्नेह-गद्‌गद् स्वर में बोली—मै भी तुम्हारी हूँ और यह धन भी तुम्हारा है, पर तुम रानीमाँ क्यो कहते हो कुमुद! एकबार मुझे सिर्फ माँ कहो—सिर्फ माँ!

कुमुद की आँखोंमें माँ शब्द की ध्वनि से एक धुँधला-सा चित्र उतर तो आया, जिसे प्रभावती ने लक्ष्य भी किया, पर कुमुद के ओठ तक न हिले

बल्कि प्रभावती को लगा कि उसके ओठों की लाली मिटती जा रही है और वे नीले होते जा रहे हैं। पर उसकी आँखों में उभरी हुई स्नेह-पुलक से ही:प्रभावती मुग्ध हो उठी और उसी मुग्धता में बोल उठी—मैं समझ गई कुमुद, सब-कुछ समझ गई। देखो, मैं तुम्हारे विद्यालय केलिए आज अपनी ओर से यह धन लगाने जा रही हूँ।

प्रभावती ने नोटों का एक बण्डल उठाया, फिर तिजारी लगाई और उठकर खड़ी होतेहुए कहा—क्या तुम कुछ कहना चाहते थे कुमुद?

—मैं विद्यालय में ही रहा करता तो अच्छा होता! सभी लड़के तो वहीं रहा करते है, रानीमाँ! मै आपकी आज्ञा चाहता हूँ।

—आज्ञा!—प्रभावती ने हँसकर कहा—आज्ञा के विना क्या तुम अपने मतलब से कुछ न करोगे कुमुद? आखिर तुम्हारा अपना कुछ विचार भी होगा? जैसा चाहोगे, मै वैसा ही करूँगी कुमुद! मै तो केवल तुम्हारा विचार जानना चाहती हूँ। बोलो, तुम चाहते हो क्या?

—अपना विचार!—कुमुद ने सुधाई से कहा—पर मैं आपको दुखी कैसे कर सकता हूँ, रानीमाँ! जानता हूँ, मेरे विना आपको कितना दुख होता है।

प्रभावती सहसा कुछ कह न सकी। वह कुमुद की ओर अपलक निहारती रही। यह उसकी श्रद्धा है या स्नेह?—प्रभावती तुरत कुछ निश्चित नही कर सकी, पर उसे लगा कि तुरत उसे दीवानजी के पास पहुँचना ही चाहिए, उन्हें कुछकह कर :ता आई नही! इसलिए वह बोल उठी—अच्छा, कुमुद, मै पीछे सुनूँगी, अभी मुझे जाने दो।

कुमुद को उसके भीतर को चंचलत का अनुभवा हुआ, पर उसे वह स्वाभाविक ही जँचा। वह जानता है कि काम के समय उसकी रानीमाँ रुकी नही रहती और जिस काम को वह उठाती है, उसे पूरा किये

बिना वह दम नही लेतीं। कुमुद अपने कमरे की ओर बढ़ा और प्रभावती अपने आफिस-कमरे की ओर चली गई।

प्रभावती ने नोटों का बण्डल दीवानजी के सामने रखते हुए कहा—संभाल लीजिए दीवानजी, आपपर ही सारा भार रहा। रुपये-जमाकर कागज का निकास हो जाना चाहिए!

—आप निश्चिन्त रहे, रानीमाँ!—दीवानजी ने नोटो का बण्डल ज्यों-का-त्यों उठाकर जेब मे रखा, फिर जरा गंभीर होकर बोले—निजी पैसे लगाने की तो मै आवश्यकता नही समझता; आप तो सर्वसाधारण जनता केलिए ही खर्च करने जा रही है। यह तो जमीदारी की अपनी चालू आय से ही होना चाहिए।

—होने दीजिए, जैसा होने जा रहा है—प्रभावती ने संयत भाव से कहा—मै तो अपना-पराया कुछ जानती नही!. जो पैसे आज मेरे पास है, वे भी तो उन्हीके घर से आये है, दीवानजी! फिर दोनो मे अन्तर ही क्या है?

अंतर प्रभावती के सामने न हो, पर दीवानजी उस अंतर का समझते है, उन्हे अंतर का पता है, पर उन्हे यह भी पता है कि प्रभावती के सामने और किसी प्रश्न को उठाया नही जा सकता है! जिसमे निज-पर का भाव है ही नही, उसे कैसे समझाया जाय कि अंतर कहाँ है और वह क्या है!

दीवानजी कुछ बोले नहीं, उठकर खड़े रहे, पर प्रभावती की दृष्टि से वह छिपा न रहा कि दीवानजी की आँखें छलछला उठी है और उन छलछलाई आँखों मे (प्रभावती के प्रति) उनका वात्सल्य मानो थिरक उठा है!

दीवानजी को विदा लेने के बाद प्रभावती को लगा, जैसे उसके सिर

से एक बडे चट्टान का बोझ उतर गया हो। उसने आराम से दोनों बाँहे फैला दी और अपनी पीठ कुर्सी के पिछले गद्दे वाले भाग पर टिकाकर ऊपर की ओर कुछ क्षण तक देखते हुए उसने अपने अंग-प्रत्यगों में एक पुलक का अनुभव किया। पर इस अवस्था में वह रह नहीं सकी। उसे रह-रहकर कुछ ऐसा भान होने लगा कि कोई अड़चन उठ खड़ी हो सकती है, जब बडे दरबार का रुख उसके प्रति अच्छा नहीं रहा है। वह सदा से जानती आई है कि जिस बात का अनुमोदन वह जब-कभी कर सकी है, तब उसने पाया है कि उसका विरोध बड़े दरबार से निश्चय ही हुआ है। और, जब उन्हे यह पता चलेगा कि छोटे दरबार से, आगे बढ़ कर, यह बात क्यों चलाई जा रही है, तब वे-सब निश्चय ही कोई अड़चन उपस्थित किये विना रह न सकेंगे। प्रभावती ऐसा सोचकर चिंतित हो उठी और उसी चिंता को लेकर वह अपने शयनागार की ओर चल पडी।

पर शयनागार तक प्रभावती पहुँच नहीं सकी। तभी जाने मंजु कहाँ से दौड़ती हुई आकर, कागज का एक टुकडा अपनी माँ की ओर बढ़ाती हुई, अनुनय के स्वर में बोली—कुमुद तो अब चित्र भी बनाने लगा है माँ, तुम देखो न, उसने यह चित्र बनाया है और वह कहता है कि यह चित्र मेरा ही बनाया है।

प्रभावती ने उल्लास से उस कागज को लिया और उलट-पलट कर, उसने कुछ टेढ़ी-मेढी रेखाओं में अंकित एक मुखाकृति देखी। वह ऐसी न थी कि उसकी प्रशंसा की जाय; पर नये शिक्षार्थी बालक के हाथ की सुघड़ता का परिचय उसे उससे अवश्य मिला और यह भी उसे देखकर अनुभव हुआ कि उस शिक्षार्थी में सहज सरल अवयव-संबंधी बोध तो अवश्य है, जिससे आकृति में रूप देना संभव हुआ। पर वह आकृति मंजु की ही होगी—ऐसा खयाल कर उसने फिर से उस आकृति पर दृष्टि डाली और उसे पता चला कि वह किसी सुन्दर सुकुमार बालिका की

मुखाकृति हो सकती है; पर मंजु का वह निश्चय ही नही हो सकती। उसने मंजु की ओर देखा, वह हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही उसने कहा—अभी तो कुमुद मात्र अभ्यास का खेल खेल रहा है मंजु! ऐसा तो तुम भी बना सकती हो।

—मैं भी बना सकती हूँ! क्या तुम सच-सच कह रही हो, माँ?—मंजु आनंद से थिरक उठी और फिर से बोली—कुमुद भी ठीक यही कह रहा है, माँ! उसने कहा है कि वह मुझे चित्र बनाना सिखलायगा! और, सिखाने केलिए उसने आड़ी-सीधी रेखाएँ खीचकर बतलाईं, पर मै वैसी रेखा खीच नहीं सकती! मै क्या सीख नही सकूँगी माँ?

—क्यों नहीं, क्यो नहीं?—प्रभावती ने आश्वासन के स्वर में कहा—तुम भी सीख सकती हो मंजु! कुमुद तुम्हें बतायगा। उसे जरा जमकर सीखने दो मंजु, वह तुम्हे कितना मानता है!

मजु प्रसन्न हो उठी। वह जानती है कि कुमुद उसे बहन समझता है और भाई का सारा प्यार वह बहन को देना चाहता है। यद्यपि मंजु संपूर्णतः अपना स्नेह उसे दे नहीं पाती, तथापि कुमुद अपनी ओर से उसके मन की संकीर्णता की ओर ध्यान नही देता और उसे प्रसन्न करने का ही वह सदा प्रयत्न करता रहता है। ऐसा सोच कर ही, माँ के स्वर में स्वर मिलाकर, उसने अनुमोदन किया, कहा—हाँ, सच कहती हो, माँ, कुमुद मुझे खूब मानता है और तभी वह कहता है कि यदि रानीमाँ ने उसे विद्यालय में ही रहने की आज्ञा दे दी, तो उसे सबसे अधिक कष्ट यह होगा कि वह मजु से मिल नही सकेगा! ठीक कहता है कुमुद, मै भी समझती हूँ कि उसे मेरे विना बड़ा कष्ट होगा! माँ, क्या उसे वहाँ रहने की तुम आज्ञा देना चाहती हो?

मंजु की सहज-सरल बातें सुनकर प्रभावती खिन्न हो उठी। उसे लगा कि कुमुद के विछोह को वह सह न सकेगी! जिस कुमुद को इतने

दिनो से आँखों-आँखों में वह रखती आई है, उसे अपनी आँखों से ओझल करने की वह कल्पना तक नही कर सकती, पर यदि उसे आँखों से ओझल करने का प्रसंग आ ही जाय तो? तो? प्रभावती विक्षिप्त की तरह बोल उठी—ऐसा नही होगा, मंजु, कुमुद वहाँ नही रहेगा···मैं ऐसी कठोर नही कि उसे ऐसी आज्ञा दूँ! क्या तुम सोचती हो कि मैं ऐसी आज्ञा दे सकती हूँ?

—नही माँ, ऐसी आज्ञा तुम स्वयं ही नही दे सकती—मंजु खुश होकर बोली—जाकर कुमुद से मैं कहे देती हूँ।

—कुमुद से कहे देती हूँ—सुनकर और मंजु को वहाँ से चले जाते हुए देखकर प्रभावती भीतर से चंचल हो उठी, उसका हृदय व्यथा-से भर उठा। प्रभावती ने जोर से पुकारा—मंजु, रो ओ मंजु!

—क्या कहती हो माँ!—मंजु वहीसे बोलकर लौटने लगी। जब मंजु पास आई, तब उसे और भी अपनी ओर खीचकर बाहों से लपेटती हुई हँसकर प्रभावती ने कहा—मंजु, एक बात कहूँ, सुनोगी?

—सुनाओ माँ, वह कौनसी बात है!—मंजु ने आशा के उल्लास से अपनी माँ की ओर निहारा।

—कुमुद से जो-कुछ तुम कहने जा रही थी—प्रभावतीने रुक-रुककर, जैसे उसे स्वयं कहने में द्विधा का बोध हो रहा हो, कहा—शायद वैसा कहना उचित नही होगा। उसे, शायद, तुम भी जानती होगी—कि सीखने-पढने का धुन लग चुका है और जिसपर ऐसा धुन सवार हो जाता है, उसे रोकना मानो उसके मन को कष्ट पहुँचाना समझा जायगा। मै नहीं चाहती कि किसीके मन को कष्ट पहुँचाऊँ। मैं समझती हूँ कि तुम भी किसीको कष्ट नही देना चाहोगी!

मंजु सहसा कुछ बोल न सकी। पर उसके अंतर में जैसे कुछ लग रहा था कि किसीको किसी बात से कष्ट पहुँचाना क्या उससे संभव हो

सकेगा ! और कुछ क्षण रुककर मंजु खिन्न होकर बोल उठी—नही-नही, माँ, मै तो कष्ट देने का विचार भी नही रखती, पर क्या कुमुद को कष्ट होगा, माँ !

—कष्ट क्यो नही होगा ?—प्रभावती ने इसबार कुछ स्पष्ट भाव से कहा —वह पढना चाहता है, सब-कुछ सीखना चाहता है और उसको सिखाने-पढानेवाला जब ऐसा व्यक्ति मिल गया है, जो उसे प्यार के साथ बढावा भी देता है, उसे उत्साहित भी करता है, तब क्या उसे रोक रखना अपने घृणित स्वार्थ का परिचायक न होगा, मंजु ? तुम क्यों रोकना चाहती हो ? मै क्यों रोकना चाहती हूँ ? इसीलिए न कि उसे देखकर, उसकी बातें सुनकर हमे सुख मिलता है, पर अपने सुख की ओर देखना ही तो स्वार्थ होगा मंजु, जबकि उस स्वार्थ से उसकी उन्नति की गति रुक जाती हो ! और कुमुद तो सदा केलिए वहाँ जा नही रहा है ! विद्यालय का नियम है कि उसके लड़के वही रहेगे, फिर अवकाश भी तो उन्हे दिया ह जाता है । जब जिसे जरूरत पड़ती है तब उसे अनायास छुट्टी मिल जाती है ! कुमुद को भी छुट्टी मिलेगी, वह भी आया करेगा ! फिर उसे रोका ही क्यों जाय ?

प्रभावती चुप होकर मजु की ओर देखने लगी। मंजु सिर झुकाए मानो अपनी माँ के विचारों को समझने मे लगी हो—प्रभावती को ऐसा जान पड़ा। मंजु ने एक बार अपने सिर को ऊपर उठाकर देखा। उनदोनो की आँखें आपस में टकराईं। मंजु चंचल हो उठी और उसी चंचलता के बीच वह बोल उठी—ठीक कहती हो माँ, कुमुद को रोका क्यों जाय ! नही, उसे वही रहना ठीक होगा। वही उसे रहना चाहिए, जबकि सभी पढनेवाले लड़के वहीं रहा करते है ! पर मैं ही उसे यह समाचार सुनाना चाहती हूँ ! वह कितना खुश होगा, माँ ? क्या तुम मुझे ऐसा करने का आदेश दोगी ?

प्रभावती ने प्रसन्न होकर कहा—हाँ, क्यों नहीं, क्यों नहीं मंजु ! तुम्हें आदेश देती हूँ, तुम उसे, जाकर, सुना सकती हो।

मंजु उल्लास में भर उठी। अब उसे क्षणमात्र केलिए रुकना भारी हो उठा। वह दौड़ पड़ी कुमुद के कमरे की ओर !

प्रभावती, जबतक मंजु उसकी आँखों से ओझल न हो गई, उस ओर देखती रही। फिर उसने एक दीर्घ निश्वास छोड़ी, फिर अपने शयन कक्ष में आकर पलंग पर लेट गई।

प्रभावती के अंतर की व्यथा इतनी तीव्र हो उठी कि वह जैसे अपने को संयत करने में असमर्थ हो रही हो। जिस कुमुद को वह पहले रोकना चाहती थी, उसीको विद्यालय में रहने का आदेश मंजु द्वारा भेजकर उसे लगा कि जैसे वह जीवन की बाजी हार चुकी हो, वह पराभूत हो चुकी है और उसकी पराजय, केवल उसकी पराजय नहीं—नारीजाति की पराजय है ! प्रभावती के सामने कुमुद का अबतक का जीवन मूर्त्त हो उठा और उस मूर्त्त जीवन की कुछ घटनाएँ जब कमल की स्मृति को पूर्ण रूप से सजग कर गईं, तब उसका हृदय उच्छ्वसित हो उठा। उसकी आँखों से घुमड़-घुमड़कर टपाटप आँसू झरने लगे ! उसकी व्याकुलता, उसकी अंतर्व्यथा की आज जैसे कोई सीमा न रह गई ! पर वह कहाँ जाय, क्या करे, किस तरह वह अपनी मनोवेदना का शमन कर सकेगी—उसे कुछ भी समझ न आया। वह उसी रूप में, उसकी अवस्था में, आँसू बहाती चली !

पर उसके आँसू सहसा रुक गये, जब कुमुद अपने कमरे से मंजु को जोर देकर, एक तरह खींचते हुए ही, रानीमाँ के कक्ष में लाकर आनंद के उल्लास में बोल उठा—क्या सचमुच मुझे आज्ञा दे रही हो, रानीमाँ, सचमुच ‥ ‥

कुमुद ने प्रभावती की ओर दृष्टि डाली, पर वह अपनी बात को भी पूरी न कर सका, रुक गया और उसकी ओर ताकता ही रहा। मंजु की

दृष्टि भी अपनी माँ की ओर लगी थी। उसे लगा कि जाने यहाँ कोई बात हो गई हो! इसलिए वह बोले बिना न रह सकी, उसने कहा—यह क्या, माँ, तुम रो रही हो?

प्रभावती ने बड़ी क्षिप्रता से आँखों के आँसू आँखों मे ही बलपूर्वक रोक कर दोनों को दोनों बाँहुओं से लपेटते हुए कहा--नही, नहीं, मंजु! मै क्यों रोऊँ?

प्रभावती खिलखिलाकर हँस पड़ी और उठकर दोनो को दोनों बाँहुओं में भरती हुई बोली—चलो मंजु, चलो कुमुद, हमलोग मंदिर चलें! बहुत दिनों से गान नहीं सुना है। अब तो मंजु तुम भी अच्छा गा लेती हो, चलकर सुनाओ!

मंजु और कुमुद-दोनो गाने के नाम से प्रसन्न हो उठे और उसी प्रसन्नता में सब-के-सब चल पड़े।

२४

जीवन में कुछ घटना ऐसी अप्रत्याशित रूप में घट जाती है, जिसकी पहले से कुछ कल्पना भी नहीं की जा सकती, और उस घटना के घट जाने के बाद लगता है कि उसका घटना बिलकुल स्वाभाविक था—शायद उचित भी था।

अमल को भी ऐसा ही लगा। अमल इतनी दूर तक कभी तैयार न था कि उसके जीवन में कोई बाहर से आकर उसके विचार को उत्तेजित और उसके मन को उद्वेलित कर डालेगा। उसने अवश्य देश-विदेशों का चक्कर लगाकर ज्ञानार्जन के साथ-साथ जिस सुकुमार स्वप्न को चरितार्थ करने की कल्पना अपने अंतर में संजोई थी और जिसे साकार रूप देने केलिए नील-कोठी-जैसा निभृत एकातशात-स्वप्निल बियावान स्थान को चुना था। उसदिन भी उसने इतनी दूर तक कभी नही सोचा था कि अनायास अयाचित रूप में ऐसी कोई शक्ति उसे उस दिशा में, बाहर से आकर, उत्प्रेरित करेगी, जो उसकेलिए अपेक्षित हो, जो उसकेलिए अनिवार्य हो उठे और जिसका न होना शायद उसके जीवन केलिए, जीवन के विकास केलिए एक बड़ा अभाव होता!

और उस अभाव की पूर्त्ति जिस अभावनीय ढंग से उसे होती दीख पड़ी, उसका आभास भी पहले से नहीं था। जिसदिन जमीन के संबंध में बड़े दरबार के जमींदार ने बेरुखी के साथ लेन-देन की बातें चली थी, उसदिन उसका मन बडा खट्टा हो चला था। उसदिन उसके भीतर का कलाकार पुरुष ने जाना कि संसार की वस्तुस्थिति कितनी फेनिल है, कितनी हृदय-हीन, जहाँ द्रव्य का मूल्य मनुष्य के मूल्य से बहुत अधिक है, जहाँ द्रव्य ही देवता है, मनुष्य नगण्य! और ऐसी हृदयहीनता के बीच से गुजरकर जब उसे दूसरे दरबार के लिए कदम उठाना पडा, तब उसे स्त्री-दरबार की कल्पना से, और उस नारी के सबंध में उसे जो सुनी-सुनाई बातें कुछ मालूम हो सकी थी और उन बातों से जो उसकी धारणा बंध सकी थी, उससे भी जो थोड़ी-बहुत आशा बॅध पाई, वह मात्र इतनी थी कि वहाँ उसे कम-से-कम न्याय्य मिलेगा, कुछ उसके प्राणों में राहत मिलेगी। पर पहली भेंट में उस नारी-मूर्त्ति में बैठे शासन करनेवाले जिस जमींदार को उसने देखा, और उसकी दो-टूक बातो से उसकी आशा को जो धक्का लगा, वह कुछ सामान्य न था, उसे निराश लौटना पडा। वह यदि मनस्वी न होता, तो उसीदिन कोठी को छोड़ अन्यत्र कहीं चला जाता। पर उसने ऐसा नहीं किया। उसे अवश्य उस स्थान से मोह हो गया था। निभृत स्वप्निल वातावरण उसके मन के अनुकूल था, और नील की कोठी-जैसा उपयुक्त स्थान शायद उसे ढूँढे भी मिलना कुछ असंभव जैसा प्रतीत हुआ था। फलत: उसने अपने मन में निश्चय किया कि जो थोडी-बहुत पूँजी उसके पास है, उसीसे कुछ जमीन के साथ नीलकोठी का मकान लीज पर लिया जा सकता है! और, अंत में उसने ऐसा ही निश्चय किया। वह अपनी गति में बढ़ता चला।

और दूसरी बार जब वह जमींदारनारी स्वयं भूलते-भटकते उस विद्यालय में आई, तब अमल ने जमींदार के रूप में ही उसकी अभ्यर्थना

की। नारी-जाति के प्रति उसके हृदय में जो कोमलभाव था, उससे उसके आदर-सत्कार में उसने जरा भी त्रुटि न आने दी। बडे मधुर-विनीत भाव से वह उससे मिला। उसके साथ बातें की और उन बातों से उसे यह अनुभव हुआ कि वह अप्रसन्न नहीं है, उसे विद्यालय की रूपरेखा पसंद आई और उसके कामों के प्रति उसकी थोड़ी-सी सहानुभूति का निर्दशन भी उसे देखने को मिला। उसके बाद जब कुमुद तैयार होकर विद्यालय आने-जाने लगा और उस कुमुद को उसने जिस रूप में जाना, उससे उसने अनुमान किया कि उसने जिसे दाम्भिक समझा था, वह उसकी भूल थी। दाभिक 'पर' को 'निज' का आदर नहीं दे सकता! अवश्य वह नारी दयामयी है—स्नेहमयी है!

और जब उस स्नेहमयी नारी का पत्र उसे प्राप्त हुआ और जब कुमुद ने बार-बार चलने को उसे उत्प्रेरित भी किया, तब वह उस आमंत्रण पर चलने के लिए अपनेको बडे मुश्किल से तैयार कर सका, जिस स्थान से उसे एक दिन निराश लौटना पडा था। पर तीसरी भेंट में अमल ने जब अपनी योजना उसके सामने रखी और उसपर बड़ी देर तक विचार-विर्मश होने के बाद उस नारी की ओर उसने अपनी दृष्टि डाली, तब उसे लगा कि वह यदि उसका हाथ बटातीं तो वह (अमल) कितना धन्य होता! उसने यह अनुमान ही नहीं किया, वरन् उसकी दृढ़ धारणा बँधी कि वह दयामयी स्नेहमयी ही नहीं हैं—वह तो शक्तिमयी है—स्वयं एक शक्ति है, जिनसे उसका स्वप्न सार्थक हो सकता है, जिनसे उसका जीवन धन्य हो सकता है! पर वह शक्ति, क्या उसका इतना बड़ा सौभाग्य है कि वह शक्ति उसके कामों मे हाथ बटाय! उसदिन उसे निराश नहीं लौटना पडा। वह किस तरह, किस रूप में, किस भावना मे डूबे हुए चाँदनी रात में एकाकी वहाँसे वापस चलता चला—वह स्वयं उसकेलिए बड़ा विस्मयजनक लगा।

और जिसदिन सारे राजसी सामान के साथ कुमुद और अपनी कन्या मञ्जु को लेकर स्वयं प्रभावती विद्यालय मे आई, उसदिन अमल को लगा कि जैसे उसपर दायित्व का कितना बडा बोझ आ पडा हो! विद्यालय में अबतक जिस समाज के लड़के इकट्ठे हुए थे, कुमुद उससे भिन्न ऐसे आभिजात्य घराने से वहाँ आ सका और उन लडकों के बीच वह खप सकेगा या नही—इस प्रश्न को लेकर वह उद्वेलित हो उठा! उसे कुछ समझ मे न आया कि आज वह किस तरह उनकी संबर्द्धना करे, किस तरह उन्हे बैठाये, और उनसे क्या वह बार्तालाप करे! उस अवस्था में उससे जैसा कुछ बना, वह बिलकुल साधारण था—बिलकुल सामान्य!

कुमुद प्रसन्न था। उसके उल्लास का जैसे अत न था उसके हृदय मे! उसने मंजु को साथ कर लिया और उसे वह वहाँ की सारी चीजो को दिखलाने के लिए निकल पड़ा।

अमल जब कुछ देर के बाद आश्वस्त हुआ तब उसे सबसे पहले अपने-आप में संकोच का बोध हुआ और बड़े संकुचितभाव से वह बोल उठा—आज कुमुद को मेरे हाथों सौपकर आपने जिस दायित्व का भार मुझपर लादा है, मुझे लगता है कि शायद ही मै उसे सँभाल सकूँ!

संबंध जुड गया ;है, उसे सोचते हुए मुझे ऐसा लगता है कि आप भी जाने कितने अपने हैं !

अमल इतनी दूर तक प्रस्तुत न था। उसके अनभ्यस्त कानों में यह ध्वनि कुछ ऐसी लगी कि उसने आश्चर्य-चकित होकर प्रभावती की ओर देखा और अप्रस्तुत-जैसा बोल उठा—यह मेरा सौभाग्य है। पर मैं नहीं जानता था कि आपके भीतर इतना बड़ा घाव है, जिसे आपने कुमुद के आवरण में इतने कौशल से, इतनी सुकुमारता से, ढँक रखा है कि बाहर से कुछ दिखाई ही नही पड़ता। यह तो कोई कलाकार ही कर सकता है !

अमल एक साँस में इतना बोल तो गया; पर उसे लगा कि उसे ऐसा न कहना ही शायद उचित होता। उसने सिर झुका लिया, पर उसी समय प्रभावती ने अमल की ओर संपूर्ण दृष्टि डाली और फिर ओठों-ओठों मे बोली—शायद कलाकार भी कर सकता है।

प्रभावती ने अपनी आँखें झुका ली। उसके भीतर कुछ द्वन्द्व उठ खड़ा हुआ, जो उसकी आकृति पर छा गया। पर उसी समय अमल से कहते सुना—हाँ, आप सच कह रही हैं, कलाकार भी कर सकता है, जब वह उतनी ही विषाद की घड़ियों से गुजर चुका होता है ! जीवन की वे घड़ियाँ किस तरह मनुष्य को सजाकर निर्मल और निष्कलुष बनाती है, उसका हिसाब लगाना कुछ सहज नही, रानीसाहबा। आपने अपने सहज सरल अकृत्रिम भाव से अपने अंत:करण के कोमल अश को प्रकट कर मुझे व्यामोह में डाला है, मै नहीं जानता कि मै उस अधिकार की रक्षा कर सकूँगा।

अमल की बातें प्रभावती के कानों में अस्पष्ट-सी प्रतीत हुईं। उसे लगा कि अमल अपने अंतःकरण में उठे हुए भाव को ठीक-ठीक व्यक्त नहीं कर सका है, पर अमल की आँखों से जो उज्ज्वलता की आभा सहजभाव से उद्भासित हो उठी है, उससे उसे लगा कि अमल का

हृदय समवेदना से भर उठा, जो उसकी वाणी से स्पष्ट न हो सकी, पर वह उसकी आँखों में प्रत्यक्ष हो उठी है! प्रभावती ने अमल की ओर दृष्टि डाली, फिर उसने धीरे से सिर झुका लिया। अमल ने सिर उठाकर प्रभावती की ओर देखा, पर कुछ ही क्षणों के बाद सिर झुकाकर जाने क्या सोचने लगा। दोनों कुछ क्षण मौन रहे, वातावरण मौन था, स्तब्ध था। और वह मौन स्तब्धता जब उनदोनों केलिए असह्य हो उठी, तब प्रभावती ने अपने हाथ की छोटी-सी मंजूषा उसकी ओर बढ़ातेहुए कहा—कुमुद को आपने जिस तरह स्वीकार किया है, उसी तरह इसे भी आप स्वीकार करें।

अमल ने मंजूषा उठाली और किंचित् उल्लास में आकर उसे खोल डाला। खोलते ही उसकी दृष्टि एक सादे लिफाफे पर पड़ी और उसने उस लिफाफे को खोलकर कागज निकाल उसपर नजर दौड़ाई और उल्लास की तीव्रता में वह जोर से बोल उठा—तो क्या यह काम आपने स्वयं पूरा कर डाला? इसकेलिए मै कितना भीतर से चिंतित हो उठा था, रानीसाहबा! ओह, मे कैसे बतलाऊँ कि आपने कितने सहजभाव से मेरी चिंता दूर कर दी! ओह, आप···। आप ···

प्रभावती हँस पड़ी और हँसकर ही जैसे उसने व्यक्त कर दिया कि इसमे चिंता करने की बात ही क्या हो सकती है! उसकी हँसी मे अमल अप्रतिभ हो उठा और कुछ संकोच के साथ बोला—आपने सचमुच ही बड़ा उपकार किया है, रानीसाहबा? न केवल मेरा ही, वरन् उस जनता का किया है, जो आज मूर्च्छित अवस्था में पड़ी हुई है, जिसकी चेतना लुप्त-सी हो उठी है, जिसे इतना भी बोध नही है कि वह भी मनुष्य है!

अमल ने उस कागज पर फिर से दृष्टि डाली और इसबार उसे ठीक-ठीक पढ़ने का प्रयत्न किया, पर वह अपने प्रयत्न मे सफल न हो

सका। उनदिनों जमीदारी-सिरस्ते के कागज-पत्र कैथीलिपि में, और बड़े घसीट रूप मे, लिखी जाती थी। अमल ने कभी वैसी लिपि पढी नहो थी। पर नागरी लिपि के समीपवाले कुछ अक्षरों को वहें,पढ तो सका, फिर भी इतना कष्ट उठाकर उसने पढ़ने की आवश्यकता न समझकर उस कागज को मोडा और उसी मंजूषा मे रखना ही चाहता था कि तभी उसकी दृष्टि उस मंजूषा के भीतर की वस्तु पर पड़ी। प्रभावती की दृष्टि अमल की कुतूहल से भरी दृष्टि की ओर लगी थी। इसलिए उसने अपनी ओर से उस कुतूहल का शमन करतेहुए कहा -यह मेरी एक तुच्छ सेवा है, अमलबाबू! अभी मैं जो कुछ कर सकती थी. वह आपकी भेंट है। आप इसे जिस रूप मे खर्च करना आवश्यक समझे. वैसा करने का आपको पूर्ण अधिकार है·····

—अधिकार!—अमल ने मंजूषा के भीतर पडेहुए नोटों की ओर दृष्टि डाली और उसे लगा कि उसपर जैसे गुरुतर बोझ का अम्बार आ पडा हो! उसका हाथ जहाँ पड़ा था, वही रुक गया और वह जैसे घबराहट के स्वर में बोल उठा—यह अधिकार मैं उठा नही सकूँगा, रानीसाहबा! मैं जानता हूँ कि विद्यालय को धन की जरूरत है। धन उसकेलिए अपेक्षित ही नही—अनिवार्य है—यह भी महसूस करता हूं, पर मै इसका अधिकार नहीं चाहता! मै तो मात्र सेवक हूँ, सेवा करना ही मेरा एकमात्र लक्ष्य है, अधिकार का भार मुझसे उठाया नही जायगा! कृपाकर इसे आप सहेज लीजिए और मुझे मुक्त कर दीजिए, ताकि मै अपने कामों को निर्विघ्न-निरापद संपन्न कर सकूँ! क्या आप इतना-सा भार उठा नहीं सकतीं?

मजूषा उनदोनों के बीच पडी थी, जिसे अमल ने अपने निकट से हटाकर प्रभावती की ओर कर दिया था। प्रभावती से यह छिपा न रहा और न यही छिपा रहा कि अमल आखिर चाहता क्या है?

प्रभावती हँस पड़ी और हँसते हुए उसने कहा—मै आपका मतलब समझ गई अमलबाबू ! पर मै तो खुलकर आपका साथ दे नही सकती !

—साथ !—इसबार अमल भी हँस पडा, पर उस हँसी को बल-पूर्वक रोककर सरल भाव से कहा—खुलकर साथ देना कुछ अर्थ नही रखता ! वह तो स्थूल वस्तु है, और स्थूलता जीवन केलिए आवश्यक है, पर अपेक्षित नही ! मुझे केवल आपसे शक्ति की अपेक्षा है। और मै आपसे वह पाता रहूँ, इससे अधिक मै और कुछ नही चाहता। मेरा स्वप्न उसीसे साकार हो उठेगा।

—और यह धन ! इसे क्या मै वापस ले जाऊँ ?

—यह धन आपके पास थाती रहा—अमल ने इसबार खुलासा किया—जब-जब इसकी जरूरत आती जायगी, तब-तब आपसे मै मँगा लिया करूँगा।

—यदि यह आपके पास ही रहे, तो क्या इससे आपके काम मे बाधा पड़ेगी ?—प्रभावती ने सीधा प्रश्न किया।

अमल सहसा उत्तर न दे सका, उसने कुछ क्षण रुककर कहा—हाँ, बाधा पड़ सकती है। मैं जानता हूँ अपने-आपको, धन के मामले में मै कितना असफल रहा हूँ ! धन सदा हाथ में आता रहा है, पर उसके साथ जो न्याय होना चाहिए, वह मुझसे हो नही सका है। संभव है, वह मुझसे हो भी नहीं सकता ! मै इस संबध मे इतना कमजोर हूँ कि मै ठीक-ठीक उसे बता भी नही सकता !

अमल चुप हो रहा। प्रभावती उसकी ओर देखने लगी। अमल फिर प्रसन्नभाव से बोल उठा—घर का संरक्षण नारी ही कर सकती है, पुरुष से वह संभव नही !

—पर जो पुरुष इतनी लंबी-चौड़ी योजना बना सकता है, वह धन को उपेक्षित दृष्टि से देखेगा—यह बात मेरी समझ मे जरा भी नही आती !—

प्रभाबती ने बड़े संयत भाव से कहना शुरु किया—यह धन तो कुछ व्यक्तिगत रूप से आपकेलिए नही है, यह विद्यालय के निमित्त है, उसके विकास के लिए है। आप जानते है 'कि इसका उपयोग उसी काम में होना चाहिए! फिर आपकी कमजोरी का तो यहाँ कोई प्रश्न ही नहीं उठता। आप अपने धन का सदुपयोग-दुरुपयोग, जो भी करना चाहे, कर सकते है। वहाँ आप स्वाधीन है पर जो धन संस्था के निमित्त है, उसका दुरुपयोग आप-जैसे विचारवान पुरुष कर कैसे सकेगा!

—कैसे कर सकेगा!—अमल इसबार जोर से हँस पड़ा और हँसते-हँसते कहा—धन का मोह कुछ सामान्य नही होता, रानीसाहबा! आज संसार में जो इतना भ्रष्टाचार दीख रहा है, उसके मूल में यही धन तो है। इस मामले में कौन कितना खरा साबित निकल सकता है—यह साधारण प्रश्न नही। मै यद अपनी सचाई अपने दिल में छिपाकर कुछ-का-कुछ उत्तर देता, तो आप प्रसन्न हो सकती थीं; पर मेरा हृदय उससे मर्माहत हो उठता। मै ऐसा नहीं कर सकता!

प्रभावती ने अमल की बातों को हँसकर ही स्वीकार किया, कहा—तो मैं समझ लूँ कि आपके मन के अंतस्तल में कदाचार छिपकर बैठा है?

—शायद ऐसा समझना कोई गलत न होगा!—अमल ने भी स्वाभाविक भाव से ही उत्तर में कहा।

इसके बाद बातें आगे न बढ़ सकीं। कुमुद मंजु को साथ लिये वहाँ आ पहुँचा। दोनों के प्रसन्न-प्रफुल्ल बदन को देखकर प्रभावती ने मंजु से पूछा—क्या सब-कुछ देख आई मजु!

—हाँ, देखा सब-कुछ।

—अच्छा, अब तो हमलोगों को लौटना भी चाहिए—प्रभावती ने मंजु के प्रति कहा, फिर वह कुमुद की ओर ताकती हुई बोली—तुम क्या

कहते हो कुमुद, हमलोग चलें? क्या तुम्हे भी चलने की इच्छा होती है?

—इच्छा!—कुमुद संकोच में पड़ गया। उसने सिर घुमा लिया, फिर कुछ क्षण के बाद धीमे स्वर में कहा—मगर मै तो यहाॅ रहने के लिए आया था, रानीमाॅ!

—तो तुमने सब-कुछ देख लिया कुमुद!—प्रभावती ने पूछा—रहने मे तुम्हे कुछ कष्ट तो न होगा?

—हाँ, हाँ, कुमुद,—इसबार अमल ने कुमुद को सहारा देते हुए कहा—अगर तुम्हे कुछ ऐसा लगे तो साफ-साफ कहो! यह तो निश्चित है कि महल-जैसा सुख यहाॅ मिल नही सकेगा, जिस तरह यहाँ हमसब रहते है, उसी तरह तुम्हे भी रहना पड़ेगा। कष्ट होना तो यहाॅ के लिए कुछ अस्वाभाविक नही! कहो, तुम क्या कहना चाहते हो?

—मै रह लूॅगा, रानीमाॅ, मुझे कोई कष्ट न होगा—कुमुद ने हकलाते स्वर में कहा। फिर वह अमल की ओर देखते हुए बोल उठा—अमल'दा, मै सच कहता हूॅ मुझे कोई कष्ट नही होगा।

—हाँ, कुमुद, तुम्हे कोई कष्ट न होगा—प्रभावती सरलभाव से बोली—अमलबाबू तुम्हे कोई कष्ट न होने देंगे! और, यदि कभी तुम्हे ऐसा अनुभव हो तो तुम सीधे घर चले आ सकते हो। क्यों, आओगे न कुमुद?

—हाँ, आऊँगा क्यों नही!

—हाॅ, कुमुद, यों भी आ सकते हो—मंजु अपने को रोक न सकी, बोली—जरूर आना, मै कहे जाती हूॅ।

अमल ने एकबार मंजु की ओर देखा, फिर प्रभावती की ओर। उसकी आँखें वहाँ से कुमुद की ओर जा पड़ीं। उसे उस क्षण यही बोध हुआ कि कुमुद के प्रति उनदोनों के हृदय में जो गंभीर स्नेह भर उठा है, वह कुछ सामान्य नहीं!

प्रभावती मंजूषा अपने हाथ मे लेकर चलने को उठ खड़ी हुई। अमल भी उठ खड़ा हुआ! प्रभावती अमल से विदा लेते हुए बोली—मैं अपनी थाती आपको सौप रही हूँ और आपकी थाती मेरे साथ जा रही है! आपको जिस तरह विश्वास है कि आपकी थाती मेरे पास सुरक्षित रहेगी, उसी तरह मुझे भी विश्वास है कि ...

—देखूँ, यदि मैं आपका विश्वास-भाजन हो सकूँ!—अमल ने आश्वासन के स्वर मे कहा—यदि हो सका तो उस दिन सबसे अधिक मुझे ही प्रसन्नता होगी। क्योंकि आपकी थाती का जो मूल्य है और जिसे मैं अमूल्य बनाने का भार लेता हूँ, उसमे मेरे कर्म का फल भी सन्निहित है—और वह मेरे स्वप्न का साकार रूप भी होगा। कुसुद से मैं वैसी आशा रखता हूँ।

प्रभावती कुछ बोल न सकी, पर उसकी आँखें कृतज्ञता के बोझ से बोझिल हो उठी! प्रभावती मंजु का हाथ थामे चल पडी! अमल और कुसुद दोनों गाड़ी तक पहुँचाने आये। वे दोनों गाडी पर बैठी। गाडी जोडी गई, और जब गाडी चल पडी, तब प्रभावती ने अमल से कहा—मेरे कहने को कुछ रह नही गया है, अमलबाबू! पर, आज लगता है कि मैं कुछ खोकर जा रही हूँ! पता नही, ऐसा क्यों लगता है! देखिएगा, कुसुद को कोई कष्ट न होने पावे!

—कोई कष्ट न होगा, रानीसाहबा!—उत्तर में अमल ने कहा। पर गाडी चल पडी थी, सभव है कि गाडी तेजी से निकल जाने के कारण कुछ वह सुन नही सकी।

प्रभावती जाने के समय कुसुद से कुछ कह नही सकी, यहाँ तक कि कुसुद की ओर एकबार ताका तक नही!

गाड़ी जब आँखों से ओझल हो गई, तब अमल ने कुसुद का हाथ पकड़कर कहा—कुसुद, तुम्हें रानीमाँ कितना मानती है!

—हाँ, अमल'दा, रानीमाँ मुझे बहुत मानती है—बहुत!

२५

कलाकार अमल के मस्तिष्क मे जो स्वप्न एक दिन अनायास ही वट-बीज के रूप मे, विद्युत् की तरह कौध उठा था, उस वटवीज को अंकुरित देखकर अमल जिस तरह उसके विकास की ओर सन्नध हो उठा था, आज जब उसने पाया कि प्रभावती का सान्निध्य और साहाय्य उस छोटे से अंकुर के विकास केलिए कितना अपेक्षित था, तब उसके अंतर की श्रद्धा उस नारी के चरणों पर प्रणिपात होने को जैसे ललक उठी। उसे लगा कि प्रभावती केवल शासनकर्तृ रानी ही नही है, वह तो महीयसी नारी हैं, जिनके अंतर मे न केवल करुणा की निर्झरिणी ही सतत प्रवाहित होती रहती है, वरन् उनमे कलाकार की कोमल भावना और स्वप्न-द्रष्टा की पैनी दृष्टि भी है! अमल के जीवन मे प्रभावती का सहायक होना मात्र एक संयोग था। पर उस संयोग पर विचारकर अमल स्वयं विस्मित-चकित हो उठा! उसके आनंद की जैसे कोई सीमा ही नही रह गई!

प्रभावती के जीवन में जाने वह कैसा क्षण आ पहुँचा, जिस क्षण उसके समक्ष अमल की आकृति-प्रकृति का एक यौवन से उद्दीप्त व्यक्तित्व उपस्थित

होकर उसके मन और सयम को झकझोर गया ! जिस अमल को एक दिन उसके महल से निराश होकर लौटना पड़ा था, जिसदिन उसने जाना कि आभिजात्य वंशीय जमीन्दार मे अहंकार की भावना ही प्रधान होती है और अहंकार को चरितार्थ करने केलिए ही उसका सारा धर्म-कर्म चलता रहता है, उसदिन उसकी कल्पना में भी यह बात नहीं आई थी कि वह जमीदार प्रभावती आगे चलकर उसके सामने, उसकी संस्था और उसके जीवन के लिए एक अमोघ शक्ति के रूप में आकर खड़ी होगी !

और जब अमल इन-सब बातों को एक सूत्र में पिरोकर देखना चाहता है तब उसे लगता है कि उस सूत्र के ओर-छोर पर मणिका के रूप में कुमुद आसन मारकर बैठा है ! कुमुद के प्रति प्रभावती का उमडता हुआ वात्सल्य स्नेह वह अपनी आँखों देख चुका है । वह देख चुका है कि कुमुद के आदर-यत्न और शिक्षा-दीक्षा के प्रति वह नारी कितनी सजग है ! और जिसदिन से वह जान गया है कि कुमुद उस नारी का औरस नही—औरस सतान की आकृति-प्रकृति का संबल मात्र लेकर जो (कुमुद) उसके सामने निष्प्राण-अकिंचन-दीन-हीन अवस्था में, अयाचित प्रत्यक्ष हुआ, वह उसका पुत्र न होकर भी, आज पुत्र का सारा अधिकार और सारा स्नेह लेकर बैठा है, उसदिन से उस महीयसी नारी के प्रति अमल के अंतर में श्रद्धा का सागर उमड पडा और कुमुद के प्रति उसकी सारी करुणा सिमटकर एकत्र हो उठी !

और वही कुमुद जब आठों पहर उस अमल के सान्निध्य में आकर उसकी छाया को तरह सतत उसके साथ रहा करता है, तब लगता है कि वह किस तरह उस बालक को अपने अंतर के स्नेह, शिक्षा-दीक्षा का दान करने में समर्थ हो सकेगा । विद्यालय में शिक्षा-क्रम बालकों के मनोवैज्ञानिक आधार पर बनाये गये थे । खेल-कूद के साथ-साथ शिक्षण की विधि इस तरह रखी गई थी, जिसमें प्रधानत हाथ और आँख से ही

अधिक काम लिया जाता था। अमल ने पाया कि कुमुद के भीतर हर बात की जिज्ञासा जैसे संजोई पड़ी है। एक ही साथ जाने वह कितने प्रश्नों का उत्तर पाना चाहता है। जो बालक महल मे प्राय मूक बना रहता था, वह विद्यालय के वातावरण में इतना मुखर हो उठेगा—वह अवश्य ही विस्मयजनक अमल को लगा। पर, अमल का कौशल चित्र-कारी की ओर विशेष रूप से फूट उठा और वह उसे चित्रकार बनाने की ओर लग पड़ा।

प्रभावती ने जिसदिन अपने मनोभाव को कुचलकर, कुमुद की आकाँक्षा की पूर्ति केलिए उसे अपने से विलग कर विद्यालय में पहुँचाया, उसदिन महल में वापस आकर वह अपने-आपमे खोई-सी रही और खोई-खोई-सी रहकर उसने स्नान किया, कपड़े बदले, सायं-संध्या जैसे-तैसे पूरी की और उसके बाद अपने शयन-कक्ष में आकर बिछावन पर लेट रही। पर लेट जाने पर भी वह अपने अंतर्द्वंद्व पर विजय न पा सकी। कुमुद की आकृति रह-रहकर जैसे उसकी घनी बरौनियोसे ढँकी पलकों के भीतर नाच उठती; वह जितना ही भुलाने का प्रयत्न करती, उतना ही उसका हृदय सूना-सा होता जाता। और उस शून्य हृदय को भरने में वह संलग्न हो उठती। उसने अपने अतीत क्षणों की मनोव्यथा को वर्त्तमान मे मूर्त्त आधार पाकर जिस तरह शमन करने मे विजय पाई थी, उसीतरह, उस आधार को खोकर उसे लगा कि वे अतीत क्षण उसके सामने छाया की तरह बढ़तेहुए आकर उसे ढँकते जा रहे हैं, और उसकी मनोव्यथा बढ़ती जा रही है। ऐसी अवस्था मे वह जाने कबतक पड़ी रही—उसका उसे कोई बोध न रहा। वह लेटी रहीं, और उसकी आँखों से आँसू बहते रहे।

किंतु श्यामा अपने काम में सजग थी। वह जान गई कि उसकी रानीमाँ किस तरह बाहर से आई और किस तरह उसने स्नान-संध्या की

मात्र रीति निबाही। पर स्नान-संध्या के बाद जिस तरह वह सभीको लेकर आमोद-प्रमोद मे रहा करती, उस तरह मे तो आज उसका कुछ देखने में न आया, तब वह श्यामा अपने-आपमें चौकी और उसने बाहर-बाहर से कईबार आकर देखा कि उसकी रानीमाँ बिछावन उस पर चुपचाप लेटी पड़ी है! वह रुक-रुककर बाहर घंटों खडी रही, पर उस कक्ष के भीतर उसने घुसने का प्रयास तक न किया! आज उसे लग रहा था, जैसे अंत पुर का सारा वातावरण विषाद के काले बादलों से ढँक गया हो, जहाँ घोर अंधकार के सिवा प्रकाश की एक टिमटिमाती शिखा तक न रह गई हो!

आखिर, श्यामा को उस कक्ष में प्रवेश करना पड़ा। गरम दूध का गलास तश्तरी पर रखे वह कक्ष के भीतर आकर पलंग के पास खड़ी हो रही और बडे विनीत भाव में धीरे से बोली—दूध पी लीजिए, रानीमाँ!

प्रभावती की पलकें अबतक ढँकी थीं! उसने आँखें खोलीं और झट से आँचल उठाकर, सिर घुमाए आँसुओं को पोछकर श्यामा की ओर देखती हुई बोली—क्या तुमलोग खा-पी चुकीं श्यामा?

—हाँ, रानीमाँ!—श्यामा बोल तो गई, पर वह सच नहीं था। इसलिए उसकी वाणी भीतर से स्पष्ट खुल न सकी—थरथराकर अस्पष्ट होकर निकली। प्रभावती ने भी समझा; पर उसने फिर से पूछने का आग्रह न दिखलाया। श्यामा तबतक अपनेको संभाल चुकी थी, बोली—दूध तो पी लीजिए, रानीमाँ!

श्यामा ने तश्तरी के साथ ग्लास तिपाई पर रख दिया और उसने पायतानेकी ओर बढ़कर प्रभावती के पाँव पर हाथ रखा।

प्रभावती लेटी पड़ी रही। उसने न पाँव खींचा और न उसकी सेवा अस्वीकार की। उसे लगा कि श्यामा का आना उसके लिए अच्छा ही हुआ। श्यामा जहाँ उसकी सेविका है वहाँ वह उसकी अंतरंग सखी भी है! इसलिए प्रभावती ने अपने अंतर की बात कभी उससे छिपाई नहीं;

बल्कि उसबात को प्रकटकर अपने मन को वह हलका करती रही। श्यामा भी यह बात समझती थी, इसलिए वह दूध रखकर चली नही गई। वह पाँव दबाने बैठ गई। पर, प्रभावती की व्यथा इतनी गहरी और इतने मर्मस्थल से थी कि वहाँ से फूटकर सहसा ओठों पर आना संभव नही था। इसलिए प्रभावती मूक ही बनी रही। श्यामा में भी कोई हलचल न दीख पडी। वहाँ का वातावरण भी साँय-साँय-सा करता जान पड़ा।

कुछ क्षण योंही दोनो नीरव, निस्पंद-सी अवस्था में पड़ी रहीं। उसके बाद प्रभावती ने अपने-आपको सँभाला और वह धीरे से बोल उठी—जानती हो श्यामा, मुझे आज कैसा लग रहा है ?

—हाँ, रानीमाँ, लगता है, जैसे आप बडी दुखी हो उठी है।—श्यामा ने उत्तर में कहा।

—हाँ, श्यामा, तुमने सच ही कहा—प्रभावती ने तकिये को सँभाल कर श्यामा की ओर ताकते हुए कहा—मुझे लगता है कि कुमुद जैसे छलकर आज निकल भागा! शायद मै उसे सदा केलिए खो चुकी हूँ, शायद वह सदा के लिए मुझसे जुदा हो गया है!

—नही, रानीमाँ!—श्यामा जरा सावधान हुई, उसने देखा कि प्रभावती के हृदय में जो धारणा बँध गई है, उसे किसी तरह से दूर करना ही होगा। इसलिए उसने अपने-आपको तैयार किया और फिर बोल उठी—ऐसी तो कोई बात नहीं है! कुमुद को आपने सुशिक्षित करना चाहा है। पुराने जमाने मे भी राजघराने के बालक शिक्षा केलिए गुरुकुल भेजे जाते थे। कुमुद तो हमारा अंग बन गया है। वह घुलमिलकर दूध-पानी-जैसा एक हो गया है! पढ़ने की ओर उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति उमड़ उठी है! आपने उसे भेजकर उचित ही किया है। रानीमाँ! ऐसा न करना ही अन्याय होता!

—अन्याय !—प्रभावती ओठों-ओठों में बोली, फिर कुछ क्षणों तक चुप हो रही, उसके बाद फिर से बोल उठी—हाँ, तुमने सच कहा श्यामा, वह अन्याय होता ! तभी तो मैं वैसा न कर सकी ! उचित माँग को ठुकराना मुझसे हो सकता था कैसे, श्यामा ! आखिर, बेचारा कुमुद ही, अपने मन में क्या कहता कि मैं अपने स्वार्थ के लिए उसे आँखों से दूर नहीं करना चाहती ! पर, आँखों से दूर ...

—आँखों से दूर है ही कहाँ, रानीमाँ !—श्यामा इसबार सँभलकर बोल उठी—उसे तो जब चाहें, बुला सकती हैं, जब आपकी इच्छा हो, जाकर मिल सकती हैं ! कोई रुकावट तो है नहीं ! फिर विद्यालय की देख-रेख का भार भी तो आपने स्वीकार कर लिया है, रानीमाँ !

—स्वीकार !—प्रभावती खुलकर बोल न सकी, उसने मन-ही-मन कहा—स्वीकार जाने उसके लिए मुझे क्या-क्या करना है—सो मैं खुद नहीं जानती, पर मुझे सब-कुछ उसके लिए स्वीकार करना पड़ेगा ! श्यामा प्रभावती की ओर देख रही थी, प्रभावती की आँखें चार हुईं और उसने कहा—हाँ, स्वीकार कर लेना पड़ा, श्यामा ! मैं कुमुद के बंधन में बँध चुकी हूँ। विद्यालय की अवस्था मुझे अच्छी न जान पड़ी। बेचारा अमल शिक्षित है, कलाकार है, पर धन के मामले में इस श्रेणी के लोग सदा कष्ट ही उठाते रहे हैं ! कष्ट से मुक्त नहीं रहेगा तो शिक्षा का प्रसार उससे हो कैसे सकेगा ? इसीलिए मुझे ऐसा करना पड़ा, श्यामा !

श्यामा ने दूध पी लेने की ओर फिर से स्मरण दिलाया। इसबार प्रभावती ने ग्लास ओठों से उठाया और थोड़ा-सा दूध पीकर ग्लास रख दिया और जलपात्र से मुँह अँचाकर फिर लेटते हुई बोली—विद्यालय से लौटते समय मैं कुमुद से कुछ कह न सकी श्यामा, शायद वह जाने क्या समझ रहा होगा ! उसने मेरे हृदय को कंगाल बना दिया है। लगता है, मैं उसे वहाँ रख न सकूँगी !

श्यामा से सहसा उत्तर देते न बना। उसे लगा कि कुमुद की याद उनके मन को डॅवाडोल बना रही है। इसलिए उसने सोचा कि कुछ ऐसी बात उन्हें कही जाय, जिससे उनका भार कुछ हलका हो और ऐसा सोचकर श्यामा ने पैर दबाते हुए कहा—कुमुद के लिए अब चिंता करने की बात नही रह गई, रानीमाँ! अमल के विद्यालय मे रहकर वह एक योग्य मनुष्य हो सकेगा—यह लाभ तो कुछ साधारण नही! वहाँ उसे एक ऐसे परिवार में रहना पड़ेगा जो उसके मन के अनुकूल पड़ेगा। वहाँ उसे साथी मिलेंगे, सहपाठी मिलेंगे और साथ रहने-सहने का परिणाम यह होगा कि वह एक दूसरे का सुख-दुख समझ सकेगा! उसे अपने-आप पर भरोसा करना पड़ेगा, अपने पाँव पर खडे होने की उसे ताकत आयगी! इतना लाभ तो उसे यहाँ मिल नही सकता था; रानीमाँ! ऐसा अवसर उसे न देना उचित नही होता!

श्यामा बोलकर कुछ क्षण चुप हो रही, फिर अत में बोली—कुमुद के प्रति आपका जो गहरा स्नेह है, रानीमाँ, वह स्नेह एक-एक लडके को मिलेगा, जो अभी वहाँ पढ़ रहे है। केवल उन्हें ही नही मिलेगा, जो अभी वहाँ पढ़ रहे है, बल्कि उन्हे भी मिलेगा, जो पीछे आनेवाले है। वे भी उस स्नेह के अधिकारी होंगे! आपने अपने स्नेह का प्रसार जिस कारण, या जिस रूप में किया है, वह तो साधारण बात नही है, रानीमाँ!

प्रभावती के कानों मे यह बात नई जान पड़ी। इस दृष्टिकोण से उसने अभी तक विद्यालय की बात न सोची थी। इसलिए उसकी आकृति दमक उठी। उसकी उज्जवल आँखें प्रफुल्लता से और भी समुज्ज्वल हो उठीं और श्यामा की ओर देखते हुए कहा—तुमने ठीक ही कहा श्यामा,! जानती हो, विद्यालय से लौटते समय मुझे कैसा लगा था?

—कैसा लगा था रानीमाँ!—श्यामा की आखें जैसे विहँस उठीं!

—लगा था कि वहाँ के बच्चे ही तो कुमुद के अपने होंगे--प्रभावती कहती चली—उसकी प्रसन्नता ही कुमुद की प्रसन्नता होगी। कुमुद उसके

बीच घुलमिल जायगा। उसके घुलमिल जाने की बात सोचते-सोचते मुझे लगा कि जैसे मै ही उनके बीच घुलती-मिलती जा रही हूँ। लगा जैसे वे बच्चे ही मानो कुमुद है! श्यामा, कुमुद ने मेरे हृदय में ऐसी उथल-पुथल मचा दी है कि मैं सोच नही सकती, आखिर मै कहाँ जाकर विश्राम लूँगी!

प्रभावती भावावेश में बोलकर अचानक कुछ सोचने लगी। पर श्यामा उसकी ओर देखकर प्रसन्न हो कुछ कहना ही चाहती थी कि प्रभावती स्वय बोल उठी—श्यामा, मुझे लगता है कि यदि मैं स्वतः जाकर वहाँ रहती तो और कितनी अच्छा होता!

—पर आप वहाँ रह कैसे सकेंगी!—श्यामा ने हँसकर कहा—यह राजमहल, राजमहल के रीति-रिवाज, बहुत-सी बातें है रानीमाँ!

—हाँ, श्यामा, बहुत-सी बातें है!—प्रभावती ने उदास आँखों से श्यामा की ओर देखते हुए कहा—हाँ, बहुत-सी बातें हैं, श्यामा! नारी वंदिनी रही है और बंदिनी ही रहेगी!

—वंदिनी?—श्यामा ओठों-ओठों में बोली।

—हाँ, वंदिनी ही तो, श्यामा!—प्रभावती ने इसबार खुलकर कहा—वंदिनी ही तो है वह! जो जाल वह दूसरे के लिए तैयार करती है, उसमें आप उलझ कर रह जाती है। नारी का यह स्वधर्म है। कोई उसे बंधन में नही डालता, बल्कि वह स्वय बंधन पसंद करती है और बंधन में रहना चाहती है। शायद आजन्म उसे बंदिनी का रूप ही अच्छा लगता है!

श्यामा प्रभावती की बातें जाने ठीक-ठीक समझ नही सकी! इसलिए जिज्ञासा की दृष्टि लिये उसकी ओर देखती रही। पर, प्रभावती ने उसी समय कहा—अच्छा, जाओ, श्यामा, आराम करो!

श्यामा के मन की उत्सुकता मन में ही पड़ी हुई रही, पर वह कुछ मुँह से कह न सकी। वह उठ पड़ी। उसने तश्तरी उठाई और फिर वह लैंप की बत्ती धीमीकर, कक्ष के पल्ले खटकाती हुई, बाहर निकल पड़ी।

२८

कुमुद को नये विद्यालय के स्वच्छन्द कलात्मक वातावरण में आकर लगा कि जैसे वह वंदीशाला से सदा केलिए निमुक्त हो गया है ! उसने उस कलात्मक वातावरण में पाया कि उसके मन को उभारनेवाले साधन चारो ओर बिखरे पड़े हैं। उन साधनों के बीच उसे लगता है कि वह किसे ग्रहण करे और किसे छोड़ दे! उसके अंतर की प्यास जैसे जग उठी है और वह प्यास जैसे मिटती-सी उसे जान नहीं पड़ती ! वह दोनों हाथों से मन की प्यास बुझाने में लग जाता है।

विद्यालय में उसका एक ही पुराना साथी था और वह था दयाल ! पर वहाँ के जितने लड़के थे, वे-सब उसे अपने मन-जैसे ही मिले। पुराने स्कूल के लड़के जिसतरह उससे ईर्ष्या रखते, उसपर व्यंग कसते, उसे चिढ़ाते हुए मिले थे, ठीक उन-सबके विपरीत इस विद्यालय के लड़कों में उसे लगा कि यहाँ के लड़के एक परिवार के अविच्छिन्न अंग बन चुके हैं ! सभी एक साथ सोते, उठते-बैठते, खाते-पीते, खेलते-कूदते ! यहाँ तक कि आपस में उन-सब के बीच जो बातें भी होतीं उनमें आंतरिक स्नेह की बातें होतीं। यहाँ तक कि विद्यालय का संचालक-अभिभावक-

शिक्षक अमल भी उन लड़को-जैसा ही उसे जान पड़ता । उनसे सभी लड़के, भय खाना तो दूर, अपने अंतर की बात खुले दिल कहते और अमल भी हँस-हँसकर अपने अंतर को जैसे खोलकर उसके सामने रख देता ! कुमुद को यह-सब अच्छा लगता और उसे जान पडता कि वह यहाँ आकर-जैसे जी उठा है, जैसे उसका सारा व्यक्तित्व सचेतन हो गया है !

विद्यालय में कुमुद ने पाया कि वहाँ कुछ व्यक्तिगत रूप में शिक्षा दी जाती है और कुछ सामूहिक रूप में । सामूहिक शिक्षा में मौखिक शिक्षा के अलावा फुलवारी-बागान और खेती-बारी के काम भी सिखलाये जाते हैं । खेती-बारी के समय अमल सभी लड़कों को साथ लेकर खेतों में पहुँचते और उसके बीच स्वय अपने हाथों काम करते हुए उन्हें बतलाते भी जाते ! लड़के खुले वातावरण में, खुली देह, लहराती हुई खेती के बीच आनद से मचल उठते और उस आनंद का स्रोत गान और हँसी में जैसे फूट उठता ! कुमुद को यह काम इतना अच्छा लगता कि वह मचलकर गाने लगता ! लगता कि गान के भीतर उसके आनंद की मंदाकिनी जैसे थिरक उठती हो ! खुले मैदान की प्रच्छन्न हवा में उसका मन फॉद उठता ! लड़के चकित होकर बोल उठते—वाह, तुम कितने अच्छे गायक हो कुमुद !

खेतों में काम करने के बाद, धूल-धूसरित हो जाने पर जब सब-लड़के नदी की बहती हुई निर्मल धारा में नहाने को निकल पड़ते, तब वहाँ जल- कल्लोल करने, तैरने और नाव-खेने का जैसे शोर मच जाता। कुमुद को तैरना नही आता था; पर कुछ ही दिनों के बाद उसने यहाँ तक तैरना सीखा कि जब वह डुब्बी लगाता, तब जलकेभीतर-भीतर बहुत दूर जाने के बाद अपने सिर को ऊपर उठाता और वहीसे हँसकर कहता—देखो, मै यहाँ आ गया ! दूसरे लड़के उसको छूने केलिए आगे बढते, और

जबतक वह उसके पास तैरकर उसे छूने-छूने को होता, तबतक कुमुद फिर से डुब्बी लगाकर और कहीं निकल जाता। इसतरह उनलोगों की स्नान-क्रिया चलती रहती! निस्संदेह जल-क्रीडा से वे सब-के-सब बड़े आनंद का अनुभव करते।

नहा-धोकर जब सभी लड़के विद्यालय के प्रांगण में आते, तब उन्हें जलपान दिया जाता। जलपान की चीजें नित्य नई दी जाती। मौसिम के मुताबिक जो चीजें खेतों में उपजती, उन्हीं चीजों से जलपान तैयार किया जाता। चीजें जो भी हो, पर अपने परिश्रम के पुरस्कार-स्वरूप उन चीजों से ऐसा कुछ बोध होता कि वे चीजें उनके मन के ज्यादा अनुकूल होती और जलपान में जो रस उन-सबको मिलता, उससे उनका हृदय आमोद से भर उठता!

अपराह्ण के बाद, विद्यालय से छुट्टी मिलजाने पर, लड़कों को खेल-कूद केलिए छोड़ दिया जाता। उस समय लड़के खेल-कूद अपने पसंद के अनुसार चुन लेते और अपने मनोनुकूल टोलियाँ बना-बनाकर खेल के मैदान में निकल पड़ते! शिकार भी विद्यालय के नियम का एक अंग था। उसका उद्देश्य न केवल मनोरंजन मात्र था, वरन् समय पड़ने पर अपने-आपकी रक्षा किस तरह की जानी चाहिए और मन का भय किस तरह दूर किया जा सकता है—यह भी मुख्य था। इसलिए विद्यालय छोटे-मोटे अस्त्र-शस्त्र भी तैयार करता और उसके चलाने की शिक्षा भी दी जाती! धनुष-तीर से लेकर भाले-बर्छे-गँड़ाँसे आदि सब-कुछ सिखाये जाते! लड़के टोलियाँ बाँधकर हथियारों से लैश जंगलों में निकल पड़ते। जंगली जानवरों में बनैला चूहे, खरगोश, हरन तो अक्सर मिलते और कभी-कभी सूअर या तेंदुआ भी दिखाई पड़ जाते। उस समय लड़के भय से काँप उठते, पर कुछ ऐसे भी लड़के निकलते, जो निर्भय होकर उनका पीछा करते और जब उसे भगाने में वे समर्थ हो उठते, तब उनके

आनंद का फिर कहना ही क्या! शिकार तो यदा-कदा ही हाथ आता; पर जब-कभी कोई खरगोश या हरिन को मारकर ले आ सकते, उसदिन मानो विद्यालय के प्रांगण में उत्सव का आनंद जैसे थिरक उठता!

यह शिकार जंगल तक ही सीमित न था! *ज क शिकार भी लड़कों केलिए बड़ा ही आनंद-दायक होता! उसके लिए भी वे लोग बंशी और जाल लेकर निकलते। उस नदी की :मछलियाँ उनकेलिए सुरक्षित रहती। इसलिए उसकी मछलियाँ छोटी-बड़ी सभी तरह की रहती। वंशियों से मछलियाँ फसाना उन-सब लड़कों केलिए बड़ा ह आसान होता! जो जितना मछलियाँ इसतरह फँसा पाता, उसका आनन्द उतना ही अधिक होता, पर सामूहिक रूप मे जाल डालकर जब बड़ी-बड़ी मछलियाँ वे–सब निकाल पाते, उसदिन उनके आनद में चार चाँद लग जाते! उस दिन विद्यालय का प्रांगण आनंद-कोलाहल से मुखर हो उठता! विद्यालय के स्वच्छंद वातावरण में इसतरह के आनंद प्राप्तकर उन लड़कों को समय का कुछ ज्ञान नही रह जाता कि कब दिन निकला और किस तरह रात हो आई!

इस तरह विद्यालय अपने-आपमें पूर्ण था! वहाँ की विधि-व्यवस्था ही कुछ ऐसी थी कि उस के शिक्षार्थियों के मन पर कभी किसी बात का बोझ अनुभव नही होता और उनकी शिक्षा की प्रगति और मानसिक और शारीरिक विकास अवाध गति से उत्तरोत्तर होते चलते!

और इस प्रकार के विद्यालय की सर्वांगीण उन्नति मे शोभा और संपन्नता उसदिन से और बढ चली, जिसदिन से कुमुद वहाँ का विद्यार्थी बना! कुमुद के कारण से हो अथवा अमल के आकर्षक व्यक्तित्व और सदाशयता के कारण हो—कारण जो भी हो— प्रभावती का योग उस विद्यालय को यदि प्राप्त न होता तो संभव था कि उसमें इतनी सफलता नहीं आ सकती! प्रभावती धीरे-धीरे विद्यालय-भवन केलिए नीलकोठी

की मरम्मत कराने और दूसरे मकानों को फिर से बनवाने का भार अपने ऊपर लिया। लकड़ी, चूना, ईंट, सिमेंट आदि सामान इकट्ठे होने लगे। राजमिस्त्री, कारीगर, बढ़ई, मजदूरों की छावनी लग गई और मरम्मत का काम शुरू हो गया। यद्यपि ये सारे काम राज के एक पुराने अनुभवी कार्यकर्त्ता को सुपूर्द किये गये थे, फिर भी बीच-बीच मे दीवानजी आकर देख लिया करते और प्रभावती जब-कभी आकर परामर्श दिया करती। और जिसदिन प्रभावती स्वयं आ पहुँचती, उसदिन विद्यालय का सारा वातावरण मानो अपने-आपमे विहँस उठता। लगता जैसे चेतना मुखर उठी हो।

किंतु मुखर चेतना के बीच धीरे-धीरे प्रभावती जैसे अपने-आपमें विलीन होती चली। वह आकर्षण की डोर पर खिची-जैसी विद्यालय में आती। अमल आनंद में उद्‌बुद्ध होकर उसके स्वागत में आगे बढता। अमल और प्रभावती दोनों एक साथ किसी विषय को लेकर गंभीरतापूर्वक विचार करते। उस समय दोनों उस विषय में इतने तल्लीन हो उठते कि अपने-आपका भी ध्यान उन्हे नहीं रह जाता और जब उनमें से कोई समाधान के अंतिम छोर पर पहुँचकर बोल उठता—क्या ऐमा ठीक नहीं होगा? तब दूसरी ओर से उसके उत्तर मे कहा जाता–हाँ, यह आपने ठीक ही सोचा, ठीक ही सोचा।

एक दिन हठात् अमल ने प्रभावती से कहा—मै आपका एक तैल-चित्र बनाना चाहता हूँ। आपको कष्ट तो होगा; पर उस चित्र से विद्यालय का शोभा निखर उठेगी।

—विद्यालय की शोभा योंही निखर उठी है—प्रभावती ने हँसकर टालने के उद्देश्य से कहा–नहीं-नही, मै इसकी आवश्यकता नहीं समझती। जहाँ कलात्मक चित्र योंही शोभा बढा रहे हैं जहाँ .....

—वहीं तो आपके चित्र का और भी अधिक प्रयोजन है— अमल ने

बात काटकर, खुलासा करते हुए कहा—मैं इसलिए भी उसका होना आवश्यक बोध करता हूँ! और वह इसलिए भी अग्वश्यक है कि आप इस संस्था की सरक्षिका है। संस्था चाहती है कि अपनी संचालिका का मूर्त्त रूप सदा सामने रहे। "संस्था का यह अधिकार है। प्रत्येक संस्था अपने संरक्षक का सम्मान इस रूप में करती आ रही है। इसमें मैं तो कोई आपत्ति की बात नही देखता, हॉ, आपको कुछ कष्ट तो होगा ही।

प्रभावती समझ नहीं सकी कि वह किस प्रकार का कष्ट हो सकता है! वह इस बात को नहीं जानती थी कि उसे स्वयं उस चित्र केलिए चित्रकार के सामने मॉडल बनकर बैठना होगा और मॉडल के रूप में चित्रकार उसके प्रत्येक अंग-प्रत्यंग की रेखाएँ सूक्ष्मता पूर्वक अंकित करता चलेगा। प्रभावती किसी प्रकार का प्रदर्शन पसंद नहीं करती। उसका जीवन अबतक जिस गति में बहता आया था, उसमें इन-सब बातों का कोई स्थान नहीं था; पर अमल की एक बात उसके ध्यान में कुछ जमती-सी दिखाई दी। वह थी—प्रत्येक संस्था अपने संरक्षक का सम्मान इस रूप में करती आ रही है! फिर भी सहसा वह अपनी स्वीकृति दे न पाई और हँसकर टालते हुए उसने कहा—कष्ट जो भी होगा, उसके लिए मैं घबराती नही, अमलजी! पर मुझे यह-सब कुछ पसंद नही लगता! इस प्रदर्शन की तो मैं कोई आवश्यकता नहीं समझती! फिर भी, आप यदि यह आवश्यक समझते हैं तो मैं आपत्ति नही कर सकती! किसीदिन चित्र खीच लीजिएगा, पर आज तो मुझे अवकाश दीजिए!

—हाँ, हाँ, अवकाश ही है—अमल ने प्रसन्न होकर कहा—किसी दिन से प्रारभ किया जा सकता है! कोई बात नही! यह तो आपका बडा अनुग्रह होगा कि आप अपना चित्र भी संस्था को भेंट कर सकेंगी! संस्था चलती चलेगी, जिसदिन कुमुद यहाँ न रहेगा, मैं भी न रहूँगा,

और आप भी न रहेंगी, उस दिन संस्था की संरक्षिका के रूप में वह चित्र विद्यालय मे गौरव का संदर्शन करता रहेगा ! मेरा आपसे अनुरोध रहा कि आपको इतना-सा कष्ट स्वीकार करना ही पड़ेगा ।

प्रभावती की दृष्टि में महल के तैलचित्र अंकित हो उठे, जो चौधरीवश के राज्य-संस्थापक उसक श्वसुर चौधरी के साथ-साथ उसके पति के भी थे ! पर इसी समय उसके ध्यान में सहसा यह बात स्मरण हो आई कि आभिजात्य वश की किसी रमणी का चित्र अबतक लेने की परपरा तो रही नही है ! फिर क्या उसकेलिए चित्र-अंकित करना अशोभन और अमर्यादित नही होगा ? यह एक ऐसा प्रश्न था, जिसका सामाधान वह तुरत न कर सकी । उसके संलग्न और भी अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए । फलस्वरूप उसका मस्तिष्क द्वद्व से भिन्ना उठा । उसकी आकृति धूमिल हो उठी और उसे जान पडने लगा कि वह जहाँ आकर बैठी है, जिस रूप में बैठी है, उससे उसके अभिजात्य वश की परपरा मूर्छित हो पडी है ! प्रभावती भीतर भीतर काँप उठी और वह इतनी चंचल हो पड़ी कि उसे अपने-आपका भी जैसे बोध न रहा और वह उसी अवस्था में बोल उठी— अभी मुझे अवकाश दीजिए अमलजी, अब मै चलती हूँ ।

और अमल को कुछ कहने का भी अवसर न देकर प्रभावती उठ कर खडी हुई । अमल को भी उठना पड़ा । उसने एकबार प्रभावती की ओर दृष्टि डाली, पर वह उसकी आकृति को देख न सका ! फिर भी उसे लगा, जैसे कोई अघटनीय घटना घट चुकी हो ! पर वह अपने सहज स्वभाव के कारण कोई ऐसी घटना का अनुमान न कर सका, जो प्रभावती की अप्रसन्नता का कारण हो ! उसदिन, नित्य की तरह, प्रभावती कुमुद से मिल भी न सकी ! वह बाहर आई और गाडी पर आकर बैठ गई । गाड़ीवान ने गाड़ी जोडी और वह चल पडी ।

उसदिन कुमुद ने जब अमल के कमरे में पहुँचकर देखा कि वहाँ

उसकी रानीमाँ नहीं है, तब उसने अमल से पूछा—क्यों, अमल'दा, रानीमाँ क्या चली गईं ?

—हाँ, वे तो गईं—अमल ने उत्तर में जरा रुककर गंभीर हो कहा—क्यों, कुछ कहना चाहते थे कुमुद ?

—नहीं !—कुमुद ने छोटा-सा उत्तर दिया ।

पर अमल ने कुमुद की ओर देखकर इतना अनुमान जरूर लगाया कि अचानक, विना मिले, विना कुछ बातचीत किये, प्रभावती के चले जाने के कारण कुमुद बिषण्ण हो उठा है, उसकी सारी उत्कंठा भीतर-भीतर घुल रही है । ऐसा सोचकर उसे प्रसन्न करने के विचार से उसने मुस्कुराते हुए पूछा—क्यों, कुमुद, तुम्हारी रानीमाँ तुम्हे बहुत मानती है ?

—हाँ, बहुत !—कुमुद प्रसन्नता में सनकर कहने लगा—ओह, रानीमाँ कितनी अच्छी हैं अमल'दा, मैं कैसे बतलाऊँ ! वह मुझे इतना मानती है—इतना मानती है कि जितना और किसीको भी नहीं—यहाँ तक कि मंजु को भी नहीं, श्यामा को भी नहीं, पारो को भी नहीं, किसीको भी नहीं ...

—जभी तो तुमसे मिले वगैर वे चली गईं !—अमल ने हँसकर कुमुद का मन तौलना चाहा ।

—चली गईं, इसलिए कि रानीमाँ ठीक समय पर पूजाकर सकेंगी !—कुमुद ने उत्तर मे कहा—मगर मै यहाँ हाजिर होता तो वह पूजा भी भूल जाती और विना मुझसे दो बात किये आगे कभी नही बढतीं । मै जानता हूँ कि वह मुझे कितना मानती है !

—मगर वे तुम्हे इतना मानती क्यों है कुमुद ?—अमल ने हँसकर ही पूछा—तुम जानते हो कि वे क्यों इतना अधिक मानती हैं ?

—सो मै कैसे बता सकता हूँ, अमल'दा !—कुमुद ने सहजभाव से

कहा--कोई किसीको क्यो मानता है, यह तो मै बता नही सकता, न मै यही बता सकता हूँ कि तुम क्यों मुझे इतना प्यार करते हो ! भला तुम्ही बताओ न, क्यो तुम मुझे प्यार करते हो ? मै तो अपने-आपमे कोई ऐसी बात नही देखता कि तुम भी मुझे प्यार करो और रानीमाँ भी मुझे मानें और पारो भी मुझसे स्नेह करे ! भला बताओ अमल'दा, कोई किसीको क्यों,मानता है ?

अमल कुमुद की बातों पर खिलखिलाकर हँस पड़ा, और हँसते कहा--तुम कितने बुद्धिमान हो कुमुद, इसका उत्तर मुझसे नही मिलेगा ! तुम्हे सोचकर खुद बतलाना होगा कि कोई किसीको क्यो मानता है, क्यों प्यार करता है !

—प्यार !--कुमुद ने अमल की ओर टकटकी बाँधकर देखते हुए कहा—ओह, मै न बतला सकूँगा, अमल'दा ! मुझे लगता है कि प्यार दिल को अच्छा लगता है, ·· ···मगर·····ओह, मै कैसे बतलाऊँ कि वह क्यों अच्छा लगता है··· · मुझे लगता है कि रानीमाँ जो मुझे इतना मानती है, उसके बदले मै भी कुछ ऐसा करके दिखलाऊँ कि वह आनंद से विभोर हो जाय, कुछ ऐसा करके दिखलाऊँ,जैसा कोई न कर सका हो ! क्या ऐसा कुछ मै कभी कर नही सकता ? क्या मुझसे ऐसा कोई काम नहीं हो सकता, जिससे रानीमाँ खुश होकर कहे कि वाह, कुमुद नेक है !

कुमुद की ध्वनि से अमल बड़ा ही प्रभावित हुआ । उसे लगा कि कुमुद का हृदय दर्पण-जैसा स्वच्छ है, जरा भी कलुषता नहीं ! उसमें परोपकार की भावना है, ऐसी वह भावना है, जिससे मानवता का विकास संभव है । कुमुद को अमल ने अपनी ओर खींच लिया और उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा—क्यों नहीं, क्यों नहीं, कुमुद, तुम नेक लड़के हो ! तुम किसीके भी प्रिय बन सकते हो । तुम क्या

नहीं बन सकते हो? मनुष्य जैसा चाहता है, वैसा वह बन सकता है, वैसा बनने का तुम्हें रानीमाँ ने अवसर दिया है। मैं भी चाहता हूँ कि तुममें ज्ञान-विज्ञान का विकास हो।

कुमुद कुछ क्षण चुप हो रहा। वह जाने मन-ही-मन सिर झुकाकर क्या-क्या सोचता रहा, फिर सहसा बोल उठा—मगर मैं रानीमाँ के उपकार का बदला कैसे चुका सकूँगा अमल'दा? रानीमाँ तो अपनी माँ है नहीं!

इसबार अमल ने कुमुद की ओर आँखें उठाकर देखा और पाया कि उसकी आकृति पर एक विषाद की हलकी-सी छाया खिंच आई है। उसे लगा कि कुमुद के अंतर में दो विभिन्न चित्र अंकित हो उठे हैं, जिनकी रेखाएँ एक दूसरे से स्पष्टतः भिन्न हैं! अमल ने सोचा कि कुमुद प्रभावती से उपकार तो पा सका है, पर उसके उपकार के भीतर अपनी माँ का जो सहज सुकुमार स्नेह होता है, वह इसे प्राप्य नहीं। और जो प्राप्य है, वह तो अपनी माँ से ही संभव हो सकता था—इस तथ्य को वह कैसे कुमुद के सामने रखे! इसलिए अमल ने उसे सांत्वना के स्वर में कहा—न भी हो कुमुद, पर तुम्हारी रानीमाँ ने तुम्हारेलिए जो-कुछ किया है और वे जो-कुछ कर रही है, उतना शायद अपनी माँ भी कर सकती थी या नहीं—ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता।

कुमुद ने सहसा कोई उत्तर न दिया। अमल ने सोचा कि कुमुद का अंतर अपनी माँ केलिए कितना व्यथित हो उठा है! इस प्रसंग को टालना ही उसे उचित जान पड़ा! वह कुछ कहने ही जा रहा कि इसीसमय रात के भोजन की घंटी बज उठी! अमल ने कहा—अच्छा, कुमुद, चलो, हमलोग भोजन करने चलें। आज तुम्हारी बातों से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। और वे दोनों चल पड़े।

२७

प्रभावती कुछ ऐसी उलझन मे पड़ी रही कि उससे विद्यालय आना कुछ दिनों तक संभव न हो सका। पर वह उलझन कुछ मामूली नही थी! अमल ने चित्र लेने का जो प्रस्ताव उसके सामने रखा था और चित्र के संबंध में आभिजात्य वंश मे जैसी परंपरा चली आ रही थी, उन दोनों के बीच सामंजस्य-स्थापन के लिए वह जिस तरह तल्लीन हो उठी कि उसे खास निश्चय पर पहुँचने के लिए उसके हृदय और मस्तिष्क के बीच निरंतर युद्ध चलता रहा। उसके हृदय में कुमुद ने जो आसन स्थापित कर लिया था, और उस आसन को सुरक्षित रखने के लिए वह जिस तरह अमल के व्यक्तित्व से प्रभावित होती गई थी, उस अवस्था मे, उसकेलिए नकारात्मक उत्तर देना अथवा विद्यालय से संबंध-विच्छेद कर लेना सहज न हो उठा। उसे लगा कि वह अमल की आँखों से गिरती जा रही है, जो अमल अबतक उसके प्रति श्रद्धालु रहा है! आखिर, उसने सोचकर यह निश्चय किया कि विद्यालय के लिए, यदि अमल एक चित्र ही लेना चाहता है, तो वह उसे अवश्य मिलना ही चाहिए और उसे देने में वह कंजूसी नहीं दिखा सकती!

इस निर्णय पर पहुँचने के बाद उसे लगा कि उसदिन कुमुद से मिले विना वह जिसतरह अप्रसन्न होकर झटपट निकल आई थी, उसतरह उसका आना उचित न था और उसदिन से अबतक जो वह वहाँ नहीं जा सकी है—उससे न केवल कुमुद को ही दुख होगा, वरन् अमल के मन में भी कुछ कम अशांति न होगी ! ऐसा सोचकर उसने सवारी के लिए बाहर खबर भिजवाई और अपने आफिस-कमरे से उठकर वह कपड़े बदलने चली गई !

प्रभावती जब तैयार होकर अपने कक्ष से निकली, तब उसे लगा कि कुछ चीज जैसे छूट रही है, जिसे अपने साथ ले चलना जरूरी है। वह रुककर खड़ी हो रही ! उसीसमय उसे याद हो आई और तभी श्यामा से कहा—कुमुद के जो कपड़े बाहर से तैयार करवाकर मँगाये गये हैं, उन्हे निकाल लाओ।

—अभी आई, रानीमाँ !—कहकर श्यामा कपड़े के लिए कक्ष की ओर बढ़ी। प्रभावती नीचे की ओर चल पड़ी। कुछ ही क्षणों के बाद पीछे से श्यामा भी कपड़ों का बराडल लिये झटपट चल पड़ी।

उसदिन श्यामा के साथ प्रभावती जब विद्यालय पहुँची, तब अपराह्न की छुट्टी हो चुकी थी। लड़के खेलने को बाहर निकल पड़े थे। भवन के कामों मे राजमिस्त्री और मजदूर अब भी लगे हुए थे। कुछ ही दिनो में कोठीवाले मकान का रूप कुछ-का-कुछ हो चुका था। प्रभावती की दृष्टि मे उस मकान का दृश्य ही पहले-पहल आया। अमल की योजना के अनुसार ही उस मकान को तोड़ा-जोड़ा गया था ! साधारण-से तोड़-जोड़ कर देने पर वह भवन इतना भव्य हो उठेगा—प्रभावती पहले सोच भी न सकी थी। इसलिए उस भवन को देखते ही वह प्रसन्न हो उठी ! और उसी प्रसन्नता को लेकर जब वह विद्यालय के आगण मे आई, तब जाने किधर से अमल उसके निकट आकर अभि-

वादन करते हुए मुसकुराकर बोला—आइए, पधारिए! कई दिनों के बाद · ··

—कई दिनों के बाद!—प्रभावती ने हँसकर कहा—हाँ, कई दिनों के बाद आने पर यह भवन कुछ-का-कुछ बना हुआ देखने को मिला, अमल जी!

—क्यों, यह आपको पसंद नहीं?

—पसंद!—प्रभावती ने हँसकर ही उत्तर दिया—जिस समय आपने इसका खाका मुझे समझाया था, उस समय मैं अनुमान भी न कर सकी थी कि यह इतना भव्य हो सकेगा; पर आज तो मैं इसे देखकर विस्मित हो उठी हूँ! लगता है, यदि मैं बराबर इसे देखती चलती, तो शायद इतना आज मुझे विस्मित न होना पड़ता!

—हाँ, आपने यह उचित ही कहा—अमल ने समर्थन करते हुए कहा। फिर वे दोनों प्रांगण से भवन की ओर बढ़े। श्यामा वर्कशाप की ओर मुड़ी और वे दोनो जब सामने के बरामदे पर पहुँचे, तब अमल ने फिर आगे कहा—ऐसा लगना स्वाभाविक ही है रानीसाहबा! बात असल यह है कि जो चीज बार-बार देखी जाती है, उसमें देखने की उत्सुकता तो कुछ रह नहीं जाती, इसलिए वह साधारण-सी ही जान पड़ने लगती है! चीज चाहे जितनी अच्छी हो, वह अपनी जगह पर अच्छी ही बनी रहती है; पर देखनेवालों की दृष्टि जब उसमें नवीनता नहीं देख पाती, तब उन्हें लगने लगता है कि जैसे उसका सौंदर्य ही खो गया है!

अमल बोलकर चुप हो रहा, प्रभावती कुछ क्षणों तक कुछ बोल न सकी। दोनों साथ-साथ चित्रशाला की ओर बढ़े। दीवालों पर चित्र लगे हुए थे, और कुछ स्टैंड पर फ्रेम से मढ़े कनवस पड़े हुए थे, जिनपर केवल मोटी रेखाएँ ही डाली गई थीं। यद्यपि दीवालों के चित्र नये नहीं थे और उन्हें प्रभावती कईबार देख चुकी थी; तो भी उन चित्रों मे से एक की ओर

दृष्टि जाते ही प्रभावती ठिठक उठी और कुछ गंभीरता से उसओर देखती हुई बोल उठी—यह चित्र क्या हाल में बनाया है, अमलजी !

—नही तो !—अमल ने उत्तर मे सहजभाव से कहा—इसे तो आप शायद पहले भी देख चुकी होगी, यह तो नया नही, पुराना ही है !

—हाँ, ठीक याद आई !—प्रभावती ने कहा—यह पहले भी ठीक इसी जगह पर देखा था, पर मुझे लगता है कि आज यह चित्र मेरे मन को बहुत अधिक आकृष्ट कर सका ! पर, मै समझ नही पाती कि इस चित्र में कौन ऐसी विशेषता है कि बाहर से यह इतना सुन्दर तो दीख नही पड़ता, फिर क्या कारण है कि यह इतना अधिक आकर्षक हो उठा है ? अमलजी, कुछ अपनी कला की बारीकियाँ मुझे समझा सकेंगे ?

—बारीकियाँ !—अमल ने गंभीर होकर प्रभावती की ओर दृष्टि डाली, फिर गंभीरता से ही उसने कहा—शायद मै ठीक-ठीक बता नहीं सकूँगा ! कहकर अमल ने उस चित्र की ओर एकबार ताका, फिर कहने लगा—मनुष्य के लिए जिसतरह बाहरी अवयव होते है, उसीतरह चित्र के बाहरी अवयव होते है ! पर बाहरी अवयवों को अंकित कर देना ही कलाकार का लक्ष्य नही होता। जो कलाकार बाहरी अवयवों पर फिसल पड़ता है, वह, सच पूछिए तो, कला के साथ व्यभिचार करता है। कलाकृति मे अथवा मनुष्य में जो देखने की बात है, वह उसके आभ्यंतरिक सौंदर्य से संबध रखती है ! जिसतरह मनुष्य के बाहरी अवयव सुन्दर होनेपर भी यदि उसका अंतर कलुषित रहा तो उसके बाह्य सौदर्य का मूल्य कुछ नही रह जाता। उसीतरह यदि कलाकृति की वाह्य रेखाओं के भीतर उसके अंतर का सौदर्य फूट नही सका, तो उसका चाहे बाहरी अवयव कितना ही मनोरम क्यों न हो, वह अपना कोई अर्थ नही रखता। आप इसी चित्र की बात लें ! आप देख रही हैं कि यह एक बूढा का चित्र है—शरीर से जर्जर, पोपले गाल, आँखें धँसी हुईं, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी

हुईं, केवल कुछ हड्डियों का ढाँचामात्र—बाहरी अवयवों के रूप मे कुछ मोटी-पतली रेखाओं की समष्टि ! बस, फिर भी आप इसे देखना चाहती है ! वह कौन-सी चीज है जो आपको आकर्षित करती है ? अब, आप फिर से इस चित्र को अच्छी तरह देखिए और मुझे विश्वास है कि आप स्वय इसकी बारीकियाँ समझ जायँगी !

प्रभावती इसबार उस चित्र की ओर देखने लगी। अबतक उसने उस चित्र को अलग से ही देखा था, इसबार वह कुछ आगे बढी और बड़े मनोयोग से देखती रही। अमल प्रभावती की ओर देखने लगा। और, उसने देखा कि प्रभावती की आकृति की रेखाएँ कितनी द्रुतगति से बदलती जा रही है ! प्रभावती कुछ क्षण के बाद, विस्मय से भरकर, बोल उठी--ओह, मै समझ गई अमलजी, मै समझ गई ! आपने सच ही कहा कि बाहरी अवयव कोई अर्थ नहीं रखते, अंतर को ही देखना होगा !

—अतर ही मुख्य है, चाहे वह मनुष्य का हो या किसी कलाकृति का !--अमल एक साँस मे बोल गया, फिर कुछ क्षण रुककर उसने कहा— मै जानता हूँ कि उस दिन आप कितनी अप्रसन्न होकर यहाँ से विदा हुई थीं ! आपने शायद समझा होगा कि चित्र बनाने का कोई दूसरा अभिप्राय रहा होगा ! इस बात से मै इनकार नहीं कर सकता कि आप का बाह्य सौंदर्य भगवान का वरदान है, कोई भी उच्चश्रेणी का कलाकार इस सौंदर्य को अंकित करने मे अपना सौभाग्य और अपनी तूलिका को धन्य समझेगा ! पर मै केवल आपके सौंदर्य को ही अंकित करने का इच्छुक नही, वरन् आपके भीतर जो नारी बैठी हुई है—नारी से आप कोई दूसरा अर्थ नहीं लें--सच पूछिए तो नारी जो मातृरूपिणी है, उस नारी को मै अंकिन करना चाहता था। विश्वास है, आप मेरा मतलब समझ गई होंगी ! क्यों अब भी शंका की गुंजाइश है ?

प्रभावती सहसा कोई उत्तर न दे सकी। आज एक पुरुष के मुख से अपने सौंदर्य की उसने चर्चा सुनी है और उसने यह भी सुना कि उसका सौदर्य भगवान का वरदान है! इसबात के स्मरणमात्र से उसकी आकृति लालिमा से भर उठी। उसमे अहं का भाव भी प्रखर हो उठा। फिर भी उसने अमल की सारी बातो को हँसी मे उड़ा देने के विचार से कहा—रहने दीजिए शका की बात! कौन ऐसा पुरुष है, जो सौंदर्य के निकट पराजय न स्वीकार करे! आप ही सच-सच बतलाइए—आपका मन क्या इस सौंदर्य पर आकृष्ट नही हो उठा है! क्या आप छाती पर हाथ धरकर सच-सच बतला सकेंगे?

अमल ने छूटते हुए कहा—और यदि अपनी ओर से मै आपसे भी यही प्रश्न करूँ?—अमल के ओठों पर मुसकान छा गई!

प्रभावती पास की रखी छोटी कुर्सी पर बैठ गई और हँसकर बोली—आप बड़े वैसे है।

—वैसे!—अमल ने प्रभावती की ओर ताका।

—हाँ, वैसे!—प्रभावती ने ओठों की हँसी दबाते हुए, कुछ गंभीर, कुछ क्रुद्ध भाव से कहा—यह तो प्रश्न का उत्तर हुआ नहीं! मै आपसे सीधा उत्तर चाहती हूँ।

—पर, सीधे उत्तर पर आप क्या विश्वास कर सकेंगी?

—मगर उत्तर देने के पहले क्या विश्वास भी जना देना होगा?

—हाँ, विश्वास!—इसबार अमल ने गंभीरता से ही कहा—जब विश्वास कोई खो देता है, तब उसे सच-झूठ का पार्थक्य समझाया कैसे जा सकता है? आप ही कहे—यदि मान लीजिए कि मै कहूँ कि नहीं, आपका सौंदर्य मेरा लक्ष्य नही, तो क्या आप मान लेंगी?

—लक्ष्य की पवित्रता के सामने मुझे कुछ कहना नहीं है!—प्रभावती ने सहजभाव से कहा—मै मानती हूँ कि आप इस अर्थ में सच्चे निकलसकते

हैं। क्योंकि आप उच्च कोटि के कलाकार है। आप मेधावी हैं, मनीषी हैं, स्वप्नद्रष्टा है और स्वप्न को साकार करने में लगे हैं, पर सभी समय आप कलाकार ही तो नहीं रहते ? आप मनुष्य है, पुरुष हैं, युवक है···

—मै आपका मतलब समझ गया, बस कीजिए—अमल ने हँसकर कहा—हाँ, आपने जो कुछ कहा—सच कहा। मै युवक हूँ, पुरुष हूँ, मनुष्य हूँ और मनुष्य के गुण-दोषों को, उसकी सबलता और दुर्बलता को, मै मानता हूँ और यह भी मानता हूँ कि गुण से अधिक दोष और सबलता से अधिक दुर्बलताएँ ही मुझमें भरी पड़ी हैं! उस दृष्टि से जब मै आपको देखता हूँ, तब मुझे लगता है कि आपकी एक-एक रेखा को लाख-लाख जनम देखा करूँ, फिर भी मेरे मन की प्यास, लगता है, अनबुझी ही रहेगी! ओह, आपका सौंदर्य····

—तभी आप चित्र खीचने केलिए इतने चंचल हो उठे थे!—प्रभावती ने गंभीर होकर व्यग में कहा—जो बात सच्ची थी, वह आपसे-आप, आपके मुँह से निकल आई।

—नहीं!—अमल ने इसबार जोर देकर अपनी सफाई में कहा—आपने मनुष्य की बात चलाई और मनुष्य के रूप में जो मुझे उत्तर देना चाहिए, साफ-सास कह दिया; पर चित्र के संबंध में यह बात लागू नही हो सकती! अवश्य कलाकार जब मॉडल के रूप में किसीको सामने बैठाकर चित्र अंकित करता है, तब उसमे मनुष्य की दुर्बलता नही रह जाती! मॉडल के रूप में चाहे उसका पात्र सुसज्जित होकर बैठे, चाहे बिलकुल नग्न होकर खड़ा रहे, यदि वह सच्चा कलाकार है, तो उस पात्र के अवयव की रेखाएँ खीचते समय उसका ध्यान अपनी रेखाओं की शुद्धता और स्पष्टता पर ही केन्द्रित रहेगा, उसकी पैनी दृष्टि उसके अंग-प्रत्यंगों का स्पर्श ही न करेगी, बल्कि उसके भीतर घुसकर अपनी चीज को लेना चाहेगी, वह तो न उसका आँख-कान-मुँह-नाक देखेगा

और न उसका मन इन्ही अवयवों पर ही जमा रहेगा! सच तो यह है कि साधारण जन और कलाकार व्यक्ति मे इतना ही अंतर है कि जहाँ एक भोग्य-वस्तु को वासना की दृष्टि से देखता है, वहाँ दूसरा उसे कला की दृष्टि से। क्योकि कला ही सौदर्य है, शाश्वत है और शाश्वत सौंदर्य ही भगवान है! कलाकार की कला जहाँ शाश्वत है, वहाँ मानवी सौदर्य क्षणिक है, नाशवान है!

—मानवी सौदर्य क्षणिक है, नाशवान है!—प्रभावती ने मन-ही-मन दुहराया। वह भी जानती है कि सौदर्य क्षणस्थायी है—नाशवान है; पर इस विषय पर उसने कभी ध्यान नहीं दिया था। फिर भी अमल ने जो उसके सौदर्य के संबंध में लाख-लाख जनम देखने की बात कही, उसके स्मरणमात्र से उसके सारे शरीर में पुलक हो आई। क्षणमात्र में वह अपने-आपमें डूब गई और वह टूटे-फूटे शब्दों में बोल उठी—तुम सच्चे निकले अमल, मै हारी! जब तुम मेरे सौदर्य की एक-एक रेखा के लिए लाख-लाख जनम देखने पर भी प्यासे रहने का अनुभव करते हो, तो मै यह सारा सौदर्य तुम्हें दानकर देना चाहती हूँ! जब कि यह सौदर्य क्षणिक है, नाशवान है ˙ ˙ कम-से-कम तुम्हारी प्यास˙˙˙˙

—आप कह क्या रही है?—चौककर अमल उसकी ओर देखने लगा।

—आप नहीं, तुम कहो अमल! और जो मै कहती हूँ, सच कहती हूँ!

—मै इतनी दूर के लिए तैयार नही! आप कह क्या रही हैं?

—मै सच कहती हूँ, अमल!—इसबार प्रभावती ने अमल की ओर देखा और उसकी ओर देखते हुए कहा—तुम दोनों रूपों में सच्चे निकले! मनुष्य के रूप में जो मेरे सौदर्य से तुम अपनेको भरना चाहते हो, वह तुम्हारा रूप कभी उपेक्षणीय नहीं—आदर की वस्तु है! और

कलाकार का रूप मै तुम्हारे 'बूढापे' चित्र मे देख चुकी हूँ, और मेरे चित्र के रूप में भी तुम्हारा कलाकार सफल रहेगा—यह भी मुझे विश्वास है!

अमल ने सिर झुका लिया, सहसा वह कोई उत्तर दे न सका।

थोड़ी देर दोनों चुप रहे। इसबार प्रभावती ने अपना हाथ बढाते हुए अमल की ठुड्ढी जरा ऊपर की ओर उठाते हुए कहा--क्यों, सिर क्यों झुका लिया, अमल? देखो, जरा मेरी ओर देखो! जिस सौंदर्य से तुम्हारी प्यास कभी मिटनेवाली नही--उस सौंदर्य की ओर देखो! वह सौंदर्य तुम्हारे सामने है।

प्रभावती के स्पर्शमात्र से उसका शरीर घर्माक्त हो उठा, फिर उसे कुछ उत्तर देते न बना। इसी समय बाहर से ऊधम मचाते हुए लडकों की धमधमाती पगध्वनि अमल के कानो पडी और विद्युत्-वेग से खडे होते हुए उसने कहा--क्षमा कीजिए, प्रभावतीजी! देखिये, लड़के सब आ गये हैं! अभी मुझे • • • •

प्रभावती हड़बडाकर उठती हुई बोली—ओह, संध्या घनी हो आई!

दोनों सहजभाव से बाहर आये, प्रभावती प्रागण की ओर बढी, तभी उसने देखा कि श्यामा और कुमुद दोनो हॅस-हॅसकर बातें कर रहे हैं। प्रभावती लपककर उनदोनों के बीच आ पहुँची और कुमुद के केशों पर हाथ फेरते हुए बोली—कुमुद, अब तो तुम अपनी रानीमाँ को भूल ही गये!

कुमुद ने इसबार अपनी आँखें उठाईं और खिलखिलाकर हॅसते हुए कहा--कहाँ, नहीं तो, रानीमाँ!

--नही तो, झूठ!--प्रभावती ने हँसकर कहा।

—झूठ!—कुमुद ने गंभीरभाव से सिर झुका लिया, फिर बोल उठा—यहाँ तो कोई झूठ नही बोलता, रानीमाँ! अमल'दा कहते है कि अच्छे लड़के सच बोलते है—झूठ नही!

—जैसे तुम्हारे अमल'दा सच बोलते हैं!—प्रभावती ने व्यंग से बोलकर हँस दिया।

पर कुमुद ने उसके व्यग की हँसीपर विचार नही किया, तभी वह बोल उठा—हाँ, रानीमाँ, अमल'दा सच बोलते है और तभी तो सभी लड़के सच बोलते है! यहाँ तो कोई बात छिपाई नही जाती! हमलोग जो-कुछ भी करते है, जो-कुछ सोचते है, ठीक-ठीक कह देते है। इससे अमल'दा रंज नही होते, खुश ही होते हैं! ओह, अमल'दा कितने अच्छे आदमी है!

—जैसे अमल'दा तुम्हारे अच्छे आदमी है, वैसे तुम भी अच्छे आदमी हो!

इसबार कुमुद हँस पड़ा और उसने हँसते-हँसते ही कहा—मै तो बालक हूँ, रानीमाँ, आदमी नहीं! जब मै आदमी बनूँगा, तब तुम देखोगी कि मै कैसा बना!

प्रभावती उसकी चतुराई से प्रसन्न हो उठी और वह प्रसन्न होकर बोली—क्या मेरे साथ नहीं चलोगे कुमुद? जबसे यहाँ आए हो, तुम तो फिर गये नही! क्या चलने का तुम्हारा मन नहीं करता?

—मन तो जरूर करता है, रानीमाँ!

—फिर?

कुमुद ने सिर झुका लिया, पर उसकी आकृति क्षणमात्र में विषण्ण हो उठी। प्रभावती ने एक गहरी आह ली और झटपट बोल उठी—अच्छा, कुमुद, तुम यही रहो। मै जानती हूँ कि तुम्हें महल के नाम से कष्ट होता है! अच्छा, श्यामा, इसके कपड़े कहाँ हैं, इसे दे दो!

—कपड़े गाडी पर रखे हैं, रानीमाँ—श्यामा ने कहा।

—अच्छा, आओ कुमुद—कहकर प्रभावती गाडी की ओर बढ़ी, श्यामा और कुमुद दोनों साथ-साथ चले।

बण्डल खोलकर कपडे दिखाते हुए प्रभावती ने कहा—देखो, ये कपडे तुम्हारे लिए हैं, है न पसंद ?

कपडों में कुछ सूती कपडे थे, पर अधिक रेशमी कपड़े थे। कुमुद ने उनमें से सूती कपड़े अलग किये और रेशमी अलग। और, रेशमी कपड़े उनकी ओर बढाते हुए कुमुद ने कहा—ये कपड़े मेरे काम न आएँगे, रानीमाँ ! इन्हे लेती जाइए।

—क्यों ये पसंद नहीं है ?

—ये तो खूब अच्छे कपडे हैं—कुमुद ने कहा—पर ये कपड़े यहाँ तो काम आयँगे नहीं, रानीमाँ ! यहाँ केलिए तो ये जो सूती कपडे आपने दिये है, यही बहुत अच्छे हैं, इनसे ही काम चलेगा !

—काम चलेगा—प्रभावती ने विस्मय से देखते हुए कहा—काम चलेगा, इससे क्या मतलब ?

कुमुद के दोनों हाथ कपड़ों में फँसे थे। उसने तुरंत जवाब नही दिया। उसके बाद धीरे से कहा—यहाँ लड़के जैसे कपड़े पहनते है, वैसे कपड़े मुझे भी पहनने चाहिए रानीमाँ ! विद्यालय में सभी लड़के समान हैं, समान रहने केलिए विद्यालय का नियम-कानून है ! यों कोई कुछ कहता नहीं है; मगर यहाँ मुझे ऐसे कपडे पहनने में खुद शरम आती है ! योंही ऐसे कपड़े बक्स में धरे पडे हैं। फिर जब ये कपड़े यहाँ पहन न सकेंगे ······

—ओह, यह बात है कुमुद !—प्रभावती ने कुछ तीखे स्वर में कहा—तुम्हे अब शर्म भी आने लगी। अच्छी बात है ? श्यामा, रख लो ये कपड़े !

कुमुद ने वे कपड़े श्यामा के हाथ में दे दिये ! श्यामा ने कपडे लेते हुए कहा—क्या हुआ, रानीमाँ, कपडे घर पर ही पड़े रहेंगे ! जब कुमुद घर आयँगे, तब वही उन्हे पहना करेंगे ! क्यों कुमुद, वहाँ तो उन्हे पहन सकोगे ?

क्यों नहीं—कुमुद ने खुश होकर कहा—वहाँ उन्हे जरूर पहनूँगा ! वहाँ केलिए वे बहुत ठीक है ।

—मगर वहाँ तुम आओगे कब, जो वे कपड़े पहन सकोगे ?—प्रभावती ने कहा और कुमुद की ओर देखने लगी ।

कुमुद कुछ क्षण चुप रहा । सहसा वह उत्तर मे कुछ बोल न सका ।

प्रभावती समझ गई कि महल के नाम से कुमुद कुछ उत्तर न दे सकेगा । इससे उसका हृदय बिषाद से भर उठा । लगा जैसे कुमुद उससे बिलकुल अलग होता जा रहा है; पर वह कैसे उसे समझावे कि उसकी बात से उसका हृदय कैसा फटा जा रहा है ! प्रभावती अपनेको रोक न सकी । कुमुद के सिर पर हाथ रखतेहुए बोली—क्यों कुमुद, इस विद्यालय से तुम्हे इतना मोह हो गया है कि महल में तुम जाना ही नही चाहते ? क्या तुम महल मे कभी चलोगे नहीं ? वहाँ भी तो तुम्हारे साथी हैं—मञ्जु, पारो, चंपी ...

—मुझे वहाँ जाने से मना कर दिया है !

—मना कर दिया है ? किसने मना किया है, कुमुद ? क्या अमलजी ने ?—प्रभावती ने आश्चर्य से पूछा ।

—नही, अमल'दा तो किसीको मना नही करते ! किसी बात केलिए वे मना नही करते—कुमुद ने कहा, पर उसकी आकृति धीरे-धीरे विषण्ण होती गई, फिर वह उदास होकर सिर झुकाये खड़ा रहा ।

—तो और मना करनेवाला कौन है कुमुद ?—प्रभावती ने उसकी ओर देखते हुए पूछा ।

—वह नरेन है, रानीमाँ !

—नरेन !

—हाँ, वही नरेन, रानीमाँ ! जो मुझे उस स्कूल में बराबर छेड़ा करता था—कुमुद ने कहा ।

प्रभावती उसके मुँह की ओर कुछ क्षण तक ताकती रही, फिर गंभीर होकर बोली—वह क्या यहाँ पहुँच जाता है ?

—नहीं !—कुमुद ने कहा—जंगल में वह घोड़े पर चढ़कर शिकार केलिए आता है ! एक दिन उससे भेंट हुई, वह बोला—अब क्या है, तुम्हारे लिए नया विद्यालय तैयार हुआ है। तुम समझते हो कि रानीमाँ तुम्हें सारा धन दे देगी, महल रहने को मिलेगा······देखोगे, महल क्या होता है ?

कुमुद आगे बोल न सका। उसकी आँख आँसुओं से भर आई ।

प्रभावती ने उसके सिर पर हाथ फेरतेहुए कहा—और क्या वह कहता था, कुमुद ?

—बहुत-कुछ कहा था—कुमुद कुछ क्षण चुप हो रहा । प्रभावती उसकी आकृति देखकर ही समझ गई कि कुमुद आगे की बात उससे कहना नहीं चाहता, पर प्रभावती की उत्कंठा शांत न हुई ! इसलिए उसने पूछा—हाँ, तो कुमुद, तुम चुप क्यों हो गये ? बोलो—और वह क्या कहता था ?

रहा। पर प्रभावती ने उसकी आकृति से सब-कुछ समझ लिया; फिर भी अपने अतर के विस्फोट को छिपाते हुए बोली—मै उसे देखूँगी कुमुद, तुम आनंद से रहो! तुम्हे यहाँ वह कुछ भी नही कर सकेगा! तुम तो जानते ही हो कि वह बड़ा दुष्ट है! दुष्ट चाहे जहाँ जनमे, दुष्टता तो करेगा ही! खन्दान को इज्जत की उसे परवा क्या? परवा जब उसके माता-पिता को नही रही, तो भला वह गरीब करेगा ही क्या? अच्छा, अभी मै चलती हूँ! अब तो मुझे ही उससे लोहा लेना है! जाओ, तुम पढो-लिखो।

प्रभावती चलने को तैयार हुई; पर चल न सकी। उसने उसी समय अमल को बुलवाया और उसके आने पर उससे कहा—कुमुद कुछ डर गया है, अमलबाबू, डरने का कारण इससे ही मालूम हो जायगा! आप कुमुद को अकेले नही निकलने देगे! इतना ध्यान आपको सदैव रखना ही होगा!

—ध्यान!—अमल ने कहा—ध्यान तो सदा ही रहता आया है; फिर भी मै ध्यान तो रखूँगा ही! क्यों, कुछ बात हो गई है! क्यों कुमुद, तुमने तो मुझसे कभी कुछ कहा नही?

—कहने की ऐसी कोई बात नहीं थी—कुमुद ने कहा—वह तो नरेन की बात थी, अमल'दा!

—अच्छा, नरेन की चर्चा हो रही थी!—अमल ने इस तरह कहा, जैसे नरेन की राई-रत्ती का उसे पता हो! फिर उसने कहा—आप चिंता न करें, कुमुद सदा सुरक्षित रहेगा।

प्रभावती ने जाते जाते कहा—हाँ, इसे सुरक्षित ही रखना पड़ेगा अमलजी!—और प्रभावती की गाड़ी चल पड़ी।

२८

कुमुद नरेश की बातों को जितना स्वयं नहीं कह सका था, उससे अधिक प्रभावती ने अपने-आप समझ लिया। उसकी स्मृति मे बहुत-सी बातें एक-एककर इकट्ठी होने लगी। यहाँ तक कि कुमुद के मिलने के प्रारंभ से आजतक की सारी घटनाएँ उसके सामने प्रत्यक्ष होती चली। उसी संबंध को लेकर अमल की ओर जिस तरह वह उन्मुख होती चली थी और जिस तरह अमल के साथ कला के संबंध में बातें करते-करते अपने सौंदर्य-दान का प्रस्ताव वह उसके सामने रखने में न हिचकिचाई और उस दान को जिस तरह अमल ने अस्वीकृत कर दिया–ये-सब ऐसी बातें थीं, जिसके लिए वह शायद कभी तैयार न होती। पर ये सब बातें गुजर चुकी हैं और गुजरी हुई बातों के स्मरणमात्र से उसे जान पड़ा कि जैसे उसकी साँस रुक रही है, जैसे उसका सारा बदन तवे की तरह गरम हो उठा है। उसका सारा रोष कुमुद पर ही आ टिका। उसे लगने लगा कि कुमुद यदि उसे न मिला होता, तो कहीं अच्छा होता। किस क्षण में उसे उसने देखा पाया? क्यों उसकी ओर वह आकर्षित हुई, क्यों उसे महल में लाया गया⋯ ⋯

प्रभावती उसदिन रास्ते में कुछ बोल न सकी। पर श्यामा छायाकी तरह उसके साथ थी। उसने अनुमान किया कि नरेन के प्रसंग को लेकर रानीमाँ बहुत अधिक खिन्न हो उठी हैं! नरेन को वह अच्छी तरह जानती है और यह भी जानती है कि नरेन दिन-दिन बहुत अधिक बिगड़ उठा है। उसके संबंध में वह बहुत-कुछ जान गई है। यहाँ तक जानती है कि रानीमाँ को लेकर उसका रोष अधिक प्रबल हो उठा है। इतना जानकर भी श्यामा ने अपनी स्वामिनी से कभी बात नहीं चलाई और इसलिए भी नही चलाई कि उसकी स्वामिनी के निकट सच-झूठ का कोई असर नही होता। वे जिसके प्रति जैसा भाव रखती आई है, उस भाव मे तनिक अतर समझना उनका स्वभाव नहीं। पर अभी जिस प्रसंग को लेकर उसने पाया कि उसकी स्वामिनी अधिक विषण्ण हो उठी हैं, तब उससे रहा न गया और वह सहज स्वाभाविक भाव से अचानक बोल उठी—क्यों, रानीमाँ, नरेन को बुलाकर क्यों न कहा जाय!

प्रभावतो अपने-आपमें चौक उठीं। वह मन-ही-मन जो कुछ सोच रही थी, उसमे व्याघात उत्पन्न हुआ। उसने अपने-आपको सँभालकर पूछा—क्या कहा, श्यामा?

श्यामा ने कहा—मैं नरेन की बात कह रही थी! नरेन आजकल बहुत पीछे पड़ा हुआ है! उसे एक दिन बुलवाकर आपको कहना चाहिए।

—हाँ, उसे अब कहना ही पड़ेगा—प्रभावती ने गंभीर होकर ही कहा—पर मुझे लगता है कि सिर्फ उसको कहने से ही काम न चलेगा! मै समझती हूँ कि उसके भीतर गलतफहमी घुस गई है! कुमुद को उसके धमकाने का उद्देश्य तो स्पष्ट यह है कि उसके मन पर इतना भार लादा जाय कि उसे यहाँ से विदा लेनी पड़े!

प्रभावती और भी गंभीर हो उठी। वह कुछ क्षण रुककर बोली—गृह-कलह भयंकर आग होती है। उससे दूसरा घर ही नही जलता,

उसकी चिनगारी चारो ओर पसर कर राख का ढेर कर डालती है! देखती हूँ कि उस आग में न हम बचेंगे, न कुमुद बचेगा और न वह खुद बचेगा!

श्यामा इतनी दूर तक सोच न सकी थी! पर यह पसंग उसीने खड़ा किया था, इसलिए वह भीतर-भीतर काँप उठी। उसकी दृष्टि के सामने आग की लपट जैसे प्रत्यक्ष हो उठी। देहातों में आग लगते कई बार वह अपनी आँखों देख चुकी थी। इसलिए वह घबराकर बोल उठी—मगर उस आग को लगने से तो बचाना ही पड़ेगा, रानीमाँ!

—बचाना!—प्रभावती ने सहजभाव से कहा—बचाना अपने वश की बात नहीं, श्यामा! जिनकी मैं सेविका रही हूँ, जो चौधरीबंश के कुलदेवता हैं, बे ही बचायेंगे! मैं यदि भीतर-बाहर से सच्ची हूँ और यदि मेरे देवता भी मुझे सच्ची समझते होंगे, तो यह आग अपनी जगह पर शांत हो जायगी। इसकेलिए व्यर्थ सिर-दर्द लेने से कोई लाभ नहीं!

गाड़ी फाटक पर आ लगी थी। प्रभावती और श्यामा उतर पड़ीं। दोनों अंतःपुर की ओर बढ़ीं। फिर से दोनों के बीच कोई बात आगे न चली! पर श्यामा ने देखा कि उसकी स्वामिनी की आकृति पर जरा भी गंभीरता की छाप नहीं रह गई है, जैसे कोई चिंता की बात उसके पास फटकने भी न पाई हो! श्यामा अपने-आपमें आश्वस्त होकर अपने काममें लग गई और प्रभावती सीढ़ियों की राह अपने कक्ष की ओर बढ़ी।

प्रभावती अपने कक्ष में आकर कपड़े उतार स्नानागार में चली गई। नहाया, कपड़े बदले, फिर अपने पूजा-कक्ष में पहुँचकर विधिवत् पूजा-अर्चना में लगी रही। पर जिस समय वह वहाँ से लौटकर अपने कक्ष में आई, श्यामा आदेश के लिए उसके कमरे के पास खड़ी दीख पड़ी। श्यामा मन में घबराई हुई थी कि कहीं आजके प्रसंग को लेकर उसकी स्वामिनी बहुत उदास-खिन्न दीख पड़ेगी। पर उसके आश्चर्य का कुछ ठिकाना न रहा

जब उसकी दृष्टि प्रसन्नवदना प्रभावती की ओर जा लगी और उसी समय उसने कहते सुना—श्यामा, आज तो तुम ज्यादा थक गई हो, मुझे थोड़ा दूध ला दो, मैं पीकर तुम्हें छुट्टी दे दूँ और तुम भी खा-पीकर आराम करो। क्यों ?

—जैसी आज्ञा !—कहते हुए श्यामा प्रसन्न होकर वहाँ से नीचे चल पड़ी।

उस रातको श्यामा अपनी स्वामिनी को दूध और सूखे फल देकर जब वापस लौटी तब उसे लगा कि जैसे उसका धड़कता हुआ हृदय कितने आनद से भर उठा है। जैसे उसके सिर का पहाड़ अपने-आप उसके चरणों को चूम रहा है। श्यामा आनंद मे विभोर हो अपने कमरे में आई और बड़े उछाह से भोजन करने में लग गई।

मगर प्रभावती इसके बाद अपने राज-काज मे इतनी तल्लीन हो पड़ी कि जैसे महीनों का काम दो दिन में समेट लेना चाहती हो ! बूढ़े दीवानजी उत्सुक होकर अपनी स्वामिनी से कुछ कहने को तैयार होकर भी इतना भी अवसर न पा सके कि वे कुछ कह सकें। उनकी दृष्टि में कुछ ऐसे काम थे, जिनका समाधान होना ही चाहिए, पर उनकेलिए भी प्रभावती ने उन्हे अवसर न दिया। जिस किसीने प्रभावती को देखा, उसे केवल यही जान पडा कि इधर कुछ दिनों से जो-कुछ मनमें उदासीनता आ गई थी, वह जाती रही। और उसकी प्रतिक्रिया ही है कि स्वामिनी एक क्षण के लिए भी विश्राम लेना नही चाहती। पर इस प्रतिक्रिया के मूल मे जो बात अप्रत्यक्ष थी, उसका आभास श्यामा के अतिरिक्त और किसीको न लग सका, फिर भी श्यामा ने संयम से काम लिया। उसने उन बीती घटनाओ की कभी याद तक न दिलाई और न कभी विद्यालय की चर्चा तक चलाई। उसने समझा कि जैसा चलता है, चलने दो ! कभ-कभी विस्मृति ही आनंद की संवाहिका होती है !

पर यह विस्मृति स्थायी बनकर न रह सकी। नरेन ने जिस सपाट वनभूमि में आग की जो छोटी-सी चिनगारी डाल रखी थी, वह वायु के पंख पर चढ़कर दावाग्नि बन बैठी। पहले तो वह धुआँती रही, फिर वह भभक उठी और देखते-देखते इतनी पसर गई कि उसका रोकना असंभव हो उठा और जब उसने विकराल रूप धारण किया, तब सबसे पहले उन वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध दीवानजी के मानसिक क्षोभ का ठिकाना न रहा और वे उसी क्षोभ से संतप्त होकर अपनी तपस्विनी स्वामिनी प्रभावती के पास आकर मौन भाव से बैठ गये। उनमें उतनी भी शक्ति नहीं रह गई कि खोलकर अपनी जिज्ञासा अपनी स्वामिनी के निकट प्रकट करें। परंतु प्रभावती ने उनकी मौन जिज्ञासा को उनकी खिन्न आकृति से ही समझ लिया और संयत-स्निग्ध स्वर में, गभीर वातावरण को तरल करते हुए, अपनी सहज-सरल मुस्कान लेकर कहा—मैं अपनी ओर से इस संबंध में कुछ भी नहीं कहना चाहती। अभियोग की सत्यता-असत्यता का निर्णायक स्वयं अभियुक्त नहीं हुआ करता। मैं आपको ही निर्णायक मानती हूँ। यदि आपका हृदय यह कहने को तैयार हो कि मैं दोषी हूँ तो कहिए, जो भी प्रायश्चित्त का विधान आप मुझे कह सुनाएँगे, उसका अक्षर-अक्षर मैं पालन करूँगी। प्रभावती इससे अधिक और कुछ नहीं कहना चाहती।

प्रभावती बोलकर चुप हुई, उसने सिर नीचे की ओर झुका लिया। दीवानजी की आँखें छलछला आईं, आँसू के एक-दो बूँद नीचे भी ढलक गए। उन्होंने चादर की खूँट से आँखें पोंछीं; फिर गले को खखारकर साफ किया और तब धीरे से बोल उठे—मैं अपनी रानीमाँ को जानता हूँ! अबतक प्रभावती निष्कलंक चाँद थीं, पर चाँद का निष्कलंक होना उसकी शोभा-संपन्नता को न्यून करना ही समझा जायगा, रानीमाँ! भगवान सह न सके! पर मैं तो अपनी रानीमाँ को जानता हूँ! मुझे

निर्णायक बनने की भी आवश्यकता नही। निर्णायक उनके सिवा दूसरा और कौन हो सकता है, जो सर्वव्यापी है, घट-घटवासी है!

प्रभावती सब-कुछ मौनभाव से सुनाती रही। दीवानजी बोलकर ज्योंही चुप हो रहे, त्योंही प्रभावती की आँखें डबडबा उठी और उसे छिपाने केलिए उसने अपना सिर दूसरी ओर घुमा लिया, पर दीवानजी से यह छिपा न रहा। इसलिए वे फिर सान्त्वना के स्वर मे बोल उठे—उडती हुई बातों केलिए चिंता नही की जाती, रानीमाँ! यद्यपि मै यह मानता हूँ कि आँधी का वेग रोका नही जाता—उसके रोकने का प्रयत्न निरर्थक ही सिद्ध होता है। भीतर की गुमाड जितनी निकल जाय, उतना ही अच्छा, तथापि मे इतना जरूर कहूँगा कि परिस्थिति का सामना धैर्य और साहस के साथ करना ही उत्तम! मानवता की पहचान ठीक ऐसे समय में ही की जाती है! इसमें दुख मानने की कोई बात नहीं है और न घबराकर अन्यथा सोचने की ही आवश्यकता है।

इसबार प्रभावती ने धीरे से सिर उठाकर दीवानजी की ओर देखा और सहज-सरलभाव से कहा—आँधी-तूफान के बीच आप-जैसे व्यक्ति जहाँ अटल-अविचल रूप से, मेरी सुरक्षा केलिए, तैयार है, वहाँ मुझे अन्यथा सोचने का अवकाश नही! मै तो इसी विचार से मरी जा रही थी कि कही आप तो अन्यथा सोच नही रहे है। पर वह मेरी शंका निर्मूल निकली। आज मैने जाना कि आप कितना विशालहृदय रखते है और उस विशालहृदय मे मेरे प्रति ....

—नहीं-नहीं, रानीमाँ!—दीवानजी स्वयं ही बात काटते हुए, स्नेह-गद्‌गद् स्वर मे बोल उठे—यह तो आप अपने गुण से ही कह रही हैं! इस वृद्ध का हृदय जैसा-कुछ रहा है, वह तो यह वृद्ध ही अच्छी तरह समझ रहा है!

इसबार वृद्ध दीवानजी बच्चों की तरह जोर से खिलखिलाकर हँस पड़े!

इस प्रसन्न-प्रशात हँसी में जैसे लगा कि जो कुछ कलुष एकत्र हो उठा था, वह विलीन हो गया हो और उस स्थान पर एक श्वेतकमल खिल उठा हो!

कुछ क्षण तक दोनों चुप हो रहे। न प्रभावती को कुछ कहने का शब्द मिल सका और न वृद्ध दीवानजी ही आगे कुछ बोल सके। पर दीवानजी के सामने अब भी एक ऐसा प्रश्न अछूता पड़ा रह गया था, जिसका निराकरण किये विना वे सहसा उठ न सके। प्रभावती द्विधा में पड़ी हुई थी। उसे लग रहा था कि दीवानजी को और कुछ कहने को जैसे रह गया हो, जिसे वे कह पा नहीं रहे हैं। इसलिए इसबार प्रभावती को ही आगे आना पड़ा और वह बोल उठी--अब जो आज्ञा हो, जो मेरे योग्य हो, कहिए! मे देखूँ, कहाँतक उसका पालन करना मेरेलिए संभव हो सकता है।

—आपसे सभी संभव है, रानीमाँ, सभी संभव है!--दीवानजी चुप हो रहे, फिर खाँसकर कहने लगे—बड़े दरबार का हाल तो आपसे शायद छिपा नहीं है! अदालत से उनपर डिग्री हो गई है। महाजनों के साथ उनका सलूक अच्छा न रहा। नतीजा यहाँतक आ पहुँचा है कि सारी जायदाद कुर्क पर चढी हुई है। आए दिन डुगडुगी फिर जायगी और चौधरीवंश······

—चौधरीवंश जहन्नुम मे चला जायगा—आप यही कहना चाहते हैं न, दीवानजी!—प्रभावती ने झुँझलाहट से जरा ऊँची आवाज में कहा—चौधरीवंश में जब कपूत जन्म ले चुका है, तब उसका नतीजा तो यही सब होना था! हो, उसकेलिए मै क्या कर सकती हूँ!

प्रभावती बोलकर चुप हो रही, पर उसकी बड़ी-बड़ी आँखें सूर्ख हो उठीं, उसके नथुने फूल उठे, उसकी आकृति रंग उठी, ओठ काँपने लगे। पर दीवानजी ऐसे जीव न थे कि वे उठकर चल देते! उन्होंने एकबार

प्रभावतो का उग्र रूप, अपनो आँखें उठाकर देखा, फिर सहमते हुए विनम्र भाव से कहा—आपकी बातें सोलहो आने सही हैं, रानीमाँ ! यदि कपूतों का जन्म नहीं हुआ होता, तो चौधरीवंश को आज का दिन क्यो देखना पड़ता ! पर इस समय सबकी निगाह आपकी ओर लगी है··· और चाहे तो आप उनका उद्धार कर सकती हैं !

—हाँ, मै उनका उद्धार इसलिए कर सकती हूँ कि वे आग भड़काते फिरें ! मै इसलिए उद्धार कर सकती हूँ कि वे मुझे कलंकिनी का गौरव-पूर्ण सम्मान-प्रदान करें ! मै इसलिए उद्धार ·····

—बहुत हुआ, रानीमाँ, बहुत हुआ !—बीच में ही बात काटकर दीवानजी ने अपने कानों को उँगलियों से ढँक लिया ! फिर वे धीरे-धीरे कहने लगे—जिस घराने से आप यहाँ आई है, मै उस घराने को जानता हूँ रानोमाँ ! इस बूढे से वह क्या छिपा हुआ है ? उसके तेज को जिसने देखा हे, वह अबभो कह सकता है कि आन पर किस तरह अपनी जान तक न्यौछावर की जाती है ! आप उसी खान्दान की हैं, जिसके घर की लड़कियाँ जहाँ-जहाँ गई', वे अपनी टेक पर अड़ी रही। उन्होंने जैसा चाहा, अपनी शान को कभी मिटने न दिया ! मै उन लड़कियो की यहाँ चर्चा नही किया चाहता। मेरे सामने जो मिशाल मौजूद है,उसके संबंध में यदि आपसे कुछ कहूँ तो शायद यह न समझा जाय कि मै कुछ मुँह-देखी बात कह रहा हूँ। शायद ऐसा न समझ लिया जाय कि मैं खुशामद की बातें कहने जा रहा हूँ ! मैं ही क्या, आज ऐसा कौन है, जो अपनी रानीमाँ को नहीं जानता है ! रही सूरज पर कीचड़ उछालने की बात ! इसकेलिए मै पहले भी कह चुका हूँ और अब भी कहता हूँ कि साँप के पास जहर है और वह जहर ही दान में दे सकता ह–देता भी है, पर उस गरीब साँप को क्या मालूम कि उस जहर से दुनिया का कितना नुकसान होता है ! काश, वह नुकसान की बात जानता होता !

दीवानजी अपनी बातों को खतमकर आह भरते हुए चुप हो रहे। प्रभावती ने कुछ उत्तर न दिया और न उत्तर देने केलिए उसकी आकृति में कोई हलचल ही दीख पडी। वह जिस तरह सिर झुकाये बैठी थी, उसी तरह बैठी ही रही। दीवानजी ने सोचा कि इस समय उत्तर की प्रतीक्षा में बैठे रहना बुद्धिमानी की बात नही! कुछ सोचने-समझने का उन्हे अवसर तो देना ही चाहिए। ऐसा विचारकर वे उठ खड़े हुए और बडे विनीत स्वर मे बोले—आज व्यर्थ ही मैने आपके जी को दुखाया, रानीमाँ! आजकल मेरा शरीर अच्छा नही रहता, मुझे आराम चाहिए ही! आज्ञा दीजिए

प्रभावती उठ खड़ी हुई और उनके प्रति दोनों हाथ जोड़कर उसने नमस्कार किया। दीवानजी चल पडे और उसके बाद धीरे-धीरे प्रभावती भी अपने कक्ष की ओर बढ़ी।

पर प्रभावती अपने कमरे में आकर किंकर्त्तव्य विमूढ अवस्था मे कुछ क्षण पड़ी रही। उसका विक्षोभ और अतद्वन्द्व उस सीमा पर पहुँच चुका था, जहाँ मानव-बुद्धि कुछ क्षण केलिए बिलकुल जड़ हो जाती है। उसका मानसिक उत्ताप इतना प्रबल हो उठा कि वह अपने कक्ष में ठहर न सकी। वह धीरे से निकलकर सीढियों की ओर बढ़ी और पिछवाड़े के बागीचे की ओर चल पड़ी।

उसदिन अष्टमी का चाँद आकाश के मध्य हँस रहा था, तारे मुस्करा रहे थे, संध्या की सुहावनी हवा मंदगति में प्रवाहित हो रही थी, जिससे आम की मजरियों की भीनी-भीनी गंध बागीचे को सुरभित कर रही थी। वह सुरभित गंध प्रभावती के थके मस्तिष्क में चेतना का संचार करने लगी। उसकी पुरानी स्मृति सजग हो उठी। उस स्मृति मे उसने चौधरीवश के अतीत का मूर्त्त रूप अपनी आँखों के सामने प्रत्यक्ष दीखता-सा अनुभव किया। उसने यह भी अनुभव किया कि नववधू के

रूप में उसको जैसी अभ्यर्थना और समादर एक दिन उसे अनायास प्राप्त हुआ था, वह जैसे कल की बीती घटना-सी उसे प्रतीत हुई ! और उसे लगा कि उस समादर और अभ्यर्थना की मर्यादा जैसे पद-लुंठित हो जायगी, जब चौधरीवंश की नैया भँवर में आ फँसी है ! ··· ··प्रभावती की दृष्टि चाँद की ओर लगी थी, पर उसका अंतर्मन्, चौधरीवंश की भँवर में फँसी नैया की ओर लगा था ! कुछ क्षण पहले उसके मन में जो स्थिरता आने लगी थी, वह भंग हुई । वह विक्षिप्त अवस्था में उठ खड़ी हुई और उसी अवस्था मे वहाँ से निकलकर अंतःपुर लाँघते हुए बाहर निकल पडी ।

यों तो प्रभावती अंतःपुर से बाहर बराबर निकलती रही है; कभी पर्दे के भीतर वह रह नहीं पाई । पास-पड़ोस के रास्ते उसके देखे हुए थे, फिर भी उसका इस तरह निकलकर बाहर जाना कुछ ऐसा जान पड़ा, जैसे कुछ अनहोनी घटना घटित होकर ही रहेगी ! पर ऐसा कुछ घटा नहीं ! वह जिस पथ पर बढ़ी, वह सीधे बड़ी ड्योढी को चला गया है ! उस पथ के दोनों ओर यूकलिपटस, के लंबे-लंबे पेड है, साल के बड़े पुराने वृक्ष हैं ! वह राजपथ है । किसी जमाने में वह कंकरीट का रहा होगा, पर अब उसका वह सौंदर्य रह नहीं गया है ! उसमें स्थान-स्थान पर रोडे निकल आये है । लगता है जैसे सारे शरीर में व्रण फूट पडा हो ! वृक्षों की सघन छाया के बीच-बीच अष्टमी चाँद की चाँदनी ऐसी जान पड़ती है जसे काले शरीर में सफेद कुष्ट के चकत्ते निकल आये हों ! प्रभावती उसी पथ पर बढ़ती चली । आज वह मन के असीम दुख का संबल लेकर ही घर से निकली थी; पर वह अपने संबल को बाँट न सकी ! बड़ी ड्योढ़ी के सिंह-दरवाजे से ही उसने देखा कि सामने के दालान में एक लैंप जल रही है, उसका प्रकाश इतना क्षीण है कि संपूर्ण अंधकार के भीतर वह मानो एक जुगनू टिमटिमा रहा हो ! कहाँ है उस महल का दर्प, वह भ य शृंगार,

वह गौरवोज्ज्वल दीप्ति ! प्रभावती के पाँव शिथिल हो पड़े, उसके मन का सारा विषाद सिमटकर आँखों पर पूँजीभूत हो उठा ! उसी समय शृगालों की कर्कश ध्वनि उसके कानों में गई ! प्रभावती ने मन-ही-मन कहा—भगवान्, यह तेरी कैसी लीला है ! हम अधम प्राणी . ..

प्रभावती ने अपने मन को संयत करने का प्रयत्न किया और फिर से चौधरीवंश के महल की ओर अपनी दृष्टि डाली, पर इसबार उसे विश्वास हुआ कि चौधरीवंश का ध्वंसोन्मुख राजमहल शृगालों का शिविर बनकर ही रहेगा ! अब और कोई उपाय नहीं ! हा-हंत, यही क्या देखना बदा था !

प्रभावती और अधिक ठहर नहीं सकी ! उसके मन में जो रोष था, वह विगलित हो उठा ! उसकी आँखें छलछला आईं और जिसतरह वह अपने महल से वहाँ तक आई थी, उसीतरह वह अपने महल की ओर लौट चली।

२६

उस रात प्रभावती पर कैसी कुछ बीती, इसका उसे कुछ पता न चला। वह चिंता की उस सीमा पर पहुँच चुकी थी जहाँ मनुष्य निर्विकार हो उठता है। उसे स्वयं बोध नहीं कि वह जी रही है या मर गई है; वह सचेतन है या जड़, या यह कि वह संबुद्ध है या विक्षिप्त। पर रात भर इस अवस्था में रहकर कब भगवान के वरदान स्वरूप निद्रादेवी ने उसे अपने आँचल में समेटकर मीठी थपकियों से इस तरह दुलराया कि उसे अपने-आपतक का भी भान न रह गया। रात का आरंभ जिस वितृष्णा और विषाद की स्थिति में हुआ था, उसका अवसान आनंद और उत्फुल्लता में हुआ। वह जब घोर निद्रा से सचेत हुई, तब उसे लगा कि कोयल कूक रही है। कोयल का कूकना आज उसके मन को अच्छा लगा। उसने मन-ही-मन भगवान का स्मरण किया और वह बिछावन से उठ खड़ी हुई।

प्रभावती ज्योंही बाहर आई, श्यामा उसके निकट आकर सिर झुकाकर बोली—क्या नहाने चलेंगी, रानीमाँ?

—हाँ, हाँ, क्यों नहीं—प्रभावती ने आदेश के स्वर में कहा—धुले हुए कपड़े निकाल लो, मैं तबतक तैयार हो लेती हूँ।

और, ज्योंही प्रभावती तैयार होकर आई, त्योंही अपने कमरे से उठकर मंजु अपनी आँखें मलती हुई बाहर निकली और उसने अपनी माँ को देखकर कहा—कल रातको कहाँ चली गई थी माँ, मैं ढूँढते-ढूँढते हार गई, पर कहीं भी तो तुम्हारा पता चले! इन दिनों तुम्हें हो क्या गया है, माँ, कुछ समझ में नहीं आता! सच-सच बताओ न!

मंजु की बातों से प्रभावती को रात की सारी घटनाएँ फिर से चक्र तरह उसकी मस्तिष्क में घूम गईं। उसी सिलसिले में उसे अपना संकल्प भी याद हो आया, पर उस संकल्प के समय, उसे यह भी स्मरण हुआ कि मंजु का उसे जैसे ध्यान ही न रह गया हो! और अभी जिस उद्देश्य को साथ लेकर श्यामा के साथ स्नान करने जा रही थी, उसमें व्यवधान समझकर वह कुछ क्षण केलिए चुप हो रही। पर मंजु को उत्तर देने में विलंब हो रहा था, ऐसा अनुभव कर प्रभावती उसके केशों को सहलाते हुए झटपट बोल उठी—मंजु, तुम ठीक कह रही हो। मैं बाहर चली गई थी, लौटने में देर हो गई।

फिर प्रभावती ने अपने मन का भाव छिपाकर प्रसंग को बदलते हुए कहा—आज इतनी सबेरे कैसे उठ गई मंजु? देखो, पारो उठी है या नहीं। उसे साथ लेकर तबतक फुलवारी में टहल लो या शौचादि से निवृत्त हो लो। तबतक मैं नहाये आती हूँ।

मंजु घर पर ही नहाती आई है। किसी विशेष अवसर पर ही उसे बाहर नहाने को ले जाया गया है, पर आज मंजु जाने क्यों अपनी माँ के साथ जाने को मचल उठी और उसने माँ से कहा—मैं भी चलूँगी माँ! जरा कुछ क्षण ठहर जाओ, तबतक मैं तैयार हो लेती हो! देखो, कहीं चली नहीं जाना!

मंजु झपटकर नीचे की ओर चल पड़ी। प्रभावती सहसा अपनी सम्मति या असम्मति तक भी प्रकट न कर सकी। उसकी दृष्टि मंजु की ओर लगी रही, यद्यपि मंजु बहुत कम ठहर सकी थी, तथापि उतने ही क्षणों मे प्रभावती को लगा कि मजु कितनी बढ गई है·· आकृति कितनी गदराई जान पड़ती है····

प्रभावती चंचल हो उठी। उसे लगा कि जैसे मंजु की इन दिनों वह उपेक्षा करती आई है। उसका अंतर वात्सल्य स्नेह से आप्लावित हो उठा। वह उसकी प्रतीक्षा में वहाँ अटकी न रही, सीढ़ियों की राह नीचे उतरी और स्वयं मंजु की खोज में बाथरूम की ओर चल पड़ी।

पर प्रभावती को अधिक ठहरना नहीं पडा। जितनी वह मंजु केलिए चंचल हो उठी थी, उससे कहीं अधिक मजु अपनी माँ को साथ देने केलिए उतावली थी। हाथ-मुँह धोकर मजु जब स्नानागार से बाहर निकली, तब उसने बाहर अपनी माँ को प्रतीक्षा में खड़ी देखकर कहा—क्या मुझे बड़ी देर लग गई माँ? ऐसा तो······

—ऐसी देर तो नही मजु!—प्रभावती ने इसबार मंजु की ओर अपलक दृष्टि डालते हुए कहा—लो, चलो, मगर अच्छा तो यह होता कि तुम यही नहा-धो लेती! मुझे तो रास्ते मे देर भी हो सकती है। इसके सिवा तुम्हे उतनी दूर तक पैदल ही चलना पडेगा!

मंजु ने समझा कि उसे भुलावा दिया जा रहा है। इसलिए वह प्रतिवाद के स्वर में बोल उठी—ऐसा क्या है कि मै पैदल नही चल सकती! मै सब जानती हूँ! माँ, यदि तुम साथ न ले चलना चाहती हो, तो कहो, पर बहाना तो न करो! मै यह-सब नहीं सुनाना चाहती! चलो, मै चलती हूँ।

मजु बोलते हुए आगे बढ़ चली। श्यामा मंजु और अपनी स्वामिनी के कपडे और पूजा के आवश्यक सामान एक डाली में सजाकर वहाँ आ पहुँची। प्रभावती सभी के साथ बाहर निकल पड़ी।

रक्त और रंग

मंजु आज बहुत दिनों के बाद बाहर निकली थी। पौ फट चुकी थी, पर अभी तक कुहेलिका ठीक से फट नहीं सकी थी। मंजु को लग रहा था, जैसे सारा विश्व स्वप्न में अब भी भींग रहा हो! निर्जन पथ पर दोनों ओर के सघनवृक्षों के बीच कोयल की कुहू, बीच-बीच में, उसके हृदय को आनंद से उद्‌बुद्ध कर देती, उषाकालीन मंद समीरण उसके रोम-रोम में पुलक भर देता, उन्मुक्त वातावरण की प्रशांत सुषमा उसके प्राणों को वासना में प्रक्षेप लगाती! मंजु के हृदय में कहने की बहुत-सी बातें पूंजीभूत हो उठी थीं, जिन्हें अपनी माँ से सुनाने की इच्छा रखते हुए भी उसे अवसर नहीं मिल रहा था। मंजु ने उपयुक्त अवसर पाकर उन्हें सुनाना प्रारंभ किया, पर वह उन बातों को इतनी तेजी से सुना रही थी, जैसे वह आज छोड़कर कल कुछ कह न सकेगी। उसे इस बात की अपेक्षा नहीं थी कि उसकी बातों का क्या-कुछ असर पड़ रहा है, या यह कि उसे हर बात का जवाब मिलना ही चाहिए। पर प्रभावती ने सारी बातें सुनी या नहीं—यह उसकी आकृति से जान न पड़ा। फिर भी उसकी दो-एक बातें अब भी उसके कानों में गूंज रही थीं, वे थीं कुमुद को एकबार अपने घर पर बुलाना! उसने बहुत से चित्र बना रखे हैं, जो कुमुद के चित्रों से भी उत्तम हैं, उन्हें दिखाना, संस्कृत के व्याकरण में उसकी गति और काव्य की ओर उसका आकर्षण, और सबसे अधिक, एक प्रश्न, जिसपर स्वयं प्रभावती ने भी कभी नहीं सोचा होगा, वह यह कि पुत्र क्यों राजपाट चलाने का अधिकारी समझा जाता है और पुत्री क्यों उस अधिकार से वंचित होती है! पर, प्रभावती इतनी बातों का उत्तर देने केलिए तैयार न थी। फिर भी, उसे लग रहा था कि मंजु की जिज्ञासा के भीतर जो उद्दाम कामना प्रस्तुत है, उसे योंही टाला नहीं जा सकता! उचित उत्तर उसे देना ही चाहिए। पर, उत्तर में उसे क्या कहना पड़ेगा—सहसा उसे सूझ न पड़ा। उसे तो लगा कि कुमुद की याद दिलाकर मंजु ने जाने कोई बड़ा अपराध किया है! उसे यह भी जान

पड़ा कि कुमुद मानो कोई ग्रह बनकर उसके जीवन में प्रविष्ट हुआ हो, जिसको लेकर उसे इस अधोगति का शिकार होना पड़ा ! नहीं, कुमुद के संबंध से जो वितृष्णा उसके अंतर्प्रदेश को मथित कर रही थी, प्रत्यक्ष लाभ मंजु को यह हुआ कि प्रभावती उसकी ओर उन्मुख हुई और अपने अंतर के भाव को अंतस्तल में ही संजोकर बाहर अपनी आकृति पर मधुरिमा की दीप्ति लिये हँसकर बोली—ऐसी बात तो नहीं है मंजु ! राजपाट ही क्यों, कन्या तो स्वयं विश्व की सृष्टिकर्त्री और वसुन्धरा की शोभा-सपदा हुआ करती है ! कन्या का स्थान पुत्र नहीं ले सकता, भला वह कैसे ले सकता है, तुम्हीं बताओ !

मंजु अपनी माँ की आकृति की ओर निहारती रही। लगा जैसे उसकी बातें समझने का वह प्रयास कर रही हो । मंजु-जैसी आभिजात्य वंशीया अभिमानिनी कन्या को अपनी माँ की बातों से इतना तो अवश्य हुआ कि मंजु खिल उठी, उसके मन का अवसाद जैसे दूर हुआ और वह प्रसन्नता में सनकर बोल उठी—मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मैं किसी बात में उन्नीस नहीं रह सकती, माँ ! मैं जान गई हूँ कि तुम्हारे मन में इनदिनों कितना कष्ट रहा करता है ! आज यदि मैं पुत्र होती तो दिखला देती नरेन'दा को ! किसी दूसरे की संपत्ति पर दाँत गड़ाकर जाल फैलाने का क्या फल भोगना पड़ता है ! जानती हो, माँ, नरेन'दा कितने दुष्ट हैं ?

प्रभावती नरेन के नाम से चकित-विस्मित हो उठी ! उसे लगा कि हो-न-हो, मंजु सारी बात जान गई है। इसलिए अपने सहज-सरल भाव से प्रभावती ने उसके प्रश्न की अवहेलना करतेहुए दूसरे ढंग से उत्तर में कहा—दुष्टों की कौन-सी कमी है, मंजु ! फिर नरेन का कौन-सा दोष है ? मगर सिर्फ दूसरों का दोष देखते फिरना क्या हमें शोभा देगा ! और यदि दोष ही देखना हो तो क्यों न हम अपने अंदर को टटोलें ?

--तो क्या तुम यह कहना चाहती हो कि मुझमें भी दोष है? क्या मुझमें भी दोष है, इसे तुम बता सकती हो, माँ?

मंजु ने अपनी संपूर्ण दृष्टि अपनी माँ की ओर डाली। ठीक उसी समय प्रभावती ने भी उसकी ओर निहारा! प्रभावती हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही उसने कहा--क्यों नहीं, मंजु! यही क्या कम दोष है कि दूसरों का दोष ढूँढती-फिरती हो!

मंजु चुप हो रही, सहसा उससे उत्तर देते न बना! पर वह चुप-चाप बहुत-कुछ बात मन-ही-मन सोच गई, फिर हठात् बोल उठी—क्या सच को सच बताना दोष है माँ?

—क्यों नहीं—प्रभावती जरा गंभीर होकर बोली–सच को सच कह देना भी कहीं-कहीं दोष में शामिल है मंजु! सच हो और फिर वह प्रिय भी हो वही सच कहा जाना चाहिए और जो सच होते हुए भी अप्रिय हो, वह चाहे जैसा भी सच हो—वह कहा नहीं जाता और वही सच दोष समझा जाता है! समझी मंजु!

रास्ते की बातें यहीं शेष हुई! वे सब सरोवर के किनारे पहुँच गई थीं। प्रभावती और मंजु नहाने-धोने में लगीं। मंजु को आज नहाने में बड़ा आनंद आ रहा था। उसे कुछ तैरना आता था। इसलिए वह रह-रहकर पानी के अंदर डुब्बी लगाकर कुछ दूर निकल जाती और भीतर से मुँह उठाकर प्रत्यक्ष हो उठती और फिर जल पर तैरने लगती! तैरने के समय उसके काले मसृण छितराये केशों के बीच उसका सुकोमल गौर मुखमण्डल ऐसा जान पड़ता मानो शैवा लजाल के बीच प्रस्फुटित रक्त कमल हो। यह रूप प्रभावती को अतिशय भाता और कुछ क्षण आत्म-विभोर होकर उस ओर टकटकी गड़ाये देखती रह जाती, पर कुछ ही क्षणों के बाद अपने से दूर अगाध जल का अनुमान कर उसके मातृहृदय में भय-विह्वलता समा जाती। तब अधीर भाव से उसे पुकारकर कह उठती—ओ

मंजु, अरी ओ मंजु, आगे अगाध जल है, और अधिक दूर नहीं, लौट चलो ! देखो, मुझे देर हो रही है ! और नही—और नही, सर्दी पकड़ लेगी······

और मंजु वही खिलखिला उठती ! लगता, जैसे संपुटित कमल विकसित हो उठा हो ! प्रभावती कुछ क्षण के लिए अपने-आपको भूल बैठती ! यहाँ तक कि वह जिस संकल्प को लेकर आज स्नान करने आई थी, उसका भी स्मरण उसे नही रहा जाता । फिर भी उस निर्मल आनद के भीतर प्रच्छन्न भय-आशका का त्रास लगा ही रहता और तब वह अधीर होकर बोल उठती—देखो, लौट चलो मंजु ! मै अब अधिक ठहर नही सकती !

प्रभावती जल से बाहर निकल अपने कपड़े बदलने मे लगी । तब तक श्यामा नहाकर अपनी स्वामिनी के गीले कपड़े धोने लगी । मंजु ने जब देखा कि अब और अधिक तैरना उचित नही, तब वह बाहर निकली ! श्यामा ने तौलिए से उसका बदन पोंछा, केशों से तौलिए के सहारे पानी निचोड़ा, फिर उसे कपड़े पहनाने लगी ! प्रभावती अपने केशों को झाड़ रही थी; पर उसकी दृष्टि मंजु के उन्मुक्त शारीरिक गठन की ओर लगी थी और उसे यह देखकर कुछ कम कुतूहल न हुआ कि जिसे अभीतक वह निरी बच्ची समझती आ रही थी, उसके अंग-प्रत्यंगों में मासलता के साथ अकुरित यौवन का विकास इतनी सहज गति से किस तरह संभव हो सका ! प्रभावती के रोम-रोम कटकित हो उठे ! उसे लगा कि जैसे वह अपनी किशोरावस्था में पहुँच चुकी हो ! ओह, वह किशोरावस्था ! प्रभावती को वह दिन याद आया, जिसदिन उसे पहली बार अपने वक्षस्थल के उभार का अनुभव हुआ था और किस तरह अपने स्नानागार के आईने मे वह अपने-आपको देखती रह गई थी ! वह दिन, वह दिन······

प्रभावती जाने इस तरह कबतक सोचती रह जाती; पर उसे एक

झटका लगा, जब मंजु स्वयं हँसकर बोल उठी—क्या आज केश थामे ही खड़ी रहोगी माँ! हल्ला तो मचा रही थीं कि देर हो रही है!

—ओह देर!—चौंककर प्रभावती बोली, फिर तुरत अपने-आपको संयत कर, उसने स्वाभाविक भाव में कहा—हाँ, मंजु, कहाँ गई श्यामा, चलो।

और प्रभावती आगे-आगे चल पड़ी। मंजु ने लौटती बार और कोई बात नही छेड़ी! वह जानती है कि स्नान कर लेने के बाद उसकी माँ मन-ही-मन मंत्रोच्चार किया करती है और जबतक मंदिर तथा गृह-देवता के निकट जाकर पूजार्चना समापन नही कर लेती, तबतक किसी से बोलती नहीं!

प्रभावती रास्ते से सीधे मंदिर की ओर मुड़ी और श्यामा के साथ मंजु अंतःपुर की ओर!

उसदिन दोनों स्थानों की पूजार्चना में प्रभावती को अन्य दिनों की अपेक्षा आवश्यकता से अधिक विलंब हुआ! श्यामा कई बार अपनी आहट बचाकर देवालय के वातायन से उसे झाँक आई; पर उसे एकबार भी ऐसा अनुभव नही हुआ कि वह अब शीघ्र लौटेगी! वह अधिक प्रतीक्षा में ठहर न सकी! मंजु को जलपान कराने के बाद चतुश्शाल में भेजकर आप स्वयं अन्य कामों में लग गई।

प्रभावती जब देवालय से बाहर आई, तब दिन काफी चढ़ चुका था। बाहरी दालान में लोगों का समागम जुट चुका था, अत.पुर की सेविकाए हँसती-चहकती हुई अपने-अपने कामों में पिल पड़ी थी! पर श्यामा का ध्यान जितना अपनी स्वामिनी की ओर लगा था, उतना काम पर नहीं। और जब उसने मंथर वेग से अपनी स्वामिनी को अपने कक्ष की ओर आते देखा, तब उसने देखा कि उसकी स्वामिनी के मुखमंडल पर प्रशात शालीनता की मनोहारिता फूट उठी है, जो अपूर्व है।

श्यामा आगे बढ़ी और स्वामिनी के हाथ से पूजा की साजी अपने हाथों थामकर उसका अनुसरण करती चली; पर उसे अनुसरण नहीं करना पड़ा। प्रभावती सिढ़ियों के पास पहुँचकर ज्योंही पाँव आगे रखना चाहती थी, त्योंही उसे कुछ स्मरण हो आया और वहीं रुककर श्यामा से कहा—श्यामा बाहर जाकर देखो तो भला, दीवानजी आये है या नहीं। यदि आये हों तो उनसे कहो, वे तुरत मेरे पाठागार में मुझसे मिलें और यदि नहीं आये हों तो उनके पास तुरत आदमी भेजा जाय। समझी।

—जो आज्ञा—श्यामा ने कहा।

प्रभावती ने आगे पाँव ब ते हुए कहा—जाओ शीघ्र, जैसा हो, मुझे सूचित करो!

—आज्ञा—कहकर श्यामा बाहर की ओर चल पड़ी और प्रभावती अपने कक्ष में आई।

प्रभावती ने अपने बदन से चादर उतारी, फिर शृंगारदान के निकट खड़ी हो, अपने केशो पर कंघी फेरी और उन केशों को सरियाकर जब वह जूडा बाँधने लगी, तभी श्यामा ने वहाँ पहुँचकर सूचना दी कि दीवानजी अतःपुर के कक्ष में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

—प्रतीक्षा!—प्रभावती ने श्यामा की ओर ताका।

—हाँ, प्रतीक्षा ही तो कर रहे हैं!—श्यामा ने सिर झुकाकर अपनी बात दुहराई।

—अच्छा, जाकर उनसे कहो कि मै बहुत जल्द आ रही हूँ। तुम उन्हे कमरे में बैठाओ।

—आज्ञा!—कहती हुई श्यामा चली गई।

प्रभावती ने भीतर से दरवाजा बंद किया, फिर पलंग के गद्दे के नीचे से सेफ की चाबी निकालकर सेफ के पास गई। उसे खोला, फिर

उसने एक छोटी-सी चमड़े की अटैची से एक नोटबुक निकालकर स्थिर चित्त से उसके पन्ने उलटाकर देखा; फिर उसे उसी अटैची में यथास्थान रख अटैची को सेफ में बंद किया और सेफ के पल्ले भिड़काकर चाबी लगाई और फिर उसे पलंग के गद्दे के नीचे यथास्थान रखकर दरवाजा खोला और साड़ी पर चादर डाल सीढ़ियों की ओर चल पड़ी।

प्रभावती जब अपने अंत:पुर के बैठकखाने में पहुँची, तब हड़बड़ाकर दीवानजी उठ खड़े हुए। प्रभावती ने विनम्रभाव से अभिवादन किया। फिर अपने आसन के निकट पहुँचकर कहा—विराजिए, आज मैंने सुबह-सुबह आपको कष्ट दिया!

प्रभावती के आसन-ग्रहण के बाद दीवानजी कुर्सी पर बैठते हुए बोले—कष्ट की कौन-सी बात, रानीमाँ! कहिए, क्या आज्ञा होती है!

—आज्ञा नहीं—प्रभावती ने शात-स्वाभाविक भाव से कहा—आपको कष्ट देने के लिए बुला पठाया है! और वह कष्ट है ... वह यह कि आपने जिस तरह चौधरीवंश की प्रतिष्ठा अबतक अक्षुण्ण रखी है, मेरा विश्वास है, आप उस प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रखने में अपनी शक्तिभर कुछ उठा न रखेंगे!

—यह आपकी मुझपर अगाध श्रद्धा है रानीमाँ!—दीवानजी बोलकर चुप हुए। उनका हृदय प्रभावती की बातों से उच्छ्वसित हो उठा। फिर चौधरी वंश की दुरवस्था का स्मरणकर उनकी आँखें डबडबा आईं और गले को साफकर अपने उच्छ्वसित वेग को थामते हुए बड़े करुण स्वर में बोले—अपनी शक्ति भर की जो बात कही रानीमाँ, क्या इस वृद्ध के शिथिल शरीर में वह शक्ति शेष रह गई है? आप तो स्वयं देख रही हैं! यदि वह शक्ति शेष रहती तो मैं आपको कष्ट न देता। मैं जानता हूँ कि कल जिस अप्रिय प्रसंग को चलाकर आपके कोमल हृदय पर मैंने

कुठाराघात किया था, उसकेलिए रात तक कितना विकल हो पड़ा था! पर, आपही कहिए, उसमें मेरा क्या वश था! मैं यह कैसे देख सकता हूँ कि चौधरी-वंश की मर्यादा धूल में मिल जाय! मैंने उसी मर्यादा के संरक्षण के लिए आपसे निवेदन किया था...और कोई अन्यथा प्रयोजन न था कष्ट देने का! रानीमाँ, क्या आपने इस संबंध में......

——हाँ, इस संबंध में निर्णय कर चुकी हूँ मैं!—प्रभावती: की आँखें चमक उठीं। दीवानजी की उत्सुक दृष्टि उसकी आकृति की ओर लगी थी, जिसे प्रभावती ने अनुभव किया। फिर वह शांत गंभीर स्वर में बोली—आप आज ही उन महाजनों से मिलिए और उनसे कहिए कि प्रभावती डिग्री के रुपये चुका देना चाहती हैं; पर वह इतना अवश्य चाहती है कि खर्च के सिवा सूद में भी उन्हें छूट देनी पड़ेगी! यदि इस बात पर वे राजी हों तो आप मुझसे रुपये ले जाकर डिग्री की भरपाई करके सारे कागज-पत्र उनसे ले आइए!

दीवानजी ने प्रभावती की बातें अक्षरशः सुनीं, फिर गंभीरता पूर्वक विचार करते हुए कुछ क्षण चुप हो रहे। उसके बाद उनकी आकृति चमक उठी, फिर अपनी दाढ़ियों पर हाथ फेरते हुए बोले—मैं समझता हूँ, आपके निर्णय पर उन्हें कुतूहल के साथ प्रसन्नता ही होनी चाहिए; पर मुझे लगता है कि उनकी आँखें सारी जमींदारी पर लगी हुई हैं। वे तो सोचते होंगे कि इतनी बड़ी जायदाद हाथ से निकली जा रही है! वे तो दाँत गड़ाए हुए है! यों तो कानूनन डिग्री की भरपाई लेने के वे अधिकारी है! रही बात सूद और खर्च की छूट के संबंध की!

दीवानजी चिंता में पड़ गए। उनकी आकृति पर जो स्निग्धता परिलक्षित हुई थी, उसके स्थान में उनकी सारी झुर्रियाँ प्रत्यक्ष हो उठीं और फिर से वे बोले उठे—मेरा खयाल है कि जहाँ तक उनके स्वभाव की

जानकारी है, शायद उन्हे आपकी शर्त्तें मंजूर न हो! लोभ तो कुछ कम नहीं है उनमे, रानीमाँ!

प्रभावती की आकृति कठोर हो उठी और वह छूटते हुए कठोर स्वर में बोल उठी—यदि उन्हे यह शर्त्त मंजूर न हुई तो आप उनसे स्पष्ट कह दीजिएगा कि यह मुकदमा हाईकोर्ट में जायगा, और आवश्यक बोध होने पर प्रिवीकौंसिल भी जा सकता है! आप आज ही कोर्ट में मेरी ओर मे उज्रदारी की दरखास्त दे दीजिए, ताकि कुर्की रुक जाय, मै लोअर कोर्ट का फैसला नहीं मानती!

प्रभावती कुछ क्षण चुप रही, फिर बोल उठी—हाँ, इतना और उन महाजनो से कह दीजिएगा, जो नकद रुपये डिग्री की भरपाई में मै देना चाहती थी, उन रुपयों से प्रिवीकौंसिल तक मै देख लूंगी। वे देखें कि चौधरीवंश की संपत्ति की प्रभावती किस तरह रक्षा कर सकती है!

दीवानजी प्रभावती के अंतिम वाक्य को सुन चकित होकर उनकी ओर देखते रहे! आज उन्होंने प्रभावती का जो रौद्र-रूप देखा, वह उनके लिए अप्रत्याशित था। यहाँ तक प्रभावती पहुँचकर दम लेगी—इसके लिए वे तैयार न थे; पर जब उन्होंने कान खोलकर अपनी स्वामिनी का निर्णय सुना, तब उन्हें अतिशय प्रसन्नता हुई और गद्‌गद् कंठ से उन्होंने कहा—रानीमाँ, आप धन्य हैं! चौधरीवंश बच गया, हम बच गये, सारी रिआया आपको दुआ देगी!

प्रभावती उत्तर मे एक शब्द तक न बोली, कुछ क्षण सिर झुकाये हुए पड़ी रही। दीवानजी मौन-गंभीरभाव से उनकी ओर देखते रहे। फिर अचानक प्रभावती उठ खड़ी हुई और बोल उठी—आप अभी सीधे बड़ी ड्योढ़ी मे जाकर सूचित कर दीजिए कि जमींदारी केलिए वे चिंता न करें, डिग्री के रुपये चुका रही है प्रभावती! वे चाहे प्रभावती को जो भी समझें; पर वह प्रभावती कैसे चौधरीवंश को डूबने देगी। जाइए, आप

पर जिम्मेदारी रही। आप दोनों जगह अभी सूचित कर दीजिए। कोर्ट में दर्खास्त भी आज पड़ जानी चाहिए और महाजनों से जो बातें हों, उनकी खबर मुझे मिल जानी चाहिए।

दीवानजी प्रसन्नता पूर्वक उठ खड़े हुए और उन्होंने कहा—हाँ, मै आज ही खबर सुना जाऊँगा, रानीमाँ, आप विश्वास रखिए! हमें प्रिवीकौंसिल तक जाने की जरूरत नही पड़ेगी।

प्रभावती ज्यादा ठहर न सकी! दीवानजी के प्रति नमस्कार-ज्ञापन कर वह वहाँ से निकल बाहर आई और दीवानजी प्रसन्नमुद्रा में अंत:पुर से बाहर की ओर चल पड़े।

३०

प्रभावती ने दीवानजी को अपना निर्णय सुनाकर, और उन्हे उस निर्णय को कार्यान्वित करने के विचार से भेजकर, अपने-आपमें जिस प्रसन्नता का अनुभव किया, उसमें न तो अहंता की उद्दामवासना निहित थी और न अपने दुर्णाम को ढकने या नरेन्द्र को खुशकर उसके विचार पलटने का मायाजाल था। प्रभावती ने अपने सर्वस्व को समर्पित कर केवल एक आन की रक्षा करनी चाही थी, जो महाजनों के निर्दय व्यापार से अपना दम तोड़ रही थी। प्रभावती को आश्वस्त और प्रसन्न होना स्वाभाविक ही था। अवश्य कई दिनों के चिंतन के परिणाम-स्वरूप वह जिस निर्णय पर पहुँच सकी थी, वह उसके उदात्त विचार और आभिजात्य की ऊँची मर्यादा और नारी-जाति की शील-शालीनता जनित नैसर्गिक उत्सर्ग की भावना का द्योतकमात्र था। पर, संसार तो समानगति से नही चलता, उसे अपनी वक्रता ही अभिप्रेत है! प्रभावती इस बात को न जानती हो—ऐसी बात नहीं; पर संगमर्मर-जैसे विशुद्ध मसृण हृदय में उस वक्रता की समाई

कहाँ ? उसने जो-कुछ ग्रहण किया था, स्वीकारात्मक रूप में ही ग्रहण किया। उसके दूसरे पहलू—नकारात्मक—की ओर उसकी दृष्टि कभी गई नहीं ! इसलिए परिणाम के पहले ही उसका मानसिक क्षितिज सचेतन मन पर अपनी रंगीन वर्णच्छटा से तिरने लगा।

और इस मानसिक क्षितिज में जो सबसे पहले उदित हुआ, वह था कुमुद, जो उसके अपने औरस कमल का प्रतिरूप था ! आह, कमल ? बहुत दिनों के बाद कमल की आकृति उसके मानसिक नेत्रों के सामने उदित हुई; जिसने उसके रोम-रोम में एक पुलक—एक सिहरण भर दिया। उसे लगा कि कमल अब कितना बड़ा, कितना सुंदर, कितना नटखट और कितना चंचल हो उठा है ! वह जैसे खीझकर कह रहा है कि माँ, तुम कितना कठोर हो उठी हो, मुझे विद्यालय में डालकर, अपने से विलग रखने की आकाँक्षा लेकर ! जाओ, मै तुमसे नहीं बोलता ! तुम चैन से अंतःपुर का आनंद उपलब्ध करो ! मै विद्यार्थी-जीवन ही अतिवाहित करूँगा—चाहे जो भी कष्ट मुझे उठाना पड़े इस जीवन में ! और उसके उत्तर में लपककर कमल को अँकवार में भरने का प्रयत्न करती हुई प्रभावती कहती है—नहीं, रे कमल, नहीं। तुम कष्ट उठाओ, और मै अंत पुर का आनंद उपलब्ध करूँ ? तुम भूलते हो। बालक कठोर हो सकता हैं; पर माँ कैसे कठोर हो सकती है ! फिर भी कुछ क्षणों के लिए माँ को कठोर बनना पड़ता है, जहाँ उसे अपनी संतान को मनुष्य बनाने का प्रश्न सामने आता है ! ओह, वह प्रश्न उस माँ के लिए कितना कठोर, कितना हृदय-द्रावी होता है वत्स, तुम कैसे उसे जान सकते हो ? देखो, तुम्हारे लिए ही न मुझे विद्यालय की श्री-वृद्धि में सारा समय, सारा ध्यान देना पड़ता है। तुम्हारे लिए ही तो तुम्हारे अध्यापक को खुश रखने की कोशिश करनी पड़ती है ! ओह, संतान के प्रति माँ का त्याग······

—त्याग !—प्रभावती के ओठों पर एक हल्की-सी मुस्कुराहट की रेखा खिंच आई ! जाने वह मुस्कुराहट कैसी थी, क्या थी ?

पर उसी समय पारो एक चिट्ठी लेकर बड़ी उमंग में धमधमाती हुई अपनी स्वामिनी के कक्ष में पहुँची। उसे उम्मीद थी कि उस पत्र को पाकर उसकी स्वामिनी के आनंद का ठिकाना न रहेगा। पर उसने कक्ष के भीतर प्रवेश कर जब देखा कि उसकी स्वामिनी दोनो पैरों को लटकाकर पलंग पर चित्त लेटी पड़ी है और उसका दायाँ हाथ छाती पर और बायाँ तकिये पर सिर के नीचे है, तब वह कुछ क्षण केलिए ठिठकर वहीं खड़ी हो रही। उसे कुछ सूझ न पड़ा कि अब उसे क्या करना चाहिए। पर उसे कुछ करना न पड़ा ! उसकी धमधमाहट मात्र से प्रभावती की तंद्रा टूट चुकी थी, पर उसका स्वप्न अब भी उसकी पलकों में समाये हुए था। वह उस समय भी इस स्थिति मे न आ सकी थी कि उसे सचेतन कहा जा सके ! वह हड़बड़ाकर उठ बैठी और पलंग के निकट सटी पारो को ही अँकवार मे भरकर बोली—देखो, अब न जाने दूँगी ! अब न जाने दूँगी !!

पारो सहसा इस व्यापार को समझ न सकी। यह अप्रत्याशित व्यापार पारो की समझ से बाहर था, फिर भी उसने हँसते हुए कहा—यह शायद कुमुद का पत्र हो, रानीमाँ ! डाकिया ने दिया है।

—पत्र ! कुमुद का पत्र ?—प्रभावती के मस्तिष्क में अब भी स्वप्न की रेखाएँ संपूर्णतः मिट न सकी थी ! वह बोली—कुमुद, कुमुद ! लगा कि जैसे कुमुद को वह याद कर रही हो, जैसे वह कौन है, क्या है !

—हाँ, शायद कुमुद का ही पत्र हो, रानीमाँ !—पारो ने अपनी बात को स्वाभाविक रूप में दुहराया—विद्यालय से लिखा होगा ! शायद आप तो बहुत दिनों से वहाँ गईं नहीं— ! इसीसे······

इसबार प्रभावती अपनी पूर्ण चेतना में लौट आई और कुमुद की संपूर्ण आकृति उसके निकट प्रतिभासित हो उठी और उसे लगा कि अभी जिस कमल को वह स्वप्न में देख रही थीं, वह क्या कुमुद ही था? ओह, कुमुद!

और तभी पारो के हाथ से पत्र लेती हुई बोलीं—क्या यह डाकिया दे गया है, पारो?

—हाँ, डाकिया ही तो दे गया है, रानीमाँ!

—अच्छा जाओ, थोड़ा जल ले आओ; जरा मुँह-हाथ धो लूँ।

पारो बाहर चली गई।

प्रभावती खिड़की के पास आई। उसने लिफाफे का पता देख, फिर उसे फाँडकर छोटा-सा सुन्दर अक्षरों मे लिखा कागज निकाला। उत्कंठित होकर उसे पढ़ने लगी। लिखा था—

"रानीमाँ

"आप बहुत दिनो से यहाँ नही आईं। मैं बाट जोहता रहा। फिर भी आप नही आ सकीं। इसलिए आज यह पत्र लिख रहा हूँ। पहले-पहल लिख रहा हूँ। भूल-चूक हो सकती है, फिर भी आपको यह अच्छा ही लगेगा—मैं यही सोचता हूँ।

"मगर, रानीमाँ, आप क्या यहाँ न आ सकेंगी? आपकी तबीयत तो खराब नही है? या नरेन से आप डर तो नही गईं? क्या मुझसे ही तो कोई अपराध नहीं हो गया, रानीमाँ? शायद इनमें से कोई-न-कोई बात हो, सो ही तो जानना चाहता हूँ रानीमाँ!

"मुझे कभी लगता है कि आप मुझे भूल तो नही गई है! मगर मैं आपके उपकार को कैसे भूलूँ, रानीमाँ! चाहे जो भी कारण हो, आपसे जो स्नेह मिला है, आदर मिला है, वह तो कुछ कम नही! मैं

तो उस युवती सुन्दरी को भी जानता हूँ रानीमाँ, जिसकी चर्चा से आप घबरा उठती थीं। उसकी बात छोड़िये, मै तो आपकी बात कह रहा हूँ। नरेन मेरे पीछे पड़ा हुआ है, वह तो मैं आपसे कह भी चुका हूँ। उसका मुझे डर नही, पर डर तो यह है कि कही आपका मन मुझसे उचट न जाय। मगर, रानीमाँ, आप मेरेलिए चिंता न करें। आपने जो-कुछ मेरेलिए किया है, और जो-कुछ कर रही है और वह मैं कैसे भूलूँ ? आप छोड भी दें, मगर मै तो यह उपकार भूल न सकूँगा कभी।

"आज मंजु की याद आ रही है, पारो याद आ रही है, श्यामा··· और ··· ··और—सभी याद आ रहे है!

"रानीमाँ, आप (कटा हुआ है) तुम कितनी अच्छा हो! सबको अपना समझती हो—अपना समझकर आदर करती हो। तभी तो सभी तुम्हे माँ कहते है! ठीक तुम माँ हो—सबकी माँ! मै अपनी माँ को नही जानता। माँ का आदर नही जानता! फिर मै कैसे कहूँ कि तुम-जैसी अपनी माँ होती या नही—शायद नहीं होती, यह भी मै नहीं जानता, रानीमाँ!

"रानीमाँ, आइए न एकबार! विद्यालय का मकान कितना अच्छा बन गया है। अमल'दा कितने अच्छे हैं रानीमाँ! फिर क्यों नही आयँगी रानीमाँ! नरेन तो कुछ आपका बिगाड़ नही सकता! अच्छा। कुमुद का प्रणाम।"

प्रभावती ने एक ही साँस में उस छोटे-से पत्र को दो-तीन बार पढ डाला। उसे लगा, जैसे कुमुद उसका कितना अपना है, जो निस्संकोच अपने आपको इन कुछ शब्दों मे व्यक्त कर गया है! उन शब्दों की ध्वनि में जितना ही अनुराग है उतना ही विराग; जितना ही अपनापन का मोह है, उतना ही उस मोहजाल को छिन्न करने की आकुलता!·······

प्रभावती सोच रही है—क्या मैंने उसे भूलकर उचित किया है ? क्या मैं वास्तव में उसे भूल गई हूँ ? मै उसे कैसे भूल सकती हूँ, जिसे कमल के आसन पर बैठाया, जो कमल अब मिलने को नहीं—पर कुमुद तो प्रत्यक्ष है. वह मुझे माँ समझता है। लिखता है—उसकी अपनी माँ भी इतना आदर कर सकती या नही—उसे नहीं मालूम ! माँ ? क्या मै वास्तव में माँ हूँ ! सबकी—सारी रिआया की · ··प्रभावती स्वयं अपने-आपमें संकुचित हो उठी और उसके अंतस्तल की आत्मा ने कहा—काश, वह माँ के गौरवमय आसन को वास्तव में गौरवन्वित कर सकती ! वह औदार्य, वह स्नेह, वह त्याग, जो एक माँ केलिए अनिवार्य है, क्या उसके अंतर में अवशिष्ट है ?···· ···कुमुद ने लिखा है—नरेन मेरे पीछे पड़ा हुआ है··· · उसका मुझे डर नही · ·· आपका मन मुझसे उचट न जाय ! प्रभावती ने इस कथन से यह समझा कि नरेन के डराने-धमकाने की प्रतिक्रिया उसपर इतनी अधिक हुई है कि उसे भय होता है, शायद मेरा मन ही उससे न उचट जाय ! प्रभा-वती स्वयं हँस पडी और हँसते-हँसते ही उसके ओठों से निकला—अबोध बालक ! उसी समय उसे लगा एक आत्म-स्नेह से वंचित मातृ-पितृ-हीन बालक इससे अधिक सोच ही क्या सकता है ! यदि वह कमल होता तो क्या नरेन की आज वह परवा करता ? पर प्रभावती सोचने लगी—नरेन की चाहे वह परवा नहीं कर पाता, पर कमल की माँ तो उसकी परवा करती है। यदि नहीं तो वह केवल जनश्रुति के आधार पर विद्यालय क्यों नहीं जाती ? क्यों नहीं अमल से खुलकर वह कह सकती है कि अमल उसे अतिशय प्रिय है—इतना प्रिय है कि जितना और नहीं हो सकता ! अमल—सच ही तो उसने कहा था—यदि लाख-लाख युग उसको वह देखता रहे तो, भी उसकी प्यास नहीं बुझ सकती ! तो क्या उसकी प्यास बुझाने की यह प्रभावती अपने-आपमें क्षमता नही रखती

है ? क्या प्यार करना, प्यार की प्यास बुझाना पाप है ? आखिर पाप क्या है ? पुण्य ही क्या है ? • उसे तभी स्मरण आता है कि शायद उसने कही पढा था—पर-पीडन ही पाप है ! पर-पीड़न !—प्रभावती सोचती है—अमल प्यासा है, किसकी प्यास है उसे ? रूप की ? सौदर्य की, शारीरिक सौदर्य की ? अमल कलाकार है। वह वृद्ध में भी सौदर्य देखता है, उसे अभाव मे भाव और कदर्य में भी सौदर्य ही दीखता है ! आखिर, जिस कला-साधना में अपने-आपकी, अपने वैभव और सपदा की, यहाँ तक कि अपने यौवन और यौवन के उल्लास तक की तिलाजलि दे रखी है, वह कितना स्पष्ट, कितना नैसर्गिक रूप मे कह गया कि लाख-लाख युग तक ·· ··देखता रहूँ ···· फिर प्यास बुझने को नही ! यदि उसको कलुषित भावना होती तो एक पुरुष निसंकोचभाव से एक रूपसी के निकट यह कहने की धृष्टता नही कर सकता ! ·· और क्या नह अमल त्याज्य है, नगण्य है ! वह आखिर क्या सोचता होगा कि प्रभावती उस दिन से फिर न आ सकी, मात्र इसलिए कि एक ओर से जहाँ सौदर्य-दान किया जाता था, वहाँ दूसरी ओर से दान-ग्रहण मे वितृष्णा दिखलाई जाती थी ······

—वितृष्णा !—प्रभावती सोचती चली—क्या वह वितृष्णा थी, विराग था, असमर्थता, भीरुता, संशय अथवा घृणा, उपेक्षा या वह कोई मनोभाव था, जो पुरुष को नारी के आकर्षण में विष से बुझे बाण या सकल दुखो की खान का स्मरण हो आता है · ··तो अमल के लाख-लाख युग तक रूप निहारने की बात केवल मौखिक थी या केवल प्रसन्न करने का एक कौशल !

प्रभावती की दृष्टि में उस दिन की पूरी घटना चित्रपट की तरह प्रत्यक्ष हो उठी और उसने पाया कि अमल की आँखों में अनुराग की रक्तिमा नहीं और न विराग की शून्यता है, वे तो उसी तरह सदा प्रफुल्ल,

सदा स्निग्ध, निसर्ग-मनोहर है, जो कलाकार में ही पाई जाती है। ओह, उसकी आत्मा ने कहा—अमल के प्रति यह समुचित न्याय नही, उसे मानसिक यंत्रणा दी गई है, और वह यंत्रणा उसकी ओर से मिली है, जिसका स्थान उसकी दृष्टि में बड़ा महत् रहा है!

प्रभावती उस पत्र की कल्पना में कहाँ से कहाँ तक प्रवहमान रही और उस वातायन के निकट खड़ी-खड़ी उसका कितना समय निकल गया, उसी बीच पारो जल भी रख गई और कईबार वह कुमुद का समाचार जानने को अतिशय व्यग्र रहकर भी अपनी स्वामिनी से पूछने का दुस्साहस न कर सकी, वह बाहर आकर फिर भी मडराती रही और इस प्रतीक्षा मे रही कि रानीमाँ उसे जाने कब याद करती है!

पर, पारो प्रतीक्षा मे पडी न रह सकी। वह भीतर-भीतर विकल हो उठी थी यह समझकर कि उस छोटी-सी चिट्ठी मे ऐसी कौन-सी समझने की बात रही होगी जिसके लिए रानीमाँ अब भी उस जगह खड़ी है! शायद कुमुद बीमार तो न हो गया, अथवा कोई ऐसी बात तो न घट गई या और किसी लडके से मारपीट तो उसने नही कर ली? फिर और क्या कारण हो सकता है! पारो इसबार अपनेको रोक न रख सकी। वह धीरे से भीतर गई और याद दिलाते हुए कहा—जल तो मै कब की लाई रानीमाँ, सोकर उठी थी, जरा मुँह-हाथ....

और प्रभावती का ध्यान भंग हुआ। उसने घूमकर देखा—देखा, पारो मन की सारी उत्सुकता अपने पलकों मे भरकर उसके सामने आ खडी है! नटखट लडकी!—प्रभावती को याद आया और हँसकर बोली—हाँ, हाथ-मुँह धोना है, पारो! मगर जानती हो, कुमुद ने तुम्हे भी याद किया है!

—मुझे भी याद किया है—पारो लज्जा से काठ होकर कुछ क्षण-चुप रही, फिर बोली—नही-नही।

—नही-नही क्या !—प्रभावती ओठों में मुसकान, पर वाणी में इषत् रोष लेकर बोली—नही-नहीं क्या पारो ? अगर तुम्हे भी उसने याद किया हैं तो इसमें कोई बुराई तो है नही ! मै जानती हूँ, तुम उसे कितना चाहती हो ! और वह भी तो तुम्हे बहुत अधिक मानता है ! क्यों नहीं, पारो, क्या यह झूठ है ?

—नही, आप सच कह रही हैं रानीमाँ !—पारो की उत्कंठा जगी कि कुसुद ने उसके लिए क्या लिखा है। इसलिए उसने सकुचाते हुए पूछा—मगर उसने क्या लिखा है रानीमाँ, यह तो आपने बतलाया ही नहीं।

प्रभावती ने मन-ही-मन वहाँ अभी तुरत चलने का निश्चय कर लिया है। इसलिए उसके प्रश्न की उपेक्षा करती हुई बोल उठी—क्या तुम मेरे साथ चल सकोगी, पारो ? चलो, तुम कुसुद से स्वयं मिल लेना !

—क्या आप अभी चल रही हैं ?—पारो ने उत्कंठित होकर उसकी ओर ताकते हुए पूछा—तब तो सवारी केलिए······

—हाँ, सवारी केलिए कह आओ।

पारो वहाँ से झपटकर चल पड़ी और प्रभावती स्नानागार की ओर बढ़ी।

३१

उस दिन जब प्रभावती अपने अंतःपुर से बाहर निकली, तब सूर्य अस्ताचलगामी हो चुका था। पश्चिमी क्षितिज लालिमा से भर उठा था, हवा का वेग मंद हो पड़ा था, वातावरण में श्लथता आ गई थी; आकाश-मार्ग से पक्षियों का झुण्ड अपने घोंसले की ओर चल पड़ा था और मवेशियों के झुण्ड चारागाहों से गाँव की ओर, धूल उड़ाते हुए, लौट रहे थे! पर प्रभावती पारो के साथ सवारी गाड़ी में बैठी विद्यालय की राह पर बढ़ती जा रही है। बैलों के गले की घंटियाँ रह-रहकर टुनटुना उठती थीं, जो प्रभावती को, उस एकरस ध्वनि में, बहुत अच्छी लग रही थीं! संपनी चारोओर से बंद थी, जो सड़क की धूल से बचने केलिए पारो ने लगा रखी थी, पर गाँव से बियाबान पथ पर आते ही प्रभावती ने अपने सामने की दो खिड़कियाँ खोल डालीं, जिनसे शीतल मंद वायु आ-आकर से प्राणवान करने लगी। संध्या का आगम हो चुका था, पश्चिम क्षितिज की लालिमा फीकी हो चली थी, पूरब की ओर से अंधकार की हलकी-सी चादर जैसे धीरे-धीरे टँकती आ रही थी! प्रभावती ने उन खिड़कियों की राह उन्मुक्त प्रकृति की ओर दृष्टि डाली और उसका हृदय आनंद से आन्दोलित हो

उठा ! और उस आनंद में वह सोचने लगी कि अमल से वह कैसे मिल सकेगी, कैसे उसके साथ सभाषण प्रारंभ करेगी, कैसे वह कह सकेगी कि अमल, तुम मात्र कलाकार हो, मनुष्य नहीं, मनुष्य की व्यावहारिक बुद्धि के विकास का अभाव है तुम में ? शायद बच्चों के बीच रहकर तुम भी बच्चों से अधिक और कुछ नहीं रह गये हो . . .

प्रभावती की गाड़ी अपनी गति में बढ़ती चली और उसका मस्तिष्क उसी गति में सोचता चला, पर आगे वह सोच नहीं सकी। अचानक प्रभावती की दृष्टि कुछ दूर बाँधवाली पगडंडी पर अकेले एक आदमी की ओर जा लगी। पगडंडी यद्यपि अधिक दूर नहीं थी, पर संध्या के धुँधलके में उसने देखकर जो अनुमान किया, उससे वह टकटकी बाँधकर उस ओर देखती रही और उसने पाया कि वह व्यक्ति ठिठका-जैसा रहकर इसी ओर देख रहा है। वह अमल के सिवा और कोई नहीं हो सकता है ! तो क्या विद्यालय जाना निरर्थक सिद्ध होगा ? क्यों न वह उतरकर अमल से मिलती चले . . .

प्रभावती ने गाड़ी रुकवाई और गाड़ीवान से कहा—गाड़ी विद्यालय ले चलो और पारो से बोली—देखो, पारो, कुमुद के मास्टर बाँध पर टहल रहे हैं, मैं उनसे मिलती चलूँ, तबतक तुम कुमुद से चलकर मिलना !

गाड़ी अपने पथ पर आगे बढ़ी और प्रभावती ने उतरकर अपने पैरों में मखमली सैण्डल सँभालकर पहना, फिर अपनी चादर सँभालने लगी ! इस तरह उसे कुछ क्षण अपनी जगह रुक जाना पड़ा; पर उसका रुक जाना अच्छा ही हुआ। उसने जरा अपनी आँखें उठाकर उस ओर देखा और पाया कि अमल उसी ओर बढता आ रहा है। यह प्रभावती के मन को अच्छा लगा। जैसे उसके आभिजात्य संस्कार में पले मन को स्वागत-सत्कार की प्रच्छन्न आकांक्षा को बल मिल रहा हो ! पर रुक जाना संभव न हो सका। उसे लगा कि वह भी उसकी अभ्यर्थना में आगे बढ़े और ऐसा सोचकर वह भी उस दिशा की ओर बढ चली।

अमल को कुछ अधिक आगे बढ़ना पड़ा। वह कुछ दूर से ही दोनों हाथों को जोड़कर नमस्कार जतलाते हुए, अपने ओठों में मुस्कान लेकर बोला—आज असमय मे कैसे इस ओर भूल पड़ी? कहिए, कुशल है न!

—कुशल!—प्रभावती ने बड़े संयत भाव से किन्तु व्यंगात्मक ध्वनि में कहा-कुशल पूछकर आप क्या करेंगे? इतने दिन निकल गये, पर आपसे इतना भी तो न बन पड़ा कि जरा देख तो आयँ! क्या मुझसे कोई ऐसी गलती हो गई थी, जिसका कोई प्रतिकार आपसे संभव न हो सका?

अमल को सहसा उत्तर देते न बना। सच तो यह कि अमल अबतक यही सोचता आ रहा था। उसे स्वय इस बात की चिन्ता थी कि उसने अवश्य कोई ऐसी गलती कर डाली है; जिसके प्रतिकार में प्रभावती ने आना-जाना बंद कर दिया। वह यदि व्यावहारिक आदमी होता, तो तुरत मिलने का प्रयत्न किया होता! पर ज्यों-ज्यों दिन निकलते गये, त्यों-त्यों अमल की चिंता अपने द्रुतवेग से बढती चली और वह इस हद तक बढ चली कि उनकी मानसिक स्थिति और कार्य-सिद्धि के प्रयत्न शिथिल होते चले और वह चिंता के उस छोर पर जा पहुँचा, जहाँ उसके जीवन का नैराश्य मूर्त्त हो उठा था। फिर भी प्रभावती के प्रति उसके हृदय में, हृदय के गहन स्तर में जो एक श्रद्धा-स्नेह का आकर्षण छिपा हुआ था, उसके परिणाम-स्वरूप अपनी कला-साधना में इतना तन्मय हो उठा कि विद्यालय की सीमा से वह बाहर नहीं निकल सका; पर आज जब उसकी सिद्धि साकार रूप धारण कर सकी, तब वह अपनेको उन्मुक्त वातावरण में लाने मे समर्थ हो सका। जब उसकी दृष्टि, टहलते समय, सड़क पर बढ़ती हुई गाड़ी की ओर लगी और उसके कानों ने बैलों के गले की घंटियों की टुनटुन ध्वनि सुनी, तब उसे निश्चय हो गया कि वह गाडी छोटी ड्योढ़ी की है और उसपर आसीन प्रभावती से भिन्न और दूसरा नही हो सकता।

अमल प्रभावती की ओर तेजी से बढ़ चला और प्रभावती भी मंथर गति से कुछ आगे बढ़ी। अमल जब बिलकुल निकट आ पहुँचा तब उसने सहज भाव से उत्तर के रूप में कहा—आप ऐसा न कहे प्रभावती जी, आपसे भूल ...... अमल रुका, फिर अनुनय के स्वर में रुक-रुक कर कहा—ऐसा कहकर मुझे आप लज्जित न करें ! मै किस तरह आपके पास जाने का साहस करता जब......आप बुरा न मानें... जब आप उसदिन बडी नाराज होकर चली गईं ! मुझे अत्यंत खेद है कि मेरे व्यवहार से आपको बड़ा कष्ट पहुँचा, पर मेरा यह उद्देश्य न था कि......

—रहने दीजिए उद्देश्य !—प्रभावती दो कदम आगे बढ़ी, फिर आकाश की ओर देखा और फिर उसकी दृष्टि एकबार चारो ओर फिरी। तत्पश्चात् उसने कनखियों से अमल की ओर देखा। अमल सिर झुकाये ऐसा लग रहा था, जैसे कोई अभियुक्त न्यायाधीश के निकट अपना फैसला सुनने को खडा हो ! प्रभावती अमल की उस आकृति को देखकर बडी मर्माहत हो उठी। फिर अपने व्यंग के भाव को छिपाकर सहज-सरल भाव में बोली—मै उद्देश्य की बात नहीं सुना-चाहती, मगर मै यह जरूर जानना चाहूँगी कि आपका शरीर इतने ही दिनों में ऐसी कृश क्यों हो उठा ! आप क्या उस दिन की बात लेकर ज्यादा सोचते रहे ? आखिर, आपने क्या-क्या सोचा ?

प्रभावती दो डेग आगे बढ़ी, फिर बोली—चलिए न, जरा बाँध की पर टहल जाय ! आप क्या रात-रातभर इस बाँध पर टहला करते हैं ?

अमल हँस पड़ा और हँसते-हँसते ही कहा—कलाकार के लिए इतना सुन्दर स्थान और क्या हो सकता है ? देखिए न, यह ऊँचा बाँध, एक ओर हरे-भरे खेतों के बीच-बीच छोटे बड़े वृक्ष, झाड़ियाँ, लता-कुंज,

दूसरी ओर बहती हुई इठलाती छोटी-सी नदी, उसमें तरह-तरह के पदार्थ और उस नदी के बाद क्षितिज तक फैला हुआ वन ! और ....

—और ऊपर हँसता हुआ चाँद, मुस्कुराती हुई तारिकाएँ और यह शीतल बयार—प्रभावती ने उसकी बातों में जोड़ते हुए कहा—अमलजी, आप तो अच्छा-खासा कवि है, यह तो मै कभी जान नहीं सकी थी ! अच्छा, हमलोग चलें, उस बाँध पर, कुछ क्षण टहलें !

और वे दोनों बाँध की ओर चल पड़े। रास्ते में अमल ने बड़े संयत भाव से कहा—आपने मेरे अधूरे वाक्य को जिस तरह जोड़कर पूरा किया प्रभावती जी, वह कवि से भिन्न और कौन कर सकता था भला ! आपको क्या यह दृश्य मनोरम नहीं जान पड़ता ?

प्रभावती को उसके स्वर में कुछ ऐसी अभिनव वस्तु मिली, जो उसे अच्छी लगी ! प्रभावती की दृष्टि तभी अमल की ओर जा लगी और उसने सिर झुकाकर उसके प्रश्न के उत्तर में कहा—यह दृश्य......पर अंत पुरवासिनी को यह सौभाग्य कहाँ ?

—क्यों ?—अमल जैसे चौककर बोल उठा—इसमे वाधा कहाँ है ? नैसर्गिक दृश्य का उपभोग आप क्यो नही कर सकती ?—अमल कुछ रुका, फिर बोल उठा—और फिर आपके लिए ! जहाँ ललितकला और साहित्य की आप मर्मज्ञ है . . .

अमल अपनी बात पूरी न कर सका। साथ चलते-चलते दोनों कभी निकट आ जाते थे और कभी दूर। बाँध पर चलने की मात्र पगडंडी ही ऐसी थी कि एक आदमी आसानी से निकल सकता था ! दोनों ओर से बनतुलसी, कटकैया, बघंडी आदि जंगलो-झाड़ियाँ उस बाँध को घेरे हुई थीं। उस पगडंडी पर जब वे दोनों पास-पास चलते होते, तब प्रभावती के अंचल का छोर अमल की देह से छू जाता और कुछ ऐसे सौरभ का उसे अनुभव होता, जो उसके मनःप्राण को उद्बुद्ध कर देता और वह सिर घुमाकर

प्रभावती की ओर देखने लगता। और इसी तरह जब एकबार प्रभावती ने उसे कुछ जिज्ञासा-भरी दृष्टि से अपनी ओर निहारते देखा, तब वह बोली—मर्मज्ञ हूँ—यह तो खूब रही! अमलजी, कभी-कभी आप ऐसी बात बोल जाते है, जिसका अर्थ कुछ भी नही होता! आप तो ऐसा कहेगे ही!

—क्या मै झूठ कह रहा हूँ, प्रभावतीजी!—अमल ने प्रभावती की ओर देखते हुए पूछा।

—झूठ का प्रश्न नहीं—इसबार प्रभावती हँस पड़ी और हँसते हुए बोली—पुरुषमात्र शायद ऐसा ही होता है। मानो, उसके पेट का अन्न ही नही पचता, जबतक वह किसी नारी की प्रशसा-स्तुति · ·

प्रशसा· · ·स्तुति—अमल ने हलके रूप से प्रतिवाद के स्वर मे कहा—ऐसी बात नही है, प्रभावतीजी! जो निसर्ग-सुन्दर है, उसे कोई भी सुन्दर कह सकता है! मै तो कुछ अनर्गल नही कह रहा हूँ प्रभावतीजी!

दोनों धीरे-धीरे आगे बढ़ते चले, पर आगे का पथ सजा हुआ नही था। दोनो ओर से छोटी-छोटी झाड़ियाँ उस पथ को घेरे हुए थी! अमल बहुत सावधानी से प्रभावती को बचाकर चल रहा था। हवा का वेग तीव्र हो उठा था। प्रभावती का झीना अचल उस हवा के वेग से तरंगायित हो उठता था, जिससे अमल सावधान होकर भी अपनेको बचा नही पाता! पर उस अंचल से और सिर के कपड़े खिसक जाने के कारण गर्दन पर बँधे हुए हलके जूड़े से जो मादक सुगंध हवा में तिरकर उसके आघ्राण को आप्यायित कर रही थी, उससे उसके मन-प्राण को एक अनिर्वचनीय रस का आस्वादन मिल रहा था, जो उसके लिए नया था! और तभी अमल रह-रहकर उसकी ओर देखने लगता!

उस चाँदनी बिछी रात में, प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में, एकात शात पथ पर, दो विभिन्न प्राणी बढ़ तो रहे थे; पर उन दोनों की मनः-

स्थिति समानान्तर भाव में आ लगी थी और रह-रहकर वह स्थिति एक बिंदु पर केन्द्रित हो जाती, तब सहसा उन दोनों की आँखें परस्पर टकरा जातीं और तभी दोनों के ओठों मे हँसी फूट पड़ती।

और उसी क्षण प्रभावती का अंचल जब झाड़ियों से उलझ उठा, तब उसे लगा कि अमल उसे पीछे से कहीं खींच तो नहीं रहा। और उसकी गति रुक गई, वह ठमक कर खड़ी होगई और उसने उझककर पीछे की ओर देखा, पर उसे जब मालूम हुआ कि उसका अंचल तो झाड़ियों मे उलझा पड़ा है, तब वह बोल उठी--ओह! यह देखो अमलजी ....

और अमल को तभी प्रभावती के रुक जाने का कारण समझ में आया और वह बोल उठा—देखिए, जोर से खींचें नहीं, मैं सुलझा .... और वह बड़े यत्न से, झुककर उस अंचल को सुलझाने लगा! वह उसके मन को अच्छा लगा! सुलझाने के समय प्रभावती ढीली पड़ी और इतनी ढीली कि वह अमल की ओर झुकती चली। अंचल कुछ ऐसे बेतुके ढंग से उलझ पड़ा था कि अमल को सुलझाने में कुछ देर तक लगे रहना पड़ा और प्रभावती को भी उसकी पीठ पर अपने शरीर का भार डाले रहने को बाध्य होना पड़ा। पर उस भार के साथ ही अमल ने अनुभव किया कि जैसे उसकी पीठ पर कुछ ऐसा स्पर्श हो रहा है, जो गर्म है, कोमल है, सुखद है, जब कि उसका सारा शरीर ठंडी हवा से नम हो उठा है! और उस सुखद कोमल और गर्म स्पर्श से उसकी सारी इंद्रियाँ झनझना उठी हैं, उसके रक्त का वेग चंचल हो उठा है। कोई अन्य क्षण होता तो अमल शायद ऐसा चंचल न होता और प्रभावती शायद अपना दैहिक स्पर्श दे न पाती! पर स्थिति ही कुछ ऐसी थी कि दोनों बाध्य थे, विवश थे!

पर जो विवशता उन दोनो को एकत्र करने मे समर्थ हुई थी, वह मात्र संयोग होने पर भी उन दोनों को कुछ ऐसा लगा, जैसे वह उपेक्षणीय

नहीं, अभिप्रेत ही हो। अमल से जितना जल्दी बना, अंचल सुलझाकर उसने अपने शरीर को सीधा करना चाहा, पर प्रभावती उसी अनुपात में अपनेको सीधी न कर सकी, परिमाणत: जो केवल स्पर्शमात्र था, वह दबाव अनुभूत हुआ। तभी अमल ने अपनी गर्दन घुमाकर प्रभावती की ओर देखते हुए कहा—ओह, बेतरह फँस गया था प्रभावतीजी, बेतरह फँस गया था ...

—बेतरह !—प्रभावती के ओठों से निकला, पर अस्पष्ट, आह से बोझिल !

प्रभावती अपने अंचल को सरियाने लगी। पर वह अंचल हवा के वेग से उड़ते हुए अमल को अबतक घेरे हुए था, वह प्रयत्न कर रही थी कि उस घेरे से अमल को शीघ्र मुक्त कर दे ! अमल की दृष्टि प्रभावती के उन्मुक्त वक्षस्थल की ओर निबद्ध हुई। पर प्रभावती अपने अंचल को समेटने में जहाँ प्रयत्नशील थी, वहीं हवा का एक तेज झोंका आया, जिससे अंचल समेटने में वह समर्थ तो हो न सकी, बल्कि उसी समय उसका जूड़ा भी खुल पड़ा और उसके लंबे केश नितम्ब को घेरकर हवा में तिरने लगे ! अमल ने उन केशों के बीच अपनेको भी निबद्ध पाया। वे दोनों आमने-सामने खड़े थे और इतने समीप थे कि उन दोनों में एक दूसरे को निःश्वास-प्रश्वास के आदान-प्रदान का स्पष्ट अनुभव हुआ और उसी क्षण दोनों जाने किस अज्ञात प्रेरणा से एक दूसरे से आबद्ध हो गये—दोनो के ओठ सटे' पर यह दैहिक मिलन क्षणिक था। पर मात्र क्षणिक होकर जिस विद्युत् गति में यह घटना घटी, जिसकी उन दोनोंने कल्पना तक कभी न की थी। उनदोनों के लिए, दोनों के जीवन के लिए, शायद यह घटना अविस्मरणीय हो कर रही !

पर जिस विद्युत्वेग में उन दोनों का मिलन संभव हो सका, उसी वेग में वे दोनों पृथक् न हो सके ! जो क्षण उनदोनों केलिए अपेक्षित हो उठा, यद्यपि साधारण स्थिति में वह नगण्य हो सकता था,

तथापि उनदोनों को लगा जैसे वह क्षण नहीं—घड़ी नहीं—प्रहर नहीं—युग का मिलन हो—शायद कुछ युगों का मिलन हो !

और जब फिर वे दोनों उसी विद्युत् वेग से पृथक् हटे, तब एक ओर अमल सिर नीचे झुकाए पड़ा था और दूसरी ओर प्रभावती अपने छितराये केशों को समेट कर जूड़ा का रूप दे रही थी और अपने अंचल को ज्यों-त्यों यथास्थान रख रही थी।

दोनों मूक थे, दोनों मूर्त्तिवत्, अचल, निश्चल, जड़, जैसे अपने-आपकी कोई सुध न रह गई हो !

पर वह अवस्था दोनों की न रही। और जब वे दोनों अपने-आपमें सचेत हुए, तब उन्हे लगा कि जैसे कोई अप्रिय व्यापार घटित हो गया हो, और ऐसा व्यापार जो क्षोभ, संताप, लज्जा और पश्चात्ताप का कारण हो। अमल किंकर्त्तव्य विमूढ़-सा नीचे की ओर देखता रहा। उसे लगा कि वह किस तरह प्रभावती की ओर अपनी दृष्टि डाल सकेगा ! जो कुछ घट सका है, उसका दायित्व शायद सबसे अधिक जैसे उसीका रहा हो —उसे ऐसा ही लगा। पर उसी समय जब प्रभावती को लगा कि हवा का वेग प्रबलतर होता जा रहा है और वह अपनी अस्तव्यस्तता को सभाल नहीं पा रही है, तब वह अनुताप के स्वर में बोल उठी—ओह, अब नहीं, अब नही, यह निगोड़ी हवा अब आगे न बढने देगी !

और वह बल-पूर्वक अपने अंचल को कमर से लपेटने में लग गई।

अमल प्रकृतिस्थ हो चुका था, वह सिर झुकाकर बोला—क्षमा करेंगी प्रभावतीजी !

—क्षमा !—प्रभावती ओठों में बोली—हमलोग बहुत दूर निकल आये, अमलजी ! अब लौटना ही चाहिए। और प्रभावती ने सामने की ओर देखा और वह सहसा बोल उठी—वह देखिए, सामने से रोशनी दीख रही है। जाने कोई इधर ही·····

—हाँ, इधर ही आती दीख रही है। शायद विद्यालय से ही हमलोगों की खोज में कोई आ रहा है—अमल ने कहा।

इस बार अमल आगे बढ़ा और प्रभावती अपने-आपको संपूर्ण समेट कर अनुसरण करती चली।

वे दोनों ऐसी अवस्था में न थे कि आगे कोई बात चलती। जैसे दोनों को चलने के सिवा और कोई काम ही न रह गया हो! पर दोनो की आँखों के सामने जो दृश्य उपस्थित था, उससे वे अपनेको मुक्त न कर सके। जो घटना तड़ित्‌वेग से संघटित हो चुकी थी, वह ऐसी न थी, जो तुरत भुलाई जा सके! दोनो आत्मस्थ थे, पर दोनों के निकट जो छाया चलती-सी जान पड रही थी, वह ऐसी न थी कि जिसे वे समाधिस्थ कर पाते—शायद कभी कर पा सकेंगे वे—ऐसा जान न पडा।

प्रभावती को लगा कि वह वहीं से लौटकर घर चली जाती, तो अच्छा होता! शायद इससे भी अच्छा तो यह होता कि आज वह घर से आती ही नहीं! फिर वह आई क्यों? किस उद्देश्य से वह घर से चली थी? क्या अमल से मिलना उसका मुख्य काम था? क्या अमल से मिलने के निमित्त ही वह वहाँ तक आ सकी थी? और इन प्रश्नों के उत्तर में उसे जिस मूर्त्ति का रूप सामने दीख पड़ा, वह कुमुद था। कुमुद? हाँ, वह कुमुद है और कुमुद से मिलने और उसे समझा-बुझाकर महल में ले जाने के लिए ही वह वहाँ तक आने को बाध्य हुई थी! उस बाध्यता में कुमुद का वात्सल्य चंचल हो उठा था और उस चंचलता को वह अपने भीतर दबाने में सक्षम न हो सकी थी।

प्रभावती जाने इसतरह कबतक सोचती चलती। उसके पग तो आगे बढ रहे थे, पर उसकी गति इतनी क्षीण थी कि अमल अपने-आपमें कुछ दूर निकल गया था। पर जब अमल को ऐसा भान हुआ कि प्रभावती उसका साथ छोड़ चुकी है और वह स्वयं आगे निकलता जा रहा है, तभी उसने पीछे घूमकर देखा—और देखा कि प्रभावती बहुत पीछे छूट

चुकी है और वह बहुत आगे निकल चुका है। वह रुक गया और रुककर ही कहा—क्यों प्रभावतीजी, आप तो बहुत पीछे छूट चुकी हैं। मुझे तो मालूम ही न था।

प्रभावती आगे बढ़ी, पर वह कुछ बोली नहीं, और न बोलने की कोई आवश्यकता ही समझी उसने। पर जब वह धीरे-धीरे अमल के पास आ पहुँची, तब वह बोल उठी—कुमुद को देखे बिना लौटना उचित न होता और गाड़ी भी विद्यालय में ही रुकी पड़ी है। अन्यथा मैं यहीं से लौट गई होती।

—पर क्या उस तरह लौट जाना—अमल रुक-रुककर बोला—नहीं, प्रभावतीजी, तब मैं यही समझता था कि मेरे अपराध को आप······

इसबार प्रभावती चुप न रह सकी, बोली—अपराध और क्षमा कहकर आप क्यों मुझे बार-बार लज्जित करते हैं अमलजी! जो मात्र एक आकस्मिक घटना थी, उसे तूल देकर······पुरुषमात्र ऐसा ही होता है, किसी बात को पचा नहीं पाता!

अमल अप्रतिभ हो उठा, उससे कुछ उत्तर देते न बना। पर अमल को लगा कि प्रभावती ने उसके अपराध को स्वतः क्षमा कर दिया है! अमल के हृदय से एक भार उतर गया। उसके मन की चिंता तिरोहित हो गई और तभी उसकी आकृति पर प्रसन्नता-प्रफुल्लता की झलक दीख पड़ी।

वे दोनों विद्यालय के निकट पहुँच चुके थे। प्रभावती निश्छल भाव से चलती चली थी। उसके मन में न तो कोई अनुराग-विराग का चिह्न रह गया था और न कुण्ठा या अवसाद की कुछ मलिनता रह गई थी। उसके दृष्टिपथ पर मात्र कुमुद रह गया था और उसके हृदय में उस कुमुद के प्रति एक सुकुमार भावना, जो उसका सर्वस्व हो उठी थी! हवा के

झोंके के साथ, विद्युत्वेग से जो दुर्बलता आकर उसे दबोच गई, वह जैसे आई वैसे ही चली गई थी। वहाँ न प्रभावती रह गई थी, न अमल ही रह गया था और न वह क्षणिक उन्माद का वेग और न वह स्थान और न वह स्थिति!

और प्रभावती ने निर्विकार भाव से अमल के पास आकर शांत-सरल-मधुर कंठ से कहा—यदि तुम अपनेको अपराधी मानते हो अमल, तो मेरा भी कुछ कम अपराध नही!... किंतु मै यह-सब कुछ नही मानती! दुर्बलता कहाँ न दीख पड़ेगी? यदि दुर्बलता न होती, तो न मै मै होती और न तुम तुम होते और न यह संसार संसार होता! फिर रुककर बोली—संसार भी रहेगा, तुम भी रहोगे, मै भी रहूँगी! फिर चिंता कैसी? विषाद कैसा? और पश्तात्ताप क्या?

अमल और प्रभावती दोनों विद्यालय मे आये और प्रभावती ने देखा कि विद्यालय के सभी छात्र प्रसन्नमुद्रा में एक जगह बैठे हैं और उनमे से एक छात्र उठकर व्याख्यान के रूप में हाथ हिला-हिलाकर कुछ कह रहा है .....

अमल ने प्रभावती को बाहर ही रोक लिया। उसी समय जाने किधर से पारो वहाँ आकर बगल में खड़ी हो रही और उल्लास में बोली—आ गईं रानीमाँ! कुमुद बड़ा प्रसन्न है! बुला लाऊँ?

—नहीं, ठहरो!--प्रभावती ने कहा—अमलजी खुद उसे लिवा लायँगे! देखो, वह अपने कक्ष में गये है।

कुछ ही क्षणों के बाद कुमुद भीतर से कूदता-फाँदता हुआ आया और प्रभावती के चरणों में सिर नवाते हुए बोला—आप आ गईं, रानीमाँ!

—तुम पत्र लिखो और मै न आऊँ!—प्रभावती ने कुमुद के सिर पर स्नेह से हाथ रखते हुए प्रसन्न होकर कहा—कहो कुमुद, कोई कष्ट तो यहाँ नहीं होता?

—नहीं, रानीमाँ, कोई कष्ट नहीं।

—तो तुमने पत्र क्यों लिखा था ?

—क्या मैं पत्र भी नहीं लिख सकता रानीमाँ ?

—क्यों नही लिख सकते कुमुद, मना थोड़े ही है; पर किस प्रयोजन से लिखा था ?

—प्रयोजन ? प्रयोजन !—कुमुद रुककर बोला—-प्रयोजन कुछ नही था रानीमाँ! इधर आप बहुत दिनो से आईं नहीं—इसीसे‥ …

—ओह, समझा !—प्रभावती ने उसकी ठुड्ढी हिलाते हुए दुलराया, फिर पूछा—क्या तुम महल में चलोगे कुमुद ? कहो तो, मै अमल जी से कहूँ ।

—नही, रानीमाँ !—कुमुद घबराकर बोल उठा—-अभी नहीं, अभी नहीं ! यों आप जब ले जायँगी, तभी मुझे जाना पडेगा; पर अभी मै जाने की वैसी जरूरत नही समझता ! यही ठीक है, मुझे यही रहने दीजिए रानीमाँ !

अमल ने अपने कक्ष मे आकर प्रभावती से कहा—-क्या आप अभी चली जायँगी या कुछ क्षण और रुकेंगी ?

—आप रोककर और क्या करेंगे, अमलजी ! एक तो योंही काफी से अधिक विलंब हो गया है ! फिर आप तो जानते हैं‥‥‥

—तो क्या आप इतना डरती हैं, प्रभावतीजी ?

प्रभावती ने हँसकर कहा—कभी-कभी डरना भी आवश्यक होता है, कलाकार महाशय ! पर कौन डरता है और कौन नहीं—यह तो आप ही अच्छी तरह बता सकेंगे ।

प्रभावती हँस पड़ी, फिर वह अपनी गाडी के पास आई । कुमुद

ने उसे प्रणाम किया, फिर उसकी पारो से आँखों-आँखों में बातें हुईं ! अमल ने गाड़ी पर बैठी हुई प्रभावती के हाथ में गोल-सा लंब कागज का बण्डल देते हुए कहा—यह मेरी ओर से आपके दान का प्रतिदान है, प्रभावतीजी, इसे सभालकर अपने साथ लेती जाइए ! देखिए, फिर कब भेंट होती है।

—प्रतिदान केलिए अशेष धन्यवाद !—प्रभावती ने हँसकर कहा और गाडी चल पडी । पर अमल ने प्रभावती को कहते सुना—भेंट होगी अमलजी, जरूर होगी · ···

३२

उस रात निश्चिंत होकर प्रभावती जब अपने शयनागार मे आई, तब उसे अमल के दिये हुए बंडल का स्मरण हो आया। उसकी दृष्टि पास की टेबिल की ओर गई, जहाँ पारो ने आते ही उसे सहेज कर रख छोड़ा था। प्रभावती की उत्कंठा सजग हो उठी। पर, वह कुछ अनुमान न कर सकी कि प्रतिदान में अमल ने कौन-सी ऐसी दुर्लभ वस्तु उसे भेंट की है। उसने प्रकाश केलिए बत्ती उसकाई, फिर उस बण्डल के रेपर (आवरण) को खोला, उसके बाद उस गोल किये हुए कागज को पसारा, और उसपर अंकित चित्र की ओर दृष्टि पड़ते ही वह आश्चर्य-चकित हो गई! उसकी दृष्टि उस चित्र पर पड़ी-की-पडी रह गई। और उसका मन अपने संपूर्ण अंग-प्रत्यंग की एक-एक रेखा के सौंदर्य पर मुग्ध होता चला।

प्रभावती ने फिर से उस चित्र की ओर दृष्टि डाली और उसकी बारीकियो पर विचार कर सोचने लगी कि अमल ने कितनी गहराई से उसके अग-प्रत्यगों की एक सूक्ष्म-से-सूक्ष्म रेखा का अध्ययन किया है, कितनी गहरी निगाह डाली है उसने, जब उसने उस चित्र में एक

स्थान-विशेष के छोटे-से तिल को भी उचित स्थान पर अंकित करना नही छोड़ा ! प्रभावती गहरी दृष्टि डालकर देख रही है कि उस चित्र के प्रत्येक अवयव पर कलाकार अमल ने अपनी सूक्ष्मदर्शिता का जो अपूर्व परिचय दिया है, वह उसकी उदात्त प्रतिभा और उसकी अटूट तन्मयता का परिचायक है••• ••

प्रभावती को जहाँ उस चित्र की सजीवता पर आतरिक उल्लास हुआ, वही अपने अंग-प्रत्यंगो के पुरुषविशेष से तल्लीनता-पूर्वक अव-लोकन और पर्यवेक्षण के परिणाम-स्वरूप अंकित रेखाओ और रंगो के अद्भुत सम्मिश्रण से निर्मित उस चित्र को देखकर स्वयं लज्जा मे गड़ गई ! और, इतनी अधिक गड़ गई कि फिर वह उस चित्र की ओर देखने का साहस तक न कर सकी ! उसे अपने-आपपर घृणा हो आई और उसने उसी समय बत्ती बुझा दी और पलग पर चित्त हो, आँखें मूँदकर, लेट गई ।

पर अँधकार मे आँखे चाहे जितनी मुँदी जायँ, केवल आँखें तो देखती नहीं है ! प्रभावती ने उस अंधकार मे, आँखें मूँद लेने के बावजूद, अपने सामने जिस चित्र को साकार रूप मे देखा, वह स्वयं प्रभावती थी—प्रभावती के उद्भासित मुखमडल पर हँसती-मुस्कराती-सी प्रसन्न-प्रफुल्ल दो बड़ी-बड़ी आँखें जो घनी बरौनियों से ढँकी हैं, उसकी लंबी खिंची भवें, उसकी मोहक नासिका, उसके मद-भरे पतले लाल अधर, उसका छोटा-सा चिवुक और चिवुक के कुछ ऊपर छोटा-सा काला तिल, उसकी शंख-जैसी ग्रिवा, उसका उन्नत सुपुष्ठ वक्ष स्थल ••• प्रभावती के अंग-प्रत्यंगों की समष्टिगत इकाई का माधुर्य अपने-आपमे, अपने सामने, प्रत्यक्ष हो उठा। उसने मनोमुग्धभाव से उस चित्र को मानसिक क्षितिज में उद्भासित देखा, तभी उसे स्मरण हो आया कि अमल ने उसके मुख की चाँद से तुलना, चाहे हँसी मे ही,

की हो, पर वह भूल नहीं थी ! इस विचार से वह आनंद में उद्बुद्ध हो रही। कुछ क्षण के बाद, वह उसी उद्बुद्धता को लेकर सो गई।

प्रभावती तड़के उठ पड़ी और नित्य-नैमेत्तिक कार्य-संपन्न कर जब स्नान संध्यार्चना आदि से फ़ुर्सत पाकर अपने कमरे में आई, तब उसकी दृष्टि अनायास ही टेबिल पर पड़ी हुई उसी तस्वीर पर चली गई ! उसे लगा कि जैसे वह किसी नई चीज को उत्कंठित दृष्टि से देख रही हो। उसे स्मरण भी हो आया कि उस चित्र में, चित्रकार ने कितनी सूक्ष्मता से अपने 'मॉडल' का पर्यवेक्षण कर, अपनी कला की सार्थकता उपस्थित की है ! प्रभावती ने सहजभाव से उस चित्र को अपने हाथ में उठा लिया और पलंग के सिरहाने की ऊँची उठी हुई पट्टी से उँगठकर उसे देखने लगी !

पर, यह क्या ?—प्रभावती के अंतर में जैसे कोई बोल उठा—यह चित्र तो रात के चित्र से बिलकुल भिन्न है ! प्रभावती फिर से तन्मयतापूर्वक उस चित्र को देखने लगी। इसतरह कुछ ही क्षण देखते रहने के बाद उसकी आकृति में सुषमा और शालीनता का माधुर्य भर उठा, उसकी आँखें कोमलता से आर्द्र हो उठीं। इसबार उसे अपने चित्र मे उसके मादक सौंदर्य के स्थान में एक ऐसी वस्तु का पता चला, जिसकी वह कल्पना तक न कर सकी थी ! उसने उस अकल्पित वस्तु में पाया कि बाह्य सौंदर्य के रूप में जो प्रभावती चित्रित की गई है, उसके भीतर मानो अपनी सारी निष्ठा और प्रतिष्ठा के साथ एक सहज सरल नारी है, जिसकी आँखों मे वात्सल्य का अमल-निर्मल स्नेह है, जिसके ओठों मे किसी वत्स के चुम्बन से प्राप्त अरुणिमा की आभा सद्य स्पर्श करती-सी जान पड़ती है, जिसके पीनोन्नत पयोधरों में स्नेहमयी जननी की कसक है, जो दुग्ध-दान से ही मिट सकती है ···· ओह, वह नारी ··· प्रभावती को लगा कि वह चित्रकार केवल प्रेमल

ही नहीं है, जिसने उस सौंदर्य के भीतर एक नारी-मूर्त्ति का जो रूप भर दिया है, वह तो प्रेम का सुरा ढालनेवाला व्यक्ति नहीं, वह तो किसी श्रद्धालु भक्त का, मूर्त्तिमयी माता के चरणों में, अर्घ्य-दान है! ओह, प्रभावती कितनी अंधी हो उठी थी, जिसने उस चित्रकार के प्रति इतना गर्हित अन्याय किया है!—अन्याय उसके प्रति, जिसने उसके सौंदर्य को वासना से रंजित नहीं देखा, जिसने उस सौंदर्य में मातृमूर्त्ति की परिकल्पना कर अपने उदात्त हृदय का परिचय दिया है! तभी प्रभावती को स्मरण हो आया कि अमल ने यथार्थ ही कहा था—सौंदर्य देखने की वस्तु है, स्पर्श की नहीं! सौंदर्य उस बड़े चित्रकार का स्मरण कराता है, जिसने उसे गढ़ने में अपनी शक्ति और चारुता का परिचय दिया है! ... और तभी तो अमल ने उसके पैर पकड़ लिये थे और कहा था—मैं अवश्य आपके सौंदर्य को अपने नेत्रों में भरना चाहता हूँ, क्योंकि मैं उससे कुछ पाता हूँ और वह 'कुछ' ऐसी वस्तु है, जिसे मैं व्यक्त नहीं कर पा रहा, जो मुझे प्रेरणा देता है, मुझमें प्राण भरता है मुझे विपथ से हटाकर सुपथ पर लगाता है और जब मैं अकर्मण्य हो उठता हूँ, तब मुझे उससे इतना बल मिलता है कि मैं अपनेको भूलकर अपने कर्त्तव्य में डूब जाता हूँ! फिर मैं कैसे न कहूँ कि उस सौंदर्य को लाख-लाख युग तक मैं निहारता रहूँ ·

और प्रभावती के नेत्रों पर उस समय का सारा चित्र अंकित हो आता है और उस अंकन में वह पाती है कि अमल कितना निष्ठावान युवक है, जो अपनी कला-साधना के साथ मानव-सेवा की धूनी, एक सफल तपस्वी के रूप में, जगा रहा है—और उसी अमल'दा के पास उसका कुमुद मनुष्य के रूप में तिल-तिलकर विकसित हो रहा है—

—मनुष्य!—प्रभावती की दृष्टि अबतक उसी चित्र पर गड़ी हुई है; जिस मातृरूपिणी नारी का मूर्त्त रूप उसके हृदय में उदित हो चुका है। उसके भीतर की वह नारी कुमुद के प्रति, कुमुद के स्नेह के प्रति,

सजग हो उठती है, तभी प्रभावती को लगता है कि जिस दिन कुमुद पूर्णरूप मे मनुष्य बनकर उसके सामने आयगा, उसदिन वह हँसते हुए पुकार कर कहेगा—कहाँ हो माँ, देखो मै आ गया!

—माँ!—प्रभावती की आँखे सजल हो उठती हैं, ओठ संकुचित हो उठते हैं, फिर उनपर धीरे-धीरे मुस्कान की रेखा खिंच आती है, और उसका अतर कह उठता है—कुमुद कितना अच्छा है! इतने दिनों के घोर परिश्रम क बाद आज उसके मुँह से प्यार से सना 'माँ' शब्द निकला ..

पर उसी समय वातायन के पथ से हवा का एक हलका-सा झोंका आता है, जिससे वह चित्र टेबिल से खिसककर नीचे गिर जाता है और कही दूर से कुत्ते की कर्कश ध्वनि उसी हवा मे मनकर उसके कानों से टकरा उठती है और उसी समय उसे लगता है कि जैसे अधकार से उसका वह कक्ष भर उठा है और कोई अप्रत्यक्ष अनैसर्गिक वस्तु उस झोंके के साथ उस कक्ष में प्रवेश कर गई है! प्रभावती भयभीत हो उठती है, उसके अंगों मे कंपन हो उठता है, उसके मदभरे ओठ कुम्हला उठते है, वह आँखें बंदकर उसीतरह, अपने सारे अंग-प्रत्यंगों को सिकोड़ कर पड़ी रहजाती है··· ··

और उसी समय बाहर से श्यामा उस कक्ष में प्रवेशकर धीरे से पुकारती है—रानीमाँ!

प्रभावती आँखें खोल देती है और दोनों हाथों से उन्हे मलती हुई कहती है—ओह, श्यामा!

—आज्ञा, रानीमाँ!—श्यामा प्रभावती के उदास मुखमण्डल को जरा गौर से निहारते हुए कहती है—क्या मैने यहाँ आकर कुछ कष्ट तो नही दिया, रानीमाँ!

—कष्ट !—प्रभावती अपने-आपको सँभालने लगती है और फिर श्यामा की ओर निहारती हुई कहती है—नही तो श्यामा ! बल्कि, तुमने अभी आकर अच्छा ही किया······

—क्या अच्छा किया रानीमाँ !—श्यामा कुछ उत्साहित होकर हँसती हुई कहती है—मै तो क्या कुछ अच्छा कर सकी ! आप क्या कह रही हैं, रानीमाँ !

प्रभावती सँभलकर उठ बैठी और श्यामा ने पलग के नीचे गिरे हुए चित्र को उठाया और सहजभाव से उस चित्र पर उसकी उड़ती हुई दृष्टि जा पड़ी, तभी वह उल्लास में भरकर बोल उठी—ओह, यह क्या रानीमाँ, आपका चित्र ! कितना अच्छा, कितना मोहक !

श्यामा उस चित्रको फिर से तल्लीन होकर देखती हुई बोली—किसने बनाया है, रानीमाँ ! ओह, कितना सजीव चित्रांकन है !

—क्या तुम्हें अच्छा लग रहा है, श्यामा ?

—क्यों नहीं-क्यों नहीं, रानीमाँ !—श्यामा उसी उल्लास में कहती है—ठीक आप-जैसा यह चित्र है। लगता है, जैसे इस छोटे-से कागज पर आप पूरी-पूरी उतर आई हैं ! कहाँ मिला यह चित्र, रानीमाँ ? किसने बनाया है इसे ?

प्रभावती की आँखें रस-सिक्त हो उठी। उसने हँसकर कहा—पहले तुम यह तो बताओ कि क्यो यह चित्र तुम्हें अच्छा लग रहा है। क्या अच्छाई है इसमें, जो तुम उल्लास में भरकर इतनी प्रशंसा कर रही हो ?

श्यामा ने फिर से उस चित्र को निहारा और उसने उन रेखाओं के भीतर जो अंग-प्रत्यंगों के सौष्ठव की साकार परिकल्पना लक्षित कर पाई थी, उसे एक-एक कर सुनाते हुए अंत में कहा—मै चित्राकन की महत्ता तो क्या खाक समझ सकूँगी, रानीमाँ ! पर इतना अवश्य

कह सकती हूँ कि जिसने इस चित्र को बनाया है, वह कोई साधारण चित्रकार नहीं हो सकता। क्यों, रानीमाँ, क्या मै गलत कह रही हूँ......

—गलत-सही मै कुछ नहीं जानती, श्यामा—प्रभावती ने सहज भाव से कहा—यह तो अमलबाबू ने भेंट की है, श्यामा! भेंट की वस्तु चाहे जैसी भी हो, उसे ग्रहण करना मेरेलिए आवश्यक हो उठा! मै उनका दिल तोड़ सकती थी कैसे? वह कुमुद के अध्यापक ठहरे और कुमुद के नाते......

--कुमुद के नाते ही क्यों, रानीमाँ!--श्यामा ने जोर डालकर कहा—अमलबाबू तो आपको बड़ी ऊँची निगाह से देखते है। वे इतने बड़े चित्रकार है, मै नही जानती थी! मुझे लगता है कि उनका आना, और, विद्यालय खोलकर लग जाना अच्छा ही हुआ! इतने ऊँचे दर्जे के कलाकार और यह गँवई गाँव का तन-प्रात। अजीब तनकी आदमी हैं वे! ऐसे और कितने दीख पड़ते है इस संसार में......

फिर जरा रुककर बोली—मैने जब-जब उन्हे देखा है तब-तब मुझे लगा कि उनकी निगाह सदा नीचे की ओर लगी रहती है और जब कभी वह निगाह ऊपर उठी भी, तो पाया कि उसमें सहज-सरल एक मधुरभाव है, ठीक बच्चा-जैसा भोलापन! मुझे उनका वह भोलापन बड़ा भला लगता है, रानीमाँ!

श्यामा बातों-बातों में उलझ पड़ी। वह जो संवाद देने आई थी, दे न सकी, पर उसे वह संवाद तो देना ही था, तभी वह विषय को बदलती हुई बोली--पर, रानीमाँ, मै तो यहाँ एक आवश्यक काम से आयी थी....

और तभी प्रभावती ने पूछा—कैसा आवश्यक काम?

—कल संध्या-समय आप तो थी नहीं; दीवानजी आये थे · श्यामा सिर झुकाकर कुछ सोचने लगी।

—तो क्या वे कोई नया समाचार लाये थे?—प्रभावती के स्वर में स्पष्टतः कुछ उष्णता गूँज उठी।

—नहीं, योंही पूछ रहे थे—श्यामा ने बड़े शांतभाव से कहा—उन्होंने आपसे मिलना चाहा और उत्तर में मैंने कहा कि रानीमाँ कहीं बाहर गई हैं ··

—तब?

—तब उन्होंने स्वयं अनुमानकर कहा—ओह, मैं समझ गया, शायद रानीमाँ विद्यालय गई होंगी। फिर उन्होंने रुककर कहा—हाँ, निश्चय ही वे विद्यालय गई होंगी! मैं अभी यहाँ से वापस जाता हूँ। पता नहीं, कितनी देर तक मुझे इंतजार करना पड़े! तुम कह देना कि दीवानजी अब प्रातःकाल आयँगे।

फिर श्यामा रुककर बोली—और वे आ गये हैं, रानीमाँ! क्या मैं उन्हें ठहरने को कह दूँ?

प्रभावती उसे तुरत कुछ उत्तर न दे सकी। श्यामा ने प्रभावती की ओर आँखें उठाकर देखा कि उसकी स्वामिनी की आकृति पर लालिमा भर उठी है! उसने आँखें नीचे की ओर झुका ली और उत्तर की प्रतीक्षा में चुपचाप खड़ी रही।

प्रभावती ने श्यामा की बातों से दीवानजी के कथन का जो अनुमान लगाया, उससे उसकी वितृष्णा का जैसे कोई अंत न रह गया। उसे लगा कि दीवानजी ने अपनी कल्पना से उसके विद्यालय जाने का जो अनुमान लगाया, उससे उनके हृदय में अपनी स्वामिनी के प्रति कुछ जिज्ञासा उठ खड़ी हुई होगी, जिसका वे कोई समाधान न कर सके होंगे,

क्योंकि अपनी स्वामिनी के दुर्नाम की चर्चा से जहाँ वे मर्माहत हो उठे थे, फिर उस दुर्नाम की उपेक्षाकर उनकी स्वामिनी का बाहर निकल जाना अवश्य कोई गुप्त रहस्य है ·····

प्रभावती इससे अधिक आगे और न सोच सकी। उसने तुरत श्यामा से कहा—हाँ, उन्हें ठहरने को कहो।

श्यामा वहाँ से मुड़ी और दो डेग आगे वह बढ़ी ही थी कि प्रभावती ने पुकारकर कहा—सुनो।

श्यामा रुक गई और घूमकर बोली—क्या आज्ञा है, रानीमाँ!

—उनसे कहना कि रानीमाँ तुरत आ रही हैं।

—जैसी आज्ञा, रानीमाँ!—कहकर श्यामा चल पड़ी।

प्रभावती उठ खड़ी हुई, उसने आईने के पास जाकर अपने केशों को समेटकर जूड़ा बाँधा, फिर उसने साड़ी का अंचल ठीक किया और ऊपर से चादर ओढी। फिर उसने अपनी आकृति उस आईने में देखी। तब उसे ऐसा लगा कि चित्रकार ने जो उसका चित्र अंकित किया है, वह इसी रूप की समता रखता है! यह रूप तो उसका साधारण रूप है! इसी रूप में सदा वह बाहर निकली है, इससे अधिक वह और कोई वस्त्राभूषण धारण नहीं करती! प्रभावती फिर से टेबिल के पास गई और उस चित्र को दोनों हाथों से थामकर फिर से उसपर एक दृष्टि डाली और उसके अंतर से उत्तर मिला—ठीक तो है, साम्य इसे ही कहते है! अमल चित्रकारी में अपनी सानी नहीं रखता। फिर उसने उस चित्र को मोड़कर गोल किया और उसे अपने हाथ में लेकर कमरे से बाहर निकल पड़ी।

प्रभावती जब अपने ग्रंथागार-कक्ष मे आई, उसने दीवानजी को, कुर्सी से उठते हुए देखकर, अभिवादन करते हुए कहा—मै सुन चुकी

हूँ दीवानजी, कल संध्या को व्यर्थ ही आपको कष्ट उठाना पड़ा ! मैं विद्यालय चली गई थी ! आपने जो अनुमान किया था, वह सच ही था ! मुझे वहाँ जाना अत्यावश्यक हो उठा था ! मैं दुर्नाम के भय से कबतक छिपी पड़ी रहती, जबकि मेरा कुमुद वहाँ रह रहा है !

प्रभावती अपने आसन पर बैठ गई और दीवानजी ने भी अपना आसन-ग्रहण किया। फिर अपने चश्मे को नाक पर ठीक से जमाते हुए वे कुछ व्यस्त-से दीख पड़े। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि जो बातें अभी उन्हे कही गई है, उनमें स्पष्टत व्यंग है ! दीवानजी ने अपनी सफेद लँबी दाढ़ी पर एकबार हाथ फेरा, फिर वे गले को साफ करते हुए बोले—हाँ, हाँ, रानीमाँ, क्यों नहीं—क्यों नही ! आदमी अपने सगे-संबंधी को छोड़कर रह नहीं सकता ! अपना कुमुद तो आखिर बच्चा ही ठहरा, उसे देखने जाना तो कोई अन्याय नही है, रानीमाँ ? ····और यही सोचकर मैने भी कहा था कि अवश्य रानीमाँ विद्यालय ही गई होगी !

—हाँ, मै विद्यालय ही गई थी—प्रभावती ने सहज-सरलभाव मे कहा—दुर्नाम के भय से बाहर न निकलना अपनी दुर्बलता को प्रश्रय देना समझा जाता, दीवानजी ! मैं जानती हूँ कि जबतक नैतिक शक्ति का संबल मनुष्य में पूँजीभूत रहता है, तबतक बाह्य शक्तियाँ उसका कोई अनिष्ट नही कर सकती ! और, उसी नैतिक शक्ति का :परिणाम है कि चौधरी या रायवंश की नारियाँ जो न कर सकीं, उसे प्रभा-वती :करने में सफल हुई है ! यह चित्र उसका प्रमाण है।

और प्रभावती ने वह चित्र दीवानजी की ओर बढ़ा दिया।

—क्या है यह ?—कहते हुए जब दीवानजी ने उस कागज को सीधा किया, तब उन्हे उस चित्र को देखकर बिलकुल सन्न रह जाना पड़ा। कुछ क्षणों तक उनके चेहरे की झुर्रियाँ स्पष्ट हो उठी, जैसे विषाद से उनका सारा मुखमण्डल धूमिल हो उठा हो ! उन्होंने उस

चित्र को सम्पूर्ण दृष्टि डालकर देखने का भी साहस न किया, मानो जैसे वे अपनी स्वामिनी का उन्मुक्त रूप हठात् देखकर अपने मन में ग्लानि का अनुभव कर रहे हो!

—क्यो, आपने ठीक से यह चित्र नहीं देखा, दीवानजी, जरा ठीक से देखिए--प्रभावती हँसकर बोली—देखना पाप नहीं है, दीवानजी! आखिर चित्र देखने को ही तो बनाया जाता है! और यह तो किसी साधारण चित्रकार के हाथ का है भी नही, स्वयं अमलबाबू ने इसे बनाया है, वह भी कल्पना-मात्र से नहीं, स्वय मुझे अपने सामने मॉडल के रूप में बैठाकर।

—माडल के रूप में बैठाकर!—दीवानजो विस्मय से चकित होकर ओठों-ओठों में कुछ बोले, जिन्हे प्रभावती ने सुन लिया। उसके बाद उसने फिर से मुस्कराकर ही कहा—ठीक मॉडल के रूप मे नहीं, पर उनके पास तो कभी घंटे-घंटे भर बैठना पड़ा है, और उस समय, वार्त्तालाप के साथ-साथ उनकी दृष्टि मुझपर इतनी पैनी रही है कि······ प्रभावती ने कुछ क्षण रुककर सीधे प्रश्न किया—क्यों, क्या आपको यह चित्र पसन्द नही आया? मै तो सोचती हूँ कि इसे अच्छे फ्रेम मे मढवाकर दीवार पर लटका दूँ! आप तो चित्रकारी को कला समझते होंगे, दीवानजी! क्यो, आप तो कुछ बोल नही रहे?

इसबार प्रभावती ने दीवानजी की ओर ताका, दीवानजी यद्यपि सिर झुकाकर गंभीरता से विचार कर रहे थे तथापि उन्हे लग रहा था कि प्रभावती उनकी ओर देख रही है, मानो वह अपने प्रश्नों का उत्तर चाहती हो। दीवानजी की आँखें अबतक झॅपी हुई थीं। उन्होने जैसे चौंककर आँखें खोली और अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—कला की बात मै क्या जानूँ, रानीमाँ! मैं तो उसे ही अच्छा समझता हूँ, जो आँखों को भाये! निस्संदेह अमलबाबू ऊँचे दर्जे के चित्रकार है।

मगर ''मगर—दीवानजी कुछ रुक-रुककर बोले—मगर रानीमाँ, मैं आपके साहस की सराहना करता हूँ।

—साहस !—प्रभावती ने दीवानजी की ओर देखा।

—हाँ, साहस !—दीवानजी बोले—साहस इसलिए मैं कह रहा हूँ कि आभिजात्यवंश की नारियाँ आपसे बहुत पीछे छूट गईं ! रानीमाँ, मैं समझता हूँ कि आपने वर्षों के रूढिवाद को तोड़ने में अपनी दृढ़ता का जो परिचय दिया है, वह कुछ साधारण बात नहीं, आपकी मनस्विता की परिचायक है। आप इसे अवश्य मढ़वाकर दीवार से लगवायें। मगर अच्छा तो यह होगा कि आदम कद का तैलचित्र ही क्यों न बनवाया जाय ! अच्छा, मैं ही अमलबाबू से इसकेलिए कहूँगा।

अबतक प्रभावती ने दीवानजी की बातों को दूसरे पहलू से लिया था। अवश्य उस दृष्टि से उसने सोचा था कि दीवानजी भीतर से अधिक क्षुब्ध हो उठे हैं, यहाँतक कि कल संध्या को विद्यालय चली जाना भी उनके क्षोभ का कारण रहा है, पर इसबार उसे लगा कि दीवानजी ने जो कुछ कहा है, वह सहज स्नेह-भाव से ही कहा है। प्रभावती की आकृति आनंद से उद्भासित हो उठी और तब वह आनन्द से सने स्वर में बोली—नहीं-नहीं, दीवानजी, तैलचित्र की आवश्यकता नहीं ! यह चित्र मैंने बनवाया नहीं है और न बनवाने की मेरी कोई वैसी उत्कंठा रही है ! यह तो अमलबाबू की भेंट है। श्रद्धा से समन्वित भेंट का सम्मान मैं कैसे नहीं करती, दीवानजी !

—सम्मान तो करना ही चाहिए रानीमाँ !—दीवानजी ने सरल भाव से कहा,—बड़े कोमल स्वभाव के हैं अमलबाबू ! और उनकी आपके प्रति इतनी अगाध श्रद्धा......

—केवल श्रद्धा ही नहीं, दीवानजी !—प्रभावती ने निश्छल भाव से और स्वच्छन्द गति से कहा—मुझे लगता है कि अमल कितने अपने हैं,

कितने आत्मीय हैं--शायद आत्मीय से भी अधिक ·····ओह, मैं ठीक-ठीक नही बता सकती ।

इसबार दीवानजी खिलखिलाकर हँस पड़े और हँसते-हँसते ही कहा—आप बड़ी भावुक है रानीमाँ ! आप की दृष्टि की निर्मलता और आपके हृदय की पवित्रता के सामने साधारण मनुष्य की दृष्टि टिक नही सकती । अमलबाबू की मैं बात नही कहता। आपने दो दिन पहले जिस तरह चौधरीवंश की प्रतिष्ठा और मर्यादा की रक्षा की है, वह क्या सामान्य-सी बात है! फिर भी जो फल मिलना चाहिए, वह कहाँ मिला ?

—क्या नही मिला ?-प्रभावती ने जिज्ञासा-भरी दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए कहा—क्या जमीदारी मे और कोई कठिनाई रह गई है, दीवानजी !

--नही, रानीमाँ !--दीवानजी ने उनका संशय दूरकरते हुए कहा--जमीदारी में कोई कठिनाई नही, मगर नरेन्द्रबाबू का—ओह, कैसा विचित्र स्वभाव है, रानीमाँ ! जमीदारी आपने बचा दी। इसकेलिए जहाँ उसे कृतज्ञहोना चाहिए, वहाँ वह कहते-फिरते है कि यह तो मुँह ढँकने का···

--मुँह ढँकने का !--प्रभावती ने हँस दिया ।

—मगर हँसने की बात नही है रानीमाँ !--दीवानजी रुष्ट होकर कहने लगे-ऐसे आदमी को और क्या कहा जाय ! हित-अनहित का जिसे ज्ञान नहीं ····अफ़सोस है, चौधरीवंश का यह वंशधर ······· मुझे अत्यंत खेद होता है, रानीमाँ, जाने क्यो वह इतना दु:शील हो उठा !

इसबार प्रभावती सँभलकर बैठी और ओज-भरे स्वर में बोली--दु:शील बनकर अपना ही विनाश करेगा, दीवानजी ! मैने जमींदारी की रक्षा उसकी कृतज्ञता के उपहार केलिए नही की है और न मैने इसी लिए किया है कि उस परिवार पर मै अपना रोब गाँठूँ, या उन्हे संकोच

मे डालूँ । यदि वे लोग संकोच इसे समझें तो मुझे वे रुपये वापस कर सकते हैं। मैंने केवल इतना ही ता किया है, जिससे चोधरीराज के प्रतिष्ठाता की आत्मा को शाति मिले। मै उस आत्मा के प्रति अपनेको उत्तरदायी समझती हूँ, दीवानजी, अन्यथा मै अपने संचित धन को मुक्तहस्त से यों नही निकालती। आप शायद जानते हे कि स्त्रियाँ धन को कितना प्रिय समझती हैं।

—यह कहना नहीं पड़ेगा रानीमाँ!—दीवानजी प्रसन्न होकर बोले—मै जानता हूँ कि धन का स्त्रियों के हृदय में कितना मोह होता है!

फिर कुछ क्षण रुककर दीवानजी बोले—नरेन्द्र शायद इतना दुःशील नहीं जनता, कुमुद उसकी आँखों मे चुभ रहा है···

—चुभ रहा है तो चुभने दीजिए—प्रभावती ने तनकर कहा—मै कुमुद को अपने से विलग नही कर सकती! मै अपने स्थान पर अब भी दृढ़ हूँ, जो बालक मेरी छत्रच्छाया में बढ़ रहा है जिसे मै अपने हृदय में कमल का स्थान दे चुकी हूँ, वह वहाँ सदैव सुरक्षित रहेगा और उसके नाते मै अमल को भी नही छोड़ सकती, जिसे मै अपने आत्मीय से भी अधिक मानती हूँ, चाहे दुनिया जो कहे।

दीवानजी कुछ गभीर हो उठे। सहसा उनसे कुछ कहते न बना। प्रभावती ने अंत में कहा—और तो सब कुशल है, दीवानजी?

—हाँ, कुशल है—दीवानजी ने सुनाया—प्रजा प्रसन्न है, वह अधिक प्रसन्न है, पर इन दिनों कुछ विषूचिका फैल गई है, कुछ मृत्यु भी हुई है, यदि अस्पताल का कोई ··· ···

—हाँ, ठीक याद दिलाया, दीवानजी—प्रभावती कहने लगी—मै बहुत दिनों से सोच रही थी कि एक अस्पताल की स्थापना अवश्य की जाय। देहातों मे, उसके अभाव में, बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। क्या

इसका प्रबंध नहीं किया जा सकता है, दीवानजी ? आखिर, प्रजा की हित चिन्ता का...

—विचार स्तुत्य है, रानीमाँ!—दीवानजी ने प्रसन्नता प्रकट की और उसके बाद बोले—अस्पताल के लिए अच्छे डॉक्टर चाहिए, नर्स और कंपाउण्डर चाहिए, दवाएँ चाहिए और उसमे कुछ मरीजों केलिए कुछ सीट भी चाहिए। मैं समझता हूँ, सालाना चालीस-पचास हजार रुपये तो लग ही जायँगे।

—चालीस-पचास हजार!-प्रभावती स्थिर नेत्रों से दीवानजी की ओर देखने लगी।

—हाँ, रानीमाँ, इससे कम में कैसे काम चलेगा, इतना तो लग ही जायगा।

—पर इतने रुपये... अब तो अपना खजाना खाली पड़ गया, दीवानजी!—प्रभावती बोलकर हँसने लगी।

दीवानजी को प्रभावती का हँसना अद्भुत लगा, पर वे प्रभावती के स्वभाव से अवगत है, इसलिए उन्होने भी हँसकर ही कहा—यह तो मैं जानती हू रानीमाँ, पर मुझसे दूसरा खजाना और सबसे बड़ा खजाना भी तो छिपा हुआ नहीं है!

प्रभावती उत्सुक हो उठी और उत्सुकता से ही पूछा—क्या और कहीं खजाना है दीवानजी? मै तो नही जानती!

—आप न भी जानें, मै जानता हूँ—दीवानजी ने हँसकर ही कहा, प्रभावती उत्सुक होकर दीवानजी की ओर देखने लगी।

इसबार दीवानजी ने उनकी उत्सुकता को समझकर कहा—मैं कोई बाहरी खजाने की बात नही कह रहा, रानीमाँ! मै तो आपके अंतर के महाकोष की बात कह रहा हूँ। उसके सामने बाहरी खजाने की हस्ती ही भला क्या होसकती है!

प्रभावती लजा गई और लज्जा से रंजित और मुस्कान से स्निग्ध-मधुर ओठों से केवल इतना ही वह कह सकी—यह तो आप की सदाशयता है, दीवानजी! पर मैं जानती हूँ कि जिस कोष की ओर आपने संकेत किया है, वह तो जाने कबसे रीता पड़ा हुआ है।

प्रभावती मुस्कराती हुई उठ खड़ी हुई, दीवानजी उठते हुए बोले—रीता कैसे हो सकता है, रानीमाँ! जिसका उत्स इतना गंभीर अतलतल में है, वह कभी रीता नहीं हो सकता। और उसके लिए रीता कैसे हो सकता है जो आपकी संतान है—आपकी प्रजा-संतान है।

उसदिन दीवानजी से और बातें न हो सकीं। वे छड़ी टेके बाहर निकले, पर प्रभावती तुरत वहाँ से टल न सकी, उसके मस्तिष्क में बिषूचिका की विभीषिका का चित्र खचित होकर उसके मन को कष्ट पहुँचाता रहा। उसीकी संबद्धता में कुछ घंटे पहले की वह घटना भी उसे याद हो आई, जो उसके शयनागार में हवा के झोंकों के साथ उसकी नजरों से गुजर चुकी थी।

प्रभावती को उस घटना के स्मरणमात्र से रोमांच हो आया। वह अपने आसन पर उँघट कर, भयभीत-चकित होकर पड रही!

× × ×

उस दिन संध्या के समय, जाने क्यों, प्रभावती कुमुद केलिए चंचल हो उठी! उसने इतनी चंचलता में श्यामा से विद्यालय चलने की बात कह सुनाई कि वह भी अकचकाकर अपनी स्वामिनी के मुँह की ओर निहारने लगी। पर उसे उसकी आज्ञा का अनुसरण करना था। इसलिए वह सवारी ठीक करने केलिए चल पडी। फिर भी जैसे अप्रत्याशित रूप में उसे आदेश दिया गया था, उससे उसका मन भी संशय से भर उठा! और वह संशय तबतक उसके मन में बना रहा, जबतक कुमुद से मिलकर और उसे सावधानी से रहने केलिए कहकर उसकी स्वामिनी अंतःपुर में वापस नहीं लौट आई।

३२

कुमुद को विद्यालय के वातावरण में आकर और अमल-जैसे उन्नतमना कलाविद् अध्यापक के साहचर्य में और शिक्षण-पद्धति की उपादेयता से लाभान्वित होकर जो प्रसन्नता प्राप्त हुई, उससे न केवल उसमें चारित्रिक गुणों का विकास ही हुआ, वरन् उसकी प्रतिभा स्फुरित हो उठी। विद्यालय का वातावरण सब बातों से मुक्त था, कोई बंधन नहीं, कोई नियम-कानून की शृंखला नहीं, प्रत्येक को अपनी रुचि और क्षमता के अनुसार बढ़ने की स्वतंत्रता है, और उसी तरह की स्वतंत्रता खेलने-खाने, घूमने-फिरने में भी रही है। उससे लाभ भी प्रचुर हुआ है। जहाँ चोट खानी पड़ी है, घाव खाना पड़ा है और अपने साथियों के बीच मार-धाड़ भी होती रही है, वहाँ भी वह अन्य बालकों की तरह प्रसन्न रहा है और यही प्रसन्नता एक ऐसा कारण है कि कुमुद अपने-आपको भूलकर अपने शिक्षण और खेल-धूप में सलग्न हो पड़ा।

पर कुमुद जितना विद्यालय में खिल सका, उतना ही उसके भीतर, उसके अंतर्मन में एक वितृष्णा, एक कचोट, एक कसक, एक वेदना है,

जैसे वह भुला नहीं पाता, यद्यपि बाहर से वह प्रसन्न दीखता है, अपनी रानीमाँ के निकट अपनी प्रसन्नता प्रदर्शित करने में भी नहीं चुकता, वह यह भी जानता है कि रानीमाँ सचमुच उसकेलिए वरदान साबित हुई, इतनी उदार, इतनी स्नेहमयी, इतनी ममतामयी .....तथापि .

कुमुद यों तो खेलने के समय खेलने मे लग जाता है और घूमने-फिरने के समय घने-जंगलों की भी परवा नही करता; पर उसे एकांत में रहना अतिशय प्रिय है। उसके साथी भी समझते हैं, इसलिए जब-कभी कुमुद अकेले कहीं निकल जाता, तब अन्य दूसरे साथियों को इसकी कोई चिंता नहीं रह जाती। वे समझ बैठते कि होगा वह कहीं। और वह कुमुद निर्द्वंद्व भाव से जहाँ चाहे घूमता, जहाँ चाहे बैठा रहता, जो चाहे करता होता है......

पर सबसे अधिक वह नदी के उत्तरी भाग पर जहाँ श्मशानघाट है, वहाँ की एकान्तता उसके हृदय को अतिशय छूती है। वह उस स्थान पर जाने क्यों अकेले घूमते-फिरते पहुँच जाता है, और एक निश्चित स्थान पर बैठकर घंटों पड़ा रहता है। उस समय उसे बोध होता है कि संसार में इतनी जो उछल-कूद, इतना ईर्ष्या-द्वेष और इतना आकर्षण-विकर्षण है, उसका आखिर क्या उपयोग है, जब जीवन की अंतिम परिणति यह मृत्यु है—इस श्मशान में कुछ लकड़ियों को इकट्ठी कर शव को जलाया जाता है! वह सोचता है—जब मनुष्य यह जानता है कि उसे एक दिन निश्चित रूप से मृत्यु के घाट उतरना ही पड़ेगा, तब फिर वह किसी के प्रति मोह, वितृष्णा, स्नेह या ईर्ष्या-द्वेष के बंधन में क्यों जकड़ा पड़ा रहता है? क्यों वह ऐसे बंधन को अपने-आप पसंद करता है, जिसका कोई अर्थ नहीं! नहीं, यह बंधन बेकार है। यह संसार ही व्यर्थ है और इस संसार के सारे व्यापार अर्थ-शून्य हैं!

और, वह कुमुद अपनी आँखों के सामने जब किसी चिता को, किसी

दिन जलते हुए देखता है, और देखता है कि उसके जलानेवाले आदमी किनारे पर बैठकर किस नैराश्य-पूर्ण दृष्टि से, अपलक,उस चिता को जलते देखते हैं, तब उसका मन की सारी चंचलता अपनी जगह जड़ हो उठती है। वह इतना शात हो पडता है कि जैसे उसमे आगे सोचने की शक्ति ही विलुप्त हो गई हो, जैसे वह जड़भरत हो उठा हो ! चिता जल चुकी होती है और उसकी राख जल मे प्रवाहित कर दी जाती है और वे सब उसी नदी में नहाकर गीले कपडे पहने गाँव की ओर चल देते है, फिर भी जड़भरत की समाधि जैसे टूटना ही नही चाहती। ऐसा श्मशान क्यो उस कुमुद के लिए इतना आकर्षक हो उठा है, वह स्वयं नहीं जानता और न किसीसे जानना चाहता है वह !

पर कुमुद मे श्मशान-वैराग्य ही केवल रहा हो, सो भी बात नहीं ! अथवा मृत्यु को ही वह सबसे अधिक प्रिय समझता हो या मृत्यु ही उसे काम्य हो—ऐसी बात भी नहीं। उसके साथी उसे जानते है कि वह कभी किसी बात में पीछे रहना पसंद नही करता ! पढने-लिखने, चित्रांकन या मूर्त्ति गढने में उसकी आँखें जिस तरह एकाग्र लगी रहती है, उसी तरह उसकी उँगलियाँ सूक्ष्म-से-सूक्ष्म रेखाओं को, बडी सफाई के साथ, अकित कर देती हैं, पर वही कुमुद जब घने-जंगलो में अपने साथियों के साथ भ्रमण करता है और उस जगलों के बेर, जामुन, खजूर या इसी तरह के अन्य जंगली फलों के वृक्षो पर चढकर फलों के उतारने की समस्या उठ खड़ी होती है, तब किस निर्भीकता से वह उन वृक्षो पर चढकर, डालें हिला-हिला-कर फल बरसाता है,वह देखने की वस्तु बन जाती है ! और, यही कारण है कि उसके साथी उसे अपने प्राणों से अधिक मानते हैं–इतना अधिक कि जैसे कुमुद से भिन्न उनके लिए अन्य किसी का साहचर्य अनपेक्षित हो। सदा प्रसन्न, सदा भोला रहनेवाला कुमुद यों बोलता कम है, सौ बातों का जवाब मुश्किल से थोड़े शब्दों में देना उसे प्रिय है, पर जो थोड़े शब्द उसके ओठों से निकलते हैं, मानो वे उसके अतर के होते हैं और इसीलिए

उन बातों का अधिक प्रभाव भी पड़ता है। उसके साथी कहा करते हैं—बाह, भाई कुमुद, तुम गजब के आदमी हो!

—गजब का आदमी!—कुमुद हँस देता है, मानो उस हँसी मे वह उस गजब के आदमी को भी उड़ाकर दूर कर देता है!

पर अपने साथियों में दयाल ही एक ऐसा साथी है, जिसके घर का आकर्षण उसके मन में बना रहता है। ऐसा कौन-सा आकर्षण है जो उसे खींचते रहता है, वह स्वयं नही जानता। दयाल महीने में दो-एक दिन घर जाता है और फिर समय पर लौट आता है। पर जब वह चुपके-चुपके निकल गया होता है, तब जानने पर कुमुद झुँझलाकर रह जाता है और उसके लौटने पर वह इतना उससे बिगड़ता है कि दयाल का कुछ जवाब देते नही बनता। वह सिर्फ इतना ही कहकर उसे संतोष देता है कि खैर, भाई माफ करो, अगले सोमवार को चलना, मैं तुम्हें जरूर लेते चलूँगा। और सोमवार के पहले दयाल गायब! और, जब कुमुद को यह पता चल जाता है, तब उसके रोष का अंत नही रहता, और उस रोष मे कह डालता है—बड़ा मक्कार है दयाल! पाजी, बदमाश, दगाबाज...

मगर उस पाजी, मक्कार दयाल की अगवानी में जब कुमुद विद्यालय से बाहर उसकी राह में खड़ा रहता है, तब दयाल लज्जा से गड़कर भर्राये गले से कहता है—माफ करना कुमुद! जाने का विचार न था। बड़ी जल्दी में जाना पड़ा, इसलिए तुम्हें...

और दयाल अपनी जेब से, उसके निमित्त लाये हुए, दो-एक अमरूद या गुड़ के ढेले अथवा इसी तरह की कोई हलकी-फुलकी चीज निकाल कर कहता है—लो, कुमुद, तुम्हारेलिए लाया हूँ, तब कुमुद हँसकर कहता है—तुम दुष्ट हो। जाओ, मैं नहीं लेता......

पर कुमुद की उँगलियाँ, उसकी इच्छा के विरुद्ध, उसकी ओर बढ़ जाती है, और उस चीज को पाकर खाते-खाते उसके साथ चल पड़ता है।

दयाल को कुमुद के साथ जो गहरी मैत्री है, उसे वह अपनेलिए ऐसी निधि समझता है, जैसे बौने को अनायास चाँद हाथ लगा हो। पर अपने चाँद को कैसे कहे कि क्यों वह जान-बूझकर उसे अपने घर ले जाने में लज्जा का अनुभव करता है। दयाल जानता है कि कुमुद केलिए जो आनंद का कारण हो सकता है, वही कुमुद की रानीमाँ केलिए रोष का भी कारण हो सकता है। कहाँ कुमुद की रानीमाँ और कहाँ धनहीन संन्यासी, जिसकी जीविका भिक्षावृत्ति पर ही निर्भर करती है! दयाल अपनी दीनता की कहानी किस तरह कुमुद को सुनाये और कुमुद उस दीनता का अर्थ समझेगा ही भला क्या? वैसी अवस्था में दयाल को अपनी दीनता अखर उठती है और उसकी आँखों में शून्यता भर उठती है! और तभी कुमुद कह उठता है—देखो, दयाल, इसबार जब तुम जाने लगोगे तब मुझे जरूर साथ ले चलना! जानते हो, तुम्हारा घर··· हाँ, दयाल, ठीक कह रहा हूँ। लगता है कि वह तुम्हारा घर नहीं, मेरा घर है। नंदा तुम्हारी बहन नहीं, मेरी अपनी बहन है और तुम्हारी माँ··· ··· मैं जानता हूँ कि मेरी माँ ठीक-ठीक तुम्हारी माँ-जैसी ही होगी ···

और तब दयाल पूछ बैठता है—और रानीमाँ?

—रानीमाँ तो रानीमाँ हैं दयाल!—कुमुद हँस पड़ता है; फिर गंभीर होकर कहता है—वे मेरी माँ कैसे हो सकती हैं दयाल! वे तो बहुत ऊँची है।

—तुम नमकहराम हो कुमुद!—दयाल स्वाभाविक ढंग से कहता है—जो तुम्हारेलिए जाने क्या-क्या नहीं करतीं, उन्हे तुम माँ भी न कहो, नमकहराम और कौन हो सकता ह!

कुमुद मन-ही-मन दुहराता है—नमकहराम! क्या मै? मैं नमक-

हराम हूँ ? और वह मुक्तकंठ से स्वीकार करते हुए कहता है--दयाल, तुम ठीक कहते हो, मैं नमकहराम हूँ।

—नहीं कुसुद !—दयाल उसके मन का कष्ट समझकर फिर से संभालते हुए कहता है—अरे, मैंने हँसी में कहा और तुम सच समझ गये ! भई, तुम मेरी माँ को माँ ही कहो और नंदा को अपनी बहन ! अब कहो, खुश हो न ?

—खुश ! तुम बड़े दुष्ट हो, दयाल !—कुसुद किंचित् रोष से कह डालता है।

कुछ क्षण चुप रहकर फिर कुसुद कहने लगता है—दयाल, तुमने नमकहराम की बात चाहे हँसी में ही कही हो, पर मुझे लगता है कि वह झूठ नहीं है ! मैं भी समझता हूँ कि क्या मैं रानीमाँ को खुशकर सकूँगा ! रानीमाँ मुझे कितना प्यार करती है--कितना प्यार, दयाल ! मैं कैसे बताऊँ ! मैं भीख माँगनेवाला बालक, जाने कितना दुर्भोग-भोगनेवाला जीव ! और, रानीमाँ उसे समझती है अपना पुत्र ! दयाल, मैं लज्जा से गड जाता हूँ ! तुम नहीं जानते कि मेरा मन कितना बेचैन हो उठता है ! ओह, तुम नहीं जान सकते दयाल, रानीमाँ का स्नेह है या प्यार, दया है या ममता !

—मगर तुम भाग्यवान हो, कुसुद !--दयाल अपनी गरीबी को तौलते हुए कह उठता है—ऐसे भाग्य सबके कहाँ ?

—हाँ, भाग्यवान ही कहो, दयाल !

कुसुद के स्वर में इतना नैराश्य क्यों है, दयाल उसके मुँह की ओर ताकने लगता है, पर वह कुछ समझ नहीं पाता और कुछ क्षण चुप रहने के बाद अचानक बोल उठता है--नंदा इधर बीमार पड़ी थी, कुसुद, बड़ी दुबली हो गई है ! उसीने तो चलते वक्त मुझे अमरूद देते हुए कहा कि लेते जाओ, कुसुद को देना ! उसे अमरूद खूब रुचता है ··

और कुसुद की आकृति खिल उठती है और वह प्रसन्न होकर कहता

है–ओह, अब मै समझ गया दयाल ! जभी तो कह रहा था कि अमरूद की याद तुम्हे कैसे रह गई ?

फिर वह कुछ क्षण रुककर भर्राये स्वर में कहता है—नंदा बीमार पड़ गई थी––यह तो तुमने पहले नहीं बतलाया, दयाल ! उसे हुआ था क्या ?

––बुखार ।

—बुखार !—कुमुद समझता है कि बुखार कितना साघातिक रोग है ! वह स्वयं भुगत चुका है, तभी वह बोल उठता है––तब तो वह बहुत-बहुत कमजोर हो गई होगी ?

—हॉ, बहुत कमजोर !––दयाल कहता है––पर अच्छी हो गई है, खाने को तंग करती रहती है । भूख इतनी बढ गई है कि क्या बतलाऊॅ ! पर बेचारी को खाना मिलता है कहाँ ?

––क्यो, क्यों नहीं मिलता दयाल ? खाना नही मिलेगा तो वह तगड़ी होगी कैसे ?

पर दयाल कुछ उत्तर दे नही पाता । उसके सामने अपनी गरीबी झॉकने लगती है । वह सिर झुका लेता है ।

कुछ क्षण के बाद कुमुद बोल उठता है—मै उसे देखने को जाना चाहता हूॅ दयाल ! चलो न एक दिन अपने घर ! कहो, कब चलते हो ? मगर तुम तो हो बड़े मक्कार ! जाओगे, तो चुपचाप निकल जाओगे । फिर मेरी याद भी न रहेगी ! मगर इसबार तुम्हें शपथ खानी पड़ेगी । मेरा शरीर छूकर तुम शपथ करो कि तुम मुझे इसबार जरूर ले जाओगे । हॉ, तुम शपथ खाओ !

दयाल हॅसकर कहता है—शपथ की जरूरत नहीं पड़ेगी कुमुद, मेरी बात को सच मानो ।

—तो तुम्हे कहे रखता हूॅ, अगर इसबार तुमने मुझे साथ न लिया और चुपके-चुपके घर भागे, तो मै तुम्हारा गला घोंट डालूॅगा । तुम

जानते हो कि मुझे झूठ से बड़ी नफरत है, मै अभी से तुम्हे सचेत कर देता हूँ, पीछे मेरी शिकायत न करना।

—खैर, यही बात पक्की रही, मेरा गला ही घोंट देना, जब मै तुम्हे धोखा देकर निकल जाऊँ!—दयाल ने उसे खुश करने को उसकी बात मान ली।

मगर उस दिन जो बात उन दोनो में पक्की रही, उसपर दयाल कायम न रह सका! वह घर जाता जरूर है; पर वह आनंद मनाने तो जाता नही है! उसे तो घर चलाने के लिए छुट्टी के समय भिक्षावृत्ति करने को बाध्य होना पड़ता है! उसके पिता की उसके साथ यही शर्त्त है, पर वह अपनी मजबूरी अपने बंधु कुमुद से कैसे भला कह सकता है!

और एक दिन चुपके-चुपके, अपनी शपथ के बावजूद, उस समय घरके लिए विदा लेता है, जब कुमुद अमल के कमरे मे चित्रकारी मे संलग्न हो उठता है। वह सोचता है कि कुमुद को पीछे समझा लिया जायगा। पर उसे वह कैसे लिवा ले जा सकता है, जब उसके घर की दशा इतनी खराब हो चुकी है! वह अपनी राह पर सरपट निकल चलता है।

संध्या के समय, जब कुमुद खेलकर विद्यालय आता है, तब उसकी भेंट रानीमाँ से होती है! उस दिन अमल विद्यालय में उपस्थित नहीं था। जाने कहाँ किस उद्देश्य से गया हुआ है! अक्सर इन दिनों, विद्यालय से अवकाश पाते ही, किसी गाँव की ओर निकल पड़ता है और बहुत रात बीते वापस आता है। इसलिए प्रभावती ने कुमुद को देखते ही पूछा—क्या तुम खेलकर आ रहे हो कुमुद?

—हाँ, खेलकर ही तो, रानीमाँ!

—सुना है, तुमलोग बाहर भी निकल जाते हो?

—हाँ, बाहर जाने की तो मनाही नहीं, रानीमाँ, इसलिए सभी बाहर

भी जब-कभी निकल जाते है ! क्यों रानीमाँ, आप ऐसा पूछती क्यों हैं ? क्या बाहर नही निकलना चाहिए ?

—क्यों नही निकलना चाहिए !—प्रभावती ने उसको पीठ थपथपाते हुए कहा—बाहर तो निकलना ही चाहिए कुमुद ! मगर इन दिनों चारों ओर विसूचिका फैली हुई है। दिहात की बात ठहरी ! यहाँ अच्छे डाक्टर-वैद्य भी तो नहीं मिलते ! यह छूत की बीमारी ठहरी, इसलिए इससे जितना सावधान रहा जाय, उतना ही अच्छा ! कुछ दिनों के लिए इधर-उधर न जाया करो, तो चिंता से छुटकारा मिले ! क्यों, कुमुद !

—जैसी आपकी आज्ञा !—कुमुद ने सिर झुकाकर कहा—मै अबसे कही नही जाऊँगा रानीमाँ !

प्रभावती कुमुद के मुँह से 'जैसी आपकी आज्ञा' सुनकर मर्माहत हो उठी ! वह कुमुद को कैसे समझाये कि 'जैसी आपकी आज्ञा' सेवक-सेविकाएँ कहा करती है और कुमुद तो उसका सेवक नहीं, प्राणो से भी बढकर है ! प्रभावती कुछ क्षण अन्यमनस्क हो रही, फिर कुमुद से कहा—हाँ, कुमुद, कुछ दिनों के लिए विद्यालय के हाते में ही टहल लिया करो। आजकल लोग धड़ाधड़ मर रहे है···मै रात-दिन तुम्हारे लिए चिंता मे पड़ी रहती हूँ। देखो, कुमुद, इस रोग से अपनेको बचाना ही होगा ! क्यों ?

—आप ठीक कह रही है रानीमाँ !

—मगर सबसे अच्छा तो यह होगा कि तुम मेरे साथ चलकर वहीं महल में रहो। क्यों, कुमुद, चलोगे ? देखो, मै कितनी घबराकर तुम्हारे लिए भागी-भागी आई हूँ।

—आप घबराती है !—कुमुद ने सहज-सरल भाव से कहा—इसमें घबराने की कौन-सी बात है, रानीमाँ ! जो निश्चित है, जो सत्य है, जो अमिट है—क्या मृत्यु का भय······रानीमाँ, आप क्या मृत्यु से इतनी डरती है ?

—मैं ही नहीं, सभी डरा करते हैं कुमुद !

—पर मैं मौत से नहीं डरता, रानीमाँ !

—कुमुद, चुप रहो, भगवान के नाम पर चुप रहो कुमुद !—प्रभावती कुमुद को अपने अंक में लगाती हुई स्निग्ध कण्ठ से कहती है—देखो, कुमुद, यह बात मुझे अच्छी नहीं लगती ! इसीलिए तो मैं चाहती हूँ कि तुम अंतःपुर में चले चलो ! क्यों अपना भवन तुम्हें नहीं सुहाता, कुमुद ! ठीक-ठीक बताओ ?

—अपना भवन और वह न सुहाय !—कुमुद हँस पड़ा और हँसते-हँसते ही कहा—क्यों, ऐसा आदमी कहीं आपने देखा है, रानीमाँ ? जो चीज अच्छी है, उसे सभी अच्छी ही कहेंगे। एकाध आदमी की बात मैं नहीं कहता।

कुमुद क्षण-भर चुप रहा, फिर बोल उठा—मुझे यहीं छोड़ दें रानीमाँ ! विद्यालय से मैं एक क्षण के लिए भी बाहर नहीं ठहरना चाहता ! मैं कह चुका हूँ कि मुझे मौत का भय नहीं। श्मशान में बैठकर इतना लाभ जरूर हुआ कि लोगों को जो मौत का डर सताया करता है, वह मुझसे जाता रहा है, रानीमाँ ! यों मौत के लिए कोई खास जगह नहीं होती। उसकी सारी दुनिया ही अपनी जगह है—चाहे वह महल हो, या गरीब की कुटिया—उसकी नजर में दोनों एक-से हैं, कोई घटकर नहीं।

और उस दिन प्रभावती को योंही लौट जाना पड़ा। कुमुद राजभवन को न जा सका, पर प्रभावती को उसकी बातों से इतना संतोष अवश्य हुआ कि वह उसकी आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं कर सकेगा। उसने चलते समय एक छोटी-सी शीशी कुमुद के हाथ पर देते हुए कहा—उसे बराबर सूँघते रहना, कुमुद ! सहेजकर रख लो इसे।

पर दो दिनों के बाद, जब कुमुद को यह पता चला कि दयाल

अपने घर आकर बीमार पड़ गया है, तब वह चंचल हो उठा और उसी चंचलता में उसे इतनी भी सुध न रही कि उसने रानीमाँ को जो प्रतिश्रुति दे रखी है, उसके प्रति वह सम्मान नहीं दिखा रहा है! पर वह क्यों इतना चंचल हो उठा? बीमार कौन नहीं पड़ता? पर किसी बीमार को लेकर, कोई इतना परेशान क्यों हो? कुमुद, संभव है, इन बातों को सोचकर रुक सकता था; पर कोई ऐसी अदृश्य शक्ति जैसे वरवश उसे खींचे लिये जा रही है—कुमुद को ऐसा ही जान पड़ा। उसके पाँव स्वतः ही उस पथ की ओर आगे बढ़ चले। वह आगे बढ़ता चला, और बढ़ता चला। और इस तरह वह श्मशान-घाट तक आ पहुँचा, पर। उस दिन वह वहाँ भी रुक न सका। उसने दयाल के घर की राह पकड़ी और आगे की ओर चल पड़ा।

३४

कुमुद जिस समय उस गाँव में पहुँचा, दिन ढल चुका था, सूरज पश्चिम क्षितिज से आगे खिसक चुका था, पर उसकी लाली तब भी छाई हुई थी। हवा का वेग मंद पड़ चुका था। गाँव पर डूबते सूरज की वह सिंदूरिया लाली इस तरह छाई हुई थी, मानो कोई ब्रह्मदैत्य अपनी लपलपाती जिह्वा से सारे गाँव को निगल जाना चाहता हो। कुमुद के मन मे पहली बार जरा भय का उद्रेक हुआ। वह दयाल के दरवाजे पर जा पहुँचा; पर उसदिन उसका दरवाजा पहले-जैसा हँसता-सा जान न पड़ा। वह सीधे अंदर जा पहुँचा। उसकी दृष्टि दयाल की माँ पर जा पड़ी। वह उसे देखते ही बोल उठा--मैं दयाल को देखने आ गया हूँ। वह कैसा है, कहाँ है?

दयाल की माँ अपने-आपमें अस्तव्यस्त तो थी ही, कुमुद को देखते ही वह बिलकुल सन्न रह गई। उसकी आँखें कुमुद की ओर जा लगीं। पर वह किस तरह उस कुमुद को समझावे कि ऐसे समय में—जब अपना-पराया उस रोग का नाम सुनकर अपने घर से जरा झाँकने केलिए भी नहीं निकलता, इसलिए कि कहीं छूत उसे पकड़ न ले—उसका दौड़े हुए आना कितना खतरनाक है। वह मन-ही-मन सोचने लगी कि

अपने साथी को देखने आना उसके सच्चे बंधुत्व का परिचायक तो अवश्य है; पर यह बंधुत्व कितना मँहगा और कितना भयावह है! इसकी कल्पना-मात्र से वह काँप उठी! कुमुद को शीघ्र उत्तर न मिला सका; पर दयाल की माँ का टकटकी बाँधे देखना और उसकी आकृति पर भय-विस्मय की छाप प्रत्यक्ष हो उठना स्वत कुमुद को ऐसा जान पड़ा, जैसे कोई अप्रिय घटना घटित हो चुकी हो। पर वह अप्रिय घटना क्या हो सकती है, उसे सोचे विना ही वह चंचल होकर बोल उठा—क्या बात है, तुम कुछ बोलती नहीं? क्या इतने ही कुछ दिनों में मुझे तुम भूल गई? क्या तुम मुझे पहचान नहीं पाती कि मैं कुमुद हूँ? दयाल मुझे यहाँ लाने से बराबर हिचकता रहा, पर मैं उसके बीमार हो जाने की खबर पाकर आने से कैसे हिचक सकता था? बताओ, वह है कहाँ और कैसे है? मैं चलकर देखूँ तो जरा।

इसबार दयाल की माँ की आँखों से टपसे आँसुओं का एक बूँद नीचे गिर पड़ा। पर उसने तुरंत मुँह घुमाकर आँखें पोंछ डाली, फिर कुमुद को देखते हुए कहा—तुमने तो मुझे अवाक् कर दिया, बेटा! मैं कैसे कहूँ कि तुम्हारे आने से मुझे कितना बल मिल रहा है, मगर ऐसे समय में.. दयाल की माँ आगे न बोल सकी।

--क्या तुम यह कहना चाहती हो कि ऐसे समय में मुझे यहाँ नहीं आना चाहिए?

--हाँ, कुमुद!--दयाल की माँ उदास होकर बोली—देखते हो, आँगन धाँय-धाँय कर रहा है! कोई पुरसा हाल नहो? दयाल का बाप दौड़ता-फिरता है, मैं देवी-देवता को मनाती फिरती हूँ·····

--मनाती फिरती हो--कुमुद ने विस्मित-चकित होकर कहा—देवी-देवता को! तब तो दयाल जरूर अच्छा हो आयगा। मगर यह तो तुम मुझे बतलाती नहीं कि आखिर उसे हुआ क्या है? और, इतनी देवी-देवता मनाने की क्यों तुम्हें जरूरत पड़ी है?

कुमुद की बातें सुनकर नंदा घर से धीरे-धीरे बाहर हुई, पर वह उसे देखकर चकराई नहीं। सच तो यह है कि उसीने उसे कहला भेजा था और उसे विश्वास था कि खबर पाते ही वह जरूर यहाँ आ जायगा। वह सीधे आकर बोली—तुम आ गये हो, कुमुदभैया! कुछ देर पहले दयाल भैया भी कह रहा था कि कुमुद को जो बराबर ठगता रहा हूँ, उसीसे मुझे यह कष्ट उठाना पड़ा है! नंदा कुछ जरा कुमुद की ओर देखती रही, फिर वह बोल उठी—और जानते हो भैया, वह कह रहा था कि अगर कुमुद अपने गुस्से को रोककर यहाँ आ सका, तो मैं अच्छा हो जाऊँगा—जरूर अच्छा हो जाऊँगा।

—क्या वह ऐसा कह रहा था, नंदा?—कुमुदने मुस्कराते हुए उत्साह में भर कर कहा—ठीक कह रही हो नंदा, बोलो, तुम ठीक कह रही हो?

—ठीक या गलत!—नंदा जोर देकर बोली—सो तो तुम भीतर चलकर खुद उससे पूछ लो न, कुमुदभैया! आओ, मेरे साथ।

कुमुद को आसानी के साथ दयाल से मिलने का अवसर हाथ लगा। दयाल की माँ भीतर-भीतर और भी उदास हो उठी। उसे सबसे ज्यादा रंज नंदा पर ही हुआ। पर जब नंदा उसे साथ लेकर घर के भीतर जा पहुँची, तब सबसे अधिक चिंता उसे कुमुद को ही लेकर हुई और वह मन-ही-मन, देवता की गुहारकर, बोली—पराये का पूत अपना बनकर आया है, देखोगी कालीमैया, उसका बाल बाँका न हो!

और ऐसा कहती हुई, उसने जमीन से हाथ सटाकर दो बार अपने उन हाथों को सिर से लगाया।

पर, जिस कुमुद केलिए दयाल की माँ देवता की गुहार कर रही है, उस कुमुद ने भीतर जाकर संध्या के अंधियाले में देखा कि बिछावन से सटे, एक नीचे की ओर झुकी खाट पर, दयाल लेटा पड़ा है, उसकी आँखें

कोटर में धँस गई है, दोनों पाँव रह-रहकर पटक रहा है और रह-रहकर दोनों हाथों से पेट को मरोड़ कर कह उठता है—अब नहीं—अब नहीं, ओह, नसें तन रही है, मरा रे मरा! पानी-पानी……

और तुरत नंदा ने पानी का गिलास उसके ओठों से लगा दिया।

दयाल गट-गटकर पानी पी गया। फिर उसे ठीक से लिटाकर नंदा ने कहा--भैया, देखो, तुम्हारे सामने कौन खड़ा है?

—कौन?--दयाल ने उस अँधियाले में देखने को आँखें फिराईं।

पर कुमुद इतने में ही बोल उठा—दयाल! तुम्हें हुआ क्या है? चुपके-चुपके तुम भाग आए! तुम बड़े झूठे निकले! शपथ खाकर भी…

--ओह, कुमुद!-दयाल को अपने घर कुमुद के आ पहुँचने पर एक ओर जितना हर्ष हुआ, वहीं दूसरी ओर उसे कुछ कम ग्लानि भी न हुई! वह कुछ क्षण उस अँधियाले में कुमुद की ओर देखता रहा। उसकी आँखें आँसुओं से भर उठीं। और, वह भर्राई आवाज मे रुक-रुककर बोला--शपथ की बात, ठीक कहते हो, कुमुद, जभी तो यह हाल है! मैं झूठा निकला, मक्कार निकला, दगाबाज…पाजी, जो कुछ भी कहोगे, मैं वैसा ही हूँ कुमुद! मगर, भगवान जानता है—भगवान से छिपा क्या है, आखिर मैं क्यों कतराता रहा …… क्या मैं नहीं बचूँगा, कुमुद!

—जरूर बचोगे।—कुमुद ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसी समय दयाल की माँ ने वहाँ आले पर एक दीप जलाकर रख छोड़ी, फिर वह बाहर चली गई। दयाल ने दीप के प्रकाश में कुमुद की ओर डब-डबाई आँखों से देखा और कुमुद ने भी उसकी ओर निहारा, फिर वह बोल उठा—क्यों नहीं बचोगे? बीमार कौन नहीं पड़ता? मगर जब आदमी अपनी हिम्मत हार देता है और वह जूझना नहीं चाहता, तब उसके पाँव लड़खड़ाने लगते हैं।

कुमुद उसके हाथ को अपने हाथ से दबाता रहा, फिर बोल उठा—समझते हो, दयाल, बीमारी से आदमी नही मरता, मरता है बीमारी के भय से! सो, तुम भय को छोडो। और, तुम तो खुद कह रहे थे कि कुमुद जरूर आयगा और तुम अच्छे हो जाओगे! क्या नंदा से तुमने यही कहा था न?

दयाल सहसा उत्तर दे न सका, पर उसकी आतुर-विकल आँखों से कुमुद ने इतना जरूर जाना कि नंदा ने झूठ नहीं कहा है।

कुमुद को तभी याद आई कि रानीमाँ ने उस दिन चलते समय एक छोटी-सी शीशी उसे सूँघने के लिए जो दी है, वह तो उसकी जेब मे अब भी पड़ी हुई है! यद्यपि उसने अबतक उस शीशी को सूँघा नही, सूँघना तो दूर, उसकी ठेपी तक नही खोली, तथापि उसे लगा कि क्यो न वह शीशी इसे सूँघने को दो जाय। जबकि रानीमाँ ने उससे कहा था कि इस शाशी को सूँघते रहना, हवा-बतास के बिगड़ने से जो बीमारी होती है, उससे कोई खतरा नही रह जाता। कुमुद ने अपनी जेब टटोली। उसे लगा कि वह शीशी अपनी जगह पड़ी हुई है! उसने धीरे से उसको जेब से निकाला और उसकी ठेपी खोलकर उसकी नाक की ओर बढ़ाते हुए कहा—देखो, दयाल, जोर स साँस खीचो, जितनी तुम खींच सकते हो! जरूर फायदा होगा। लो, इसे सूँघो।

कुमुद ने वह शीशी उसकी नाक के पास रखी, दयाल ने उसे अपनी ताकत भर जोर से खीचा और कुछ क्षण के बाद वह बोल उठा—बड़ी तेज गंध है, कुमुद!

—कैसी गँध है?

—अच्छी!

—हाँ, अच्छी गंध होगी—कमुद ने आश्वस्त होकर कहा—रानीमाँ ने दी है। तुम तो उन्हें जानते हो कि उन्हें मेरी कितनी फिकिर रहती

है। उन्होंने कहा था कि हवा-पानी के बिगड़ने से जो बीमारी होती है, इसके सूँघने से उसका खतरा जाता रहता है।

—क्या रानीमाँ ने कहा था?—दयाल ने इसबार जरा उल्लसित होकर कुमुद की ओर पूरी नजर डालते हुए पूछा।

—हाँ, हाँ, दयाल, उन्होंने कहा था।—कुमुद सहज-सरल भाव से कहता चला—जानते हो, इसबार कितनी घबराई हुई आई थीं वे! और उनकी वह जिद! क्या बतलाऊँ दयाल, कितनी जिद कर रही थी महल मे जाने की? मगर दयाल ...

—और तुम वहाँ नही जा सके, क्योकि तुम्हे यहाँ आना जो था!—दयाल ने कहकर अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

पर कुमुद ने उसका व्यंग समझ लिया, और हँसकर कहा—नही, दयाल, तुमने गलत समझा! मैं यों तुम्हारे यहाँ हर्गिज नही आता! जो अपने साथ अपने घर पर ले जाने को सदा हिचकता रहा, उसके घर आकर उसे संकोच-लज्जा मे डालना मै कभी पसंद नही करता। मगर मै कह नही सकता कि क्यों मै उस लज्जा को भी पी गया और यहाँ तक कि रानीमाँ की आज्ञा मुझे भी अनसुनी कर देनी पड़ी!

कुमुद रुका, दयाल कुछ बोलना ही चाहता था कि उसकी माँ जाने कब से उसके पास खड़ी-खड़ी उसकी सारीं बातें सुन लेने के बाद सहम कर बोल उठी—कुमुद बेटा, रानीमाँ की आज्ञा अनसुनी करके तुम जो यहाँ आ गये, यह तो तुमने उचित नही दिया बेटा! आखिर, रानीमाँ को जिस दिन पता चलेगा...

—हाँ, रानीमाँ को जिस दिन यह पता चलेगा कि कुमुद उसकी आज्ञा अनसुनी कर अपने दोस्त की तीमारदारी मे जा पहुँचा, उसदिन उन्हे खुशी ही होगी, मैं कहे रखता हूँ! क्योंकि मैं उन्हे जानता हूँ; क्योंकि मैंने पास-पड़ोस मे खुद उन्हे पहुँचकर तीमारदारी करते सुना है; क्योंकि वे मुझे सबसे पहले मनुष्य बनाना चाहती है! तुम्हीं कहो

भला, मेरा दोस्त यह बीमार पड़ा रहे और मै बैठा-बैठा फूलों का चित्र बनाऊँ, तितली का सुनहला रंग कागज पर उतारूँ! भला, यही क्या मनुष्य बनना कहा जायगा?

दयाल की माँ उस छोटे-से कुमुद की इतनी गहरी बातें सुनकर विस्मय से अवाक् रह गई। उसने ठीक-ठीक उसकी सारी बातें समझीं भी नही; फिर भी उसे लगा कि कुमुद उसके घर वरदान बनकर आया है!

और सचमुच कुमुद का आना दयाल केलिए भगवान का वरदान ही साबित हुआ! चाहे शीशी की दवा का प्रभाव हो, या देवा-देवताओं की गुहार का परिणाम हो, चाहे जंतर-मंतर का असर हो, इतना तो अवश्य हुआ कि दयाल को नीद हो आई। पर कुमुद अपनी जगह से हिला नही, जिस तरह आकर बैठा था, उसी तरह वह बैठा रह गया।

कुछ रात बीते जब बहुत चिरौरी करते-करते और पाँव पड़ते-पड़ते गाँव के वैद्य मिसिर जी को साथ लेकर दयाल का पिता घर पर आया, तब उसे यह जानकर अजहद खुशी हुई कि बीमार को नीद लग गई है! नीद लगने का अर्थ है बीमार का अच्छा होना—सो वह जानता था। वैद्य मिसिर जी ने बीमार की नाड़ टटोली और बड़े खुश होकर कहा—घबराने की बात नहीं! नाड़ी ठीक चल रही है। जान पड़ता है कि इसे वह रोग था ही नही! व्यर्थ तुम दौड़े गये मुरारी! चिन्ता की कोई बात नहीं।

—व्यर्थ!—दयाल के पिता मुरारी ने कहा—व्यर्थ नहीं, मिसिरजी महाराज! खैर, भगवान करे, वह व्यर्थ ही साबित हो!

—हाँ, व्यर्थ ही साबित होगा—मिसिर जी बोले—मैं एक पुड़िया दिये जाता हूँ। देखो, इसे उठाना नहीं। हाँ, जब अपनी नीद से जग जाय, तब यह खुराक इसे खिला देना।

वैद्य मिसिर तुरंत चलदेने को तैयार हुए। मुरारी उसे पहुँचाने को कुछ दूर साथ गया; पर थोड़े ही समय के बाद लौट आया। रात कुछ अधिक

हो गई थी, फिर भी उसे लगा कि कुमुद को अपने साथ लिवाकर विद्यालय में पहुँचा देना ही ठीक होगा। पर विना कुछ खिलाये-पिलाये उसे योंही कैसे पहुँचाया जाय? मगर वह उसे खिला भी क्या सकेगा? यह एक समस्या उठ खड़ी हुई और उसने दयाल की माँ के पास पहुँचकर कहा—बेचारा कुमुद जाने कब से आ गया है। उसे कुछ तो खिलाना ही चाहिए! कुछ, सुनो दयाल की माँ ......मैं चाहता हूँ कि उसे विद्यालय में पहुँचा आऊँ! समय बहुत बुरा है... ..

—बुरा है, तभी तो मैं सोच में गड़ी जा रही हूँ—दयाल की माँ ने कहा—राजा-रजवाड़े की बात ठहरी। उसे पहुँचा देना ही ठीक होगा।

वह कुछ क्षण सोच-विचार में पड़ी रही, फिर बोल उठी—मगर रात तो ज्यादा हो गई है और यह बुरा समय......

—मगर, अपने घर में रखना ... मुरारी का दिल सशंकित हो उठा।

—आखिर, घर तो है!—दयाल की माँ सोचकर बोली—ऐसे समय में जब घर से कोई बाहर नहीं निकलता और रात को देवता-दानव सभी चला करते हैं... यह क्या ठीक होगा? पराये का बच्चा ठहरा। मुरदघट्टी से जाना होगा—कोस भर जमीन' · नहीं, रहने दो, खूब तड़के पहुँचा देना!

कुमुद को भूख लग रही थी और नन्दा वहीं पायताने में नींद से झुक पड़ी थी, जबतक वह जगी रही, कुमुद उससे बातें करता रहा। दयाल गहरी नींद में सोया पड़ा था। बाहर पति-पत्नी में जो बातें चल रही थीं, उन्हें कुमुद ने उड़ती-पुड़ती सुन लिया। वह घर से बाहर निकला और उन दोनों के असमंजस को मिटाने केलिए बोला उठा—मेरे लिए आपलोग फिकर न करें! दयाल जबतक उठकर बैठ नहीं जाता,

मै यही रुका रहूँगा। मै यहाँ से लौटकर जा न सकूँगा। रात न भी होती, तो भी नही!—कुमुद जरा रुककर फिर बोला—क्या अभी रसोई बनी नहीं है?

——बनी तो है!—दयाल की माँ लज्जा और संकोच से गड़ गई। कैसे वह बतलाये कि वह रसोई क्या तुम्हारे खाने लायक भी हो सकेगी! पर उसे कहना पड़ा, और वह संकोच में भरकर बोली—सुबह तो चुल्हा-चक्का भी न जला, कुमुद! जलता भी कैसे? मगर अभी तो कुछ बनाना पड़ा है! मगर यह रसोई·····

—रसोई जो भी होगी, उसे मै बडे चाव से खाऊँगा ——कुमुद ने हँसकर कहा—क्या तुम इतनी जल्दी भूल गई कि यहाँ की रसोई मुझे कितनी भाती है? आज दयाल अच्छा होता तो उससे छीन-झपट कर खाता! मगर देखता हूँ कि उस छीन-झपट केलिए मुझे रुकना पडेगा यहाँ! कुमुद फिर से खिलखिलाकर हँस पड़ा और उस हँसी में दयाल की माँ को भी योग देना पडा। उसके बाद हँसी का वेग ज्यो-ही थमा, कुमुद ने कहा——देखो, अब मै ठहर नहीं सकूँगा! जोरों की भूख लगी है, मुझे खिला दो जल्दी! और खाते ही मुझे नींद धर दबाती है, इसलिए मुझे बता दो कि मै कहाँ सोऊँगा।

—जहाँ चाहोगे, सो रहना कुमुद!—मुरारी ने कहा—मगर हम तो गरीब है, गलीचा-तोसक यह-सब तो·····

—रहने दीजिए तोसक-गलीचा!—कुमुद ने गम्भीर होकर कहा—नींद आनी चाहिए, फिर तो तोसक-गलीचा और जमीन सभी बराबर! फिर कुमुद ने जरा रुककर कहा—मै भी आपसे कुछ कम गरीब नही!

और, उस दिन वहाँ आतिथ्य के रूप मे जो-कुछ दयाल की माँ से बना, उसने अपने प्रिय अतिथि को, अपनी गरीबी को कोसते हुए,

खिलाया, पर कुमुद ने जिस उछाह से माँग-माँगकर खाया, उससे दयाल की माँ अपनी दीनता भी भूल बैठी! कुमुद ने खाते समय ऐसी बातों में उसे फँसाये रखा कि दयाल के माता-पिता—दोनों प्रसन्न हो उठे। उन्हे कुमुद की बातों से लगा कि वह जैसे देवता के रूप में उनका आतिथ्य स्वीकार कर रहा हो!

भोजन के बाद, कुमुद के आग्रह से घर के बरामदे पर ही उसके लिए खाट डालनी पड़ी। मुरारी ने उसपर कम्बल बिछा दिया। कुमुद उसपर जा लेटा।

दयाल की माँ जब सभीको खिला-पिलाकर और उससे जो-कुछ बना, स्वयं खा-पीकर, बरतन-बासन सहेज कर निश्चिंत हुई, तब उसने एकबार खाट के निकट जाकर कुमुद को देखा। मुरारी ने उसी बरामदे पर, दूसरी ओर चटाई बिछाई और निश्चिंत होकर सुर्त्ती मलते हुए दयाल की माँ से कहा—बेचारा कुमुद थका हुआ है, देखो तो भला, कितनी गहरी नींद में तुरत सो गया! सुकुमार बालक! जरा सरसों का तेल लगाकर……

—हाँ, मैं भी यही चाहती थी—दयाल की माँ ने कहा—जानते हो, दयाल केलिए कुमुद आज देवता ही बनकर आया। जिस समय से कुमुद ने दयाल को अपनी शीशी सुँघाई, उसी समय से मुझे लगा कि दयाल अब बच गया! ओझा, गुनी, वैद्य, हकीम, देवता-पितर जाने किस-किसकी गुहार न लगाई, मगर दोस्त हो तो ऐसा हो! यह तो दयाल का नसीब है कि कुमुद-जैसा उसका दोस्त मिला!

और, जब नन्दा की माँ तेल लेकर कुमुद की खाट के पास आई, तब उसकी दृष्टि चित्त लेटे हुए कुमुद के खुले बदन पर जा पड़ी और उसकी घनी बरौनियों से भरी पलकों, उसके साथ चौड़े उन्नत ललाट पर कमान सी खिची भवों और उसके गोरे कोमल-चिकने सुडौल मुख को देखकर उसे

लगा कि उसके माँ-बाप कितने भाग्यशाली होंगे, जिनकी गोद ऐसे बालक से भरी-पूरी हुई! और, वह बालक आज उसकी झुकी खाट पर लेटकर उसके घर की शोभा बढ़ा रहा है! उसने बड़े ममत्व से उसके पाँव दबाने को अपना हाथ रखा, पर उसके हाथ के स्पर्शमात्र से कुमुद चौंक उठा, उसने धीरे से पाँव सिकोड़ लिया! फिर दयाल की माँ ने धीरे-धीरे उसके दूसरे पाँव पर हाथ रखा, फिर भी कुमुद ने उस पाँव को सिकोड़ लिया! और साथ ही उसकी कच्ची नींद भी टूट पड़ी। उसने चौंक-कर आँखें खोल दीं और देखा कि दयाल की माँ पायताने बैठी हुई है! कुमुद अलसाये हुए बोल उठा--क्या पाँव दबाने बैठी हो तुम?

—हाँ, कुमुद!—ममता से भरी दयाल की माँ ने कोमल स्वर में कहा—जरा तेल लगाकर दबा दूँ; मगर तुम चौंक उठे। जरा पैर बढ़ा दो न, दो हाथ दबा दूँ। तुम्हारी नींद में खलल डाला!

—नींद केलिए चिंता मत करो—कुमुद ने सजग होकर कहा—मगर मुझे पाँव दबाने की आदत नहीं है! सच तो यह है कि मुझे फुरहरी इतनी आती है कि किसीका हाथ मैं बरदाश्त नहीं कर सकता!

—ज्यादा नहीं, तेल लगाकर दो ही हाथ दबाने देते, कुमुद!—दयाल की माँ का स्वर आर्द्र हो उठा, बोली—माँ की साध भी क्या तुम पूरी न करने दोगे, कुमुद?

—देखो—कुमुद ने सरलभाव से कहा—नहीं, नहीं, आदत नहीं है! दबाओगी तो मुझे कष्ट ही होगा; फिर नींद उचट जाने पर मैं सो नहीं सकूँगा! मैं तुमसे झूठ नहीं कहता! जाओ, तुम भी सो रहो! मुझे सोने दो।

दयाल की माँ की साध पूरी नहीं हुई; पर कुमुद ने उतने ही से जाना कि गरीब होकर भी ये लोग कितने अतिथि-सेवक हैं! बाध्य

होकर दयाल की माँ उठते हुए बोली—तो सो ही रहो, कुमुद! मै तुम्हारी बात झूठ कैसे मानूँ? जिस बात से तुम्हें कष्ट होगा, मै तुम्हें कैसे वह कष्ट दे सकूँगी।

दयाल की माँ घर के भीतर चली गई और कुमुद आँखें मूँदकर नींद बुलाने का उपक्रम करने लगा।

कुमुद को कुछ ही देर में फिर नीद हो आई और सभी अपनी-अपनी जगह विश्राम केलिए पड़ गये।

रात भीजती चली। चारो ओर से अँधेरा घना होता चला। आकाश में तारे छिटक रहे थे, चौथ का चाँद बहुत पहले डूब चुका था। विसूचिका से संत्रस्त वह गाँव अँधकार की काली चादर ओढ़कर और भी भयावह हो उठा था और उसकी भयंकरता उस समय और बढ जाती थी, जब दूर से कुत्तों के भूकने की आवाज सुनाई पडती थी! उस समय ऐसा जान पडता था, जैसे उस गाँव में अलक्ष्य रूप से भूत-प्रेतो ने डेरा डाल रखा हो!

कुमुद को जबतक बदन में थकावट रही, तबतक नींद में वह बेखबर पड़ा रहा, पर आधी रात को ही उसकी नींद उचट गई! उसने करवट बदली और फिर से नीद लाने का उपक्रम करता रहा और जब आँख लगने को हुई, तभी उसके कानों में दूर पर एक ही साथ कुछ सियारों की सम्मिलित आवाज ऐसी जान पडी, जैसे कोई दैत्य सारे गाँव को लीलने केलिए हुँकार रहा हो! कुमुद को पहली बार अपने जीवन में भय का संचार हुआ। रात का सन्नाटा और और झिल्लियों की झनझनाहट उसके भय को और भी बढाने लगी। कुमुद ने जोर से आँखें मूँद ली और भीतर-भीतर प्रयत्न करने लगा कि जैसे वह कुछ सुन नही रहा है! इस तरह उसे कुछ लाभ अवश्य

हुआ। उसे नींद तो पूरी नहीं आई, पर वह तंद्रा की अवस्था में जा पहुँचा और इस तरह वह स्वप्न-राज्य में उतर गया।

और कुमुद ने उस स्वप्न में देखा कि एक काला-कलूटा-सा विकलांग पुरुष श्मशानघाट से निकलकर बढ़ता आ रहा है। उसके सिर के केश जल चुके हैं, उसका मुँह जल चुका है, जले हुए बदन के चमड़े नीचे झूल रहे हैं, दोनों हाथों के पहुँचे का माँस जल चुका है, केवल दक-दक करती उँगलियों की हड्डियाँ दीख रही हैं। पैरों से लँगड़ाकर चलता हुआ और हाथ में एक रस्सी का फाँस दिखलाता हुआ उसके पास आकर कहता है—तुम तो बड़े निडर हो न? मैं जानता हूँ, तुम निडर हो, आओगे मेरे साथ? उत्तर में कुमुद कहता है—निडर तो जरूर हूँ; मगर तुम मुझे बुलाते क्यों हो? मुझसे तुम्हारा कौन-सा काम सधेगा? बल्कि, तुम कुछ देर इसीतरह खड़े रहो, तो मैं तुम्हारा चित्र खींच लूँ! ऐसा सुन्दर पुरुष फिर मुझे देखने को कहाँ मिलेगा? इसपर वह विकलांग दाँत निकाले हँस पड़ा। उसकी हँसी कुमुद को बड़ी घिनौनी लगी; पर इसी समय उसके व्यंग का जवाब देते हुए उसने कहा—जानता हूँ कि तुम सुन्दर हो, इसलिए तुम मुझे सुन्दर कहकर मेरी हँसी कर रहे हो! मेरा चित्र तुम्हारे कौन काम आयगा? ओह, चित्रकार बनने जा रहे हो न? ... अच्छा, देखूँगा ....तो तुम मेरे साथ नहीं आओगे?

—आखिर क्यों,—उत्तर में कुमुद कहता है—मुझसे प्रयोजन?

—प्रयोजन है—उसने कहा—तभी तो कहता हूँ।

इतना कहकर वह विकलांग और आगे बढ़ा, तभी कुमुद ने डाँटकर कहा—देखो, अपना रास्ता! शैतान, पाजी, बदमाश! भूत बनकर मुझे डराने आया है! मैं मौत का भी परवा नहीं करता, फिर तुम्हारी क्या हस्ती!

इसबार विद्रुप की हँसी वह विकलांग इसतरह हँसा कि कुमुद भय के मारे घर्मोक्त हो उठा और उस हँसी की खिलखिलाहट से उसकी

नीद टूट पडी और उछलकर वह खाट पर उठ बैठा। उसी समय उसे बहुत दूर से सियारों की सामूहिक कर्कश ध्वनि फिर से सुन पड़ी और वह पूर्ण सजग होकर महसूस करने लगा कि कहाँ है वह विकलाग और कहाँ है उसकी विद्रुप हँसी! यहाँ तो सियारों की आवाज कानों में आ रही है! पर उसकी आँखों के सामने, उसे लगा कि, अब भी वह विकलांग अपनी माँस-मज्जा-हीन • उँगलियाँ हिला-हिलाकर उसे अपनी ओर बुलाते हुए कहता है—क्या तुम मेरे साथ नही आओगे"?

और उसी क्षण कुमुद ने अनुभव किया कि उसका पेट जोर से मरोड़ रहा है और उसे मितली आ रही है, पर उसके भीतर से कुछ निकल नहीं रहा! वह दोनों हाथों से पेट दबाता है और उसे दबाये हुए ही पेट के बल वह लेट जाता है!

चिहुँक कर उठ बैठने से लेट जाने तक के समय के भीतर मुरारी के अंतर्मन में लगा कि कुमुद चौंककर उठ बैठा है, उसे भय हो रहा है और वह अब लेट गया है! फिर भी वह सजग नहीं हो पाता। इसीसमय कुत्तों को भूँकने की आवाज उसके कानों जाती है और इसबार उसकी नीद टूट जाती है! वह आँखें खोल देता है, जंभाई लेता है, फिर चुटकियाँ बजाता हुआ शिव-शिव कहकर उठ बैठता है और चटाई को टटोलते हुए अपना बटुआ उठा लेता है और कुमुद की ओर टकटकी बाँधे देखने लगता है। अंधकार में वह कुछ देख तो पाता नही, पर उसकी करवट बदलने के समय खाट की मचमचाहट सुनकर उसे इतना पता जरूर लग जाता है कि कुमुद जग रहा है, और अपने विश्वास के अनुसार, धीरे से पूछता है—क्यों, कुमुद, जग रहे हो?

—हाँ, नीद टूट गई है, मै पानी पीना चाहता हूँ—कुमुद अपनी और बातों को छिपाकर अपनी आवश्यकता ही प्रकट कर देता है।

—पानी पिओगे ?—मुरारी ने आश्वस्त के स्वर में कहा—अच्छा, ठहरो, पिलाता हूँ।

पानी तो सोने के समय लोटे मे भरकर और उसे एक बाटी से ढॉककर दयाल की मॉ ने कुमुद की खाट के नीचे रख दिया था। मुरारी ने उसी लोटे को निकाला और बाटी मे पानी ढालकर उसे पीने के लिए दिया। कुमुद पानी पीकर बिछावन पर लेट गया और मुरारी अपनी जगह आकर कुछ क्षण बैठा रहा, फिर वह भी लेट पड़ा। दोनो को कुछ देर बाद नीद हो आई।

पर कुमुद सो नहीं सका। थोड़ी देर के बाद ही उसकी फिर से नीद उचट गई। वह फिर सो नही सका। पेट की मरोड़ और मितली उसकी बढती ही चली। और इसके साथ उसका मन भी धीरे-धीरे दबता चला! फिर भी वह घबराया नहीं, और न ज्यादा उसने परेशानी ही महसूस की। भोर होते-होते ही उसे पाखाना की तलब हुई। उसने खाट के नीचे से लोटा निकाला और घड़े के पानी से उसे भरकर दरवाजे के पूरब खुले मैदान में चला गया। पखाने के साथ-साथ उसे फिर से एकबार मितली हुई और उस मितली के साथ कै भी हुई। उसे जान पड़ा कि उसका सारा शरीर अवश होता जा रहा है; फिर भी उसने अपने मन पर बल डालकर उस विचार को दबा देना चाहा। वह कामयाव भी हुआ, और निश्शंकभाव से लोटा लेकर वहाँ वापस चल पड़ा।

सुबह हो चुकी थी, मुरारी उठकर तलहथी पर सुर्ती मल रहा था। दयाल की मॉ उठकर घर से बाहर निकली तो उसकी दृष्टि सूनी खाट पर गई। उसने अपने पति से पूछने पर जाना कि खाट के नीचे लोटा नहीं दीख रहा है, जान पड़ता है कि कुमुद उठकर मैदान चला गया है। वह विद्यार्थी ठहरा, सबेरे उठने की आदत होगी।......दयाल की मॉं आश्वस्त होकर बाहर चली गई।

कुछ ही देर के बाद कुमुद को लोटा लिये वापस आते ही मुरारी ने पूछा—मैदान जाना था तो मुझे क्यों न जगा दिया कुमुद ? आओ, हाथ धुला दूँ।

—मै धो लूँगा—कुमुद ने सरलभाव से कहा—आपको जगाने की ज़रूरत ही क्या थी ! सवेरा हो चुका था, और मुझे मैदान देखा ही हुआ था।

मुरारी ने कुएँ से पानी भरकर कुमुद का हाथ धुलाया और एक नीम की हरी दातून उसके हाथ में देकर कहा—दातून भी कर लो, कुमुद ! मैं भी डोलडाल से हो आऊँ।

मुरारी लोटा लेकर बाहर चला गया।

कुमुद दातून करके घर के भीतर दयाल को देखने के लिए गया और उसने पाया कि दयाल जग चुका है; पर बिछावन पर शात लेटा पड़ा है। दयाल ने कुमुद को देखते ही बात चलाई, कहा—अब तो तबीयत अच्छी है कुमुद ! मगर कमजोरी इतनी ज्यादा मालूम पड रही है कि देखता हूँ—मै अभी दो-चार दिनों तक विद्यालय जा नही सकूँगा। तुम······दयाल सकपकाकर आगे बोल न सका, पर उसने आखिर सोच-विचार कर निश्चय किया और कहा—मै तो यही उचित समझता हूँ कि 'तुम्हे आज वापस चला जाना चाहिए कुमुद ! अमल'दा सोचेंगे · ···

—अमल'दा तो पीछे सोचेंगे—कुमुद ने रुष्ट होकर कहा—मगर उनसे पहले तुम्हें ही मेरी फिकर ज्यादा है ! क्यों, यही बात है न, दयाल ?

—नही कुमुद—दयाल ने संकोच में भरकर बड़े चिंतितभाव से कहा—मै तो तुम्हारे लायक हूँ नहीं कुमुद, यह मैं जानता हूँ। यों तुम्हारा उपकार मै इस जनम में भूल नहीं सकता ! ओह, कितना कष्ट, कितनी वेदना ··· ; कुमुद, लगता था जैसे जान निकली जा रही है !······

दयाल कुछ क्षण चुप रहने के बाद बोला—तुम तो भूत-प्रेत मानते नहीं हो, मगर मैं तो मानता हूँ, कुमुद ! मैंने उसे देखा है ·····

—देखा है ?—कुमुद ने उत्सुक होकर पूछा—कब देखा है, कैसा देखा है ?

—तुम तो मजाक समझोगे कुमुद !—दयाल बोला—मगर मजाक की बात नहीं। मैंने देखा है और इसी बीमारी में, जब सारा शरीर मथ रहा था, नसें तन रही थीं। उसे देखा है—ओह, कितना भयानक ! कुमुद तुम समझोगे नहीं, कैसा भयानक, और वह मुझे हाथ के इशारे से बुला रहा था।

—बुला रहा था ?—कुमुद को रात का सपना याद हो आया। वह भीतर-भीतर डर गया। उसे दयाल की बात पर विश्वास हो चला और तभी वह बहुत उदास होकर बोला—मगर दयाल, क्या तुम्हें ठीक-ठीक याद है कि तुम्हे उस समय कैसा जान पड़ा था ? तुम डर तो नहीं गये थे ? शायद डर के मारे ही लगता हो कि तुम्हारी जान निकली जा रही है ! तुम तो, भई, डरते भी बहुत हो !

—कोई भी उसे देखकर डर सकता था, कुमुद !—दयाल ने बड़ी विश्वस्तता के साथ, रुक-रुक कर कहा—जानते हो, कुमुद, रात को रथ चला करता है ? उसपर भूत-प्रेत और जमदूत ही तो चला करते हैं······

इसी समय बाहर से दयाल की माँ आकर बोली—वे-सब कहने-सुनने की बात नहीं है, बेटा ! देखो, कुमुद को उन-सब बातों से डराया न करो। भगवान् का उपकार मानो कि तुम्हें जीता-जागता देख रही हूँ ! कहो, अब तबीयत कैसी है ?

—ओह, तबीयत ?—दयाल प्रसन्नभाव से बोल उठा—अब तो अच्छा हो गया हूँ माँ ! भूख बेहद लगी है ! कमजोरी बहुत मालूम पड़ रही है,

अभी उठकर चल-फिर नही सकूँगा, मगर सबसे पहले खाने का जुगाड़ करो और कुमुद केलिए भी कुछ जलपान······

—सब हो जाता है, बेटा!—दयाल की माँ ने दिलासा बँधाते हुए कहा--कुमुद केलिए जलपान बनाए देती हूँ और तुम्हारे लिए भी पथ-पानी

--जलपान की जरूरत नही है, मै अभी कुछ खा न सकूँगा।

कुमुद के पेट मे रह-रहकर मरोड़ उठती थी, उसका मन गिरता जा रहा था। उसे लग रहा था कि वह बैठ न सकेगा, उसे लेटना ही चाहिए। मगर उसने अपनी भाव भगी से इन बातों को बिलकुल छिपा लिया। उसने बलपूर्वक अपने मुखपर प्रसन्नता लाने की भरपूर कोशिश की और कुछ हद तक वह इसमें कामयाब भी हुआ।

तभी दयाल की माँ ने कहा—जरूरत क्यों नहीं है, कुमुदबेटा! कुछ तो आखिर जलपान करना ही होगा।

—सो कर लूँगा!—कुमुद ने बिलकुल अपने मन का भाव छिपाते हुए कहा—मै तो बिलकुल एक गिलास शुद्ध जल ही पीना चाहता हूँ। बस, और कुछ नही!

—इसलिए कि मै बड़ी गरीब हूँ—दयाल की माँ हँस पड़ी।

—नहीं इसलिए नहीं--कुमुद ने सहजभाव से ही कहा--रात ज्यादा खा लिया था। देखती नहीं हो कि मेरा पेट फूला हुआ है! सच पूछो तो ऐसे समय मे बहुत सावधान होकर खाना-पीना चाहिए! आखिर, खाने-पीने के चलते ही तो यह बीमारी होती है! मुझे जलपान करने मे कोई उजर नहीं होता! मै जो कह रहा हूँ, उसे सच मानो! मुझे बस, एक गिलास ठंढा जल ही दे दो! मै बैठूँगा भी नही, थोड़ी देर लेट जाना चाहता हूँ। खाट उठा तो नहीं दी?

दयाल की माँ भीतर से काँप उठी। वह बड़ी देर तक कुमुद के मुँह की ओर देखती रही। फिर बोल उठी--तो लेट रहना ही ठीक होगा, कुमुद! मैं तुम्हें पानी लाये देती हूँ।

कुमुद पानी पीकर अपने बिछावन पर आकर लेट गया। उसने आँखें मूँद लीं।

दयाल की माँ अपने घर के काम में लग गई।

नन्दा मुँह-हाथ धोकर आई। कुमुद आँख मूँदकर पड़ा था। वह कईबार कुमुद के पास आई-गई। उसकी माँ ने उसे इशारे से समझा दिया कि कुमुद को थोड़ी नींद लेने दो, ठीक से उसे पचा नहीं है। सोयेगा तो पच जायगा।

पहलीबार, नन्दा के मन में भय का संचार हुआ। उसने डरते-डरते माँ से धीमी आवाज में कहा—कुमुद को कुछ हो तो नहीं गया, माँ?

पर माँ ने डाँटकर कहा—कुलच्छनी, तुम क्या यही मनाती हो! कलमुँही, भाग जाओ सामने से, घर में झाड़ू लगाओ!

नन्दा वहाँ से टल गई, मगर वह आश्वस्त न हो सकी।

नन्दा तो जरूर वहाँ से हट गई; पर उसकी माँ के हृदय से वह संशय दूर न हो सका! उसने कुमुद की ओर इकटक दृष्टि डाली, पर उसका मन इतना उद्विग्न हो चुका था, जैसे वह अपनी सारी चेतना खोकर मात्र पाषाण रह गई हो!

३५

उस दिन प्रभावती विद्यालय से आकर पलंग पर जो पड़ी तो फिर दो दिन तक पड़ी ही रह गई ! कुमुद को लेकर उसके मन पर जो नैराश्य का भाव जकड़ गया था, उससे उसकी दृष्टि मे शून्यता ही भर उठी, किसी ओर से आशा की झलक का आभास तक उसे न मिल सका। फलस्वरूप, मानसिक संघर्ष और घूर्णावर्त्त ने उसके तन-बदन को इतना झकझोर डाला कि उसे शय्या की शरण लेनी पड़ी। उसे ज्वर हो आया। और उसी अवस्था में एकातशायिनी पड़ी रही कई दिनों तक।

अवश्य प्रभावती की चिता का केन्द्र-बिन्दु कुमुद ही था ! कुमुद को लेकर हो उसे विद्यालय की ओर उन्मुख होना पड़ा, कुमुद को लेकर ही अमल को उसे प्रश्रय देना पड़ा, और कुमुद को लेकर ही अपने वश के नरेन्द्र-द्वारा निर्मित विषाक्त वातावरण की घुँटन अपने श्वास-प्रश्वासों में उसे भरनी पड़ी। उसके कर्मठ जीवन में जो शिथिलता, श्लथ और निष्प्राणता आई, उसका कारण उस कुमुद के सिवा और क्या हो सकता ! प्रभावती अपनी शय्या पर लेटकर इन्हीं कुछ प्रश्नों का उत्तर खोज़ती और स्वयं अपने-आपसे ही वह उत्तर जानना चाहती है।

पर प्रभावती का व्यक्तित्व कुछ सामान्य नही था। उसकी देखने की दृष्टि अपनी थी, उसके विचार अपने थे, कर्म की पद्धति भी अपनी थी। कौन क्या कह रहा है, कौन क्या सोचता है उसके प्रति, और किसकी दृष्टि उसकी ओर कैसी रही है—इसकी ओर उसने कभी ध्यान न रखा। जो बातें उसने जहाँ सुनी, उन्हें प्रशात अतस्तल में सदा केलिए डाल दिया—इस तरह कि जैसे उसका बुद्बुद भी फिर देखने को न मिले। जो महिला इतनी उदात्त हो, इतनी प्रशात हो, वह मात्र इसलिए कि कुमुद महल आने को तैयार नही, इस बात से चिंतित हो उठे और इतनी चिंतित कि उसे शय्या-ग्रहण करना पडे, एक बडी अजीब बात जान पडती है।

पर, ससार म अजीब बात कुछ भी नही। जो कुछ है, अपना जगह अटल है, अपनी जगह सीमाबद्ध, अपनी जगह स्वतःसापेक्ष्य।

प्रभावती का इस तरह ज्वरग्रस्त हो उठना, शय्या-शायित होना अत-पुरचारिणी सेविकाओं की चचलता का कारण तो अवश्य हो उठा, पर मंजु अचंचल रही, सेविकाएँ तो आज्ञानुवर्तिनी ठहरी, पर मंजु तो आज्ञानुवर्तिनी नहीं, इसलिए वह पहले जिस तरह माँ से मिलती, उसी तरह शय्यापार्श्व में जा खड़ी होती और माँ क केशों पर उँगलियाँ फेरती हुई कह उठती—अब कैसी तबीयत है माँ!

प्रभावती कुछ चंचल हो उठती, वह सिर घुमाकर मंजु की ओर निहारती और उसके हाथ को अपने हाथ मे लेकर धीरे से कहती—अब अच्छी हो चली मंजु! चिंता की कोई बात नही।

मगर मंजु की चिंता दूर नहीं होती। उसका अंत-करण कह उठता कि माँ उसे खुश करने को ही ऐसा कर रही है। और वह प्रतिवाद के स्वर में कह उठती—तुम्हारा हाथ तो गरम जान पड़ता है माँ! फिर तुम कैसे कहती हो कि ‥ ‥‥

प्रभावती मंजु की बात पूरी भी नही करने देती है और वह बलपूर्वक अपनी आकृति पर हास्य की रेखाएँ बिखेरती हुई बोल उठती है—यह कुछ नही— यह कुछ नही मंजु ! तुम बाहर से आ रही हो, तुम्हारा हाथ ठंढा है, इसीलिए…ठीक इसीलिए …समझी मंजु ! मै तो अब भली-चंगी हूँ।

पर मंजु तो ऐसी बालिका नही है, जो उसे बातों से बहलाया जा सके ! उस समय वह माँ के वक्षस्थल पर अपना सिर झुका देती है। प्रभावती उसकी पीठ थपथपाने लगती है। उस थपथपाहट में जहाँ मंजु को माँ के वात्सल्य का आस्वादन मिलता है, वही प्रभावती के मातृ हृदय मे अपनी संतान का परम सुख ! ऐसा परम सुख, जिसकी कामना माँ के अंतस्तल की चिरनिधि है ! प्रभावती मंजु को अपने वक्षस्थल पर उसी तरह पड़ी रहने को छोड़ देती है ! उसे लगता है कि उसके अतर की गहरी व्यथा का व्रण भीतर-भीतर भरता आ रहा है, उस व्यथा की कसक दूर होती जा रही है, बाह्यज्वर का ताप उसी यात्रा में घटता जा रहा है और जब वह इस तरह कुछ क्षणों के बाद अपनेको पूर्ण रूप में स्वस्थ कर पाती है, तब वह कह उठती है—मै अब अच्छी हो चली मजु ! एक दिन तुम्हे भी विद्यालय ले चलूँगी और यदि तुम चाहो तो चित्रकला की शिक्षा…

मंजु जैसे अपने-आपमें सजग हो उठी हो। उसने माँ के वक्षस्थल से सिर उठाया और माँ की ओर एक गहरी दृष्टि डाली और उसकी आँखों में अपनी आँखें डालकर व्यंग के स्वर मे बोल उठी—शिक्षा मै पा चुकी ! विद्यालय से मुझे कोई जरूरत नही ! तुम जो कुछ कर रही हो, वही बहुत है मेरे लिए !

प्रभावती ने मंजु की ओर अपनी दृष्टि डाली। उसे लगा कि मंजु इतने ही कुछ दिनों में क्या-कुछ हो उठी है ! उसकी आकृति में जैसे लावण्य का निखार न रहकर रूक्षता और पीलापन आ गया है। आँखों में

प्रफुल्लता नही, शून्यता भर गई हो जैसे ! प्रभावती अपने-आपमें काँप उठी ! उसने अपने-आपको ही इस परिणाम का अपराधी माना ! उसे लगा कि उसके अंतर का सुधा- भाण्ड रिक्त पड़ा हुआ है, उस भाण्ड की सुधा जाने कहाँ लुट चुकी है ! काश, वह सुधा मंजु को प्राप्त होती ! पर जो अपराध अलक्ष्य भाव से प्रभावती-द्वारा बन पड़ा है,उसे मंजु के समक्ष वह कैसे व्यक्त करे ! मंजु की बातों से जो ध्वनि उसके कानों की झिल्लियों से जा टकराई, उससे वह भीतर-भीतर तिलमिला उठी; पर उससे उसकी आकृति विकृत न हुई। उसने बड़े संयतभाव और स्निग्ध कंठ से कहा—ऐसा न कहो मंजुबेटी ! मैंने ऐसा कुछ नही किया है। जो कुछ मुझसे अबतक संभव हो सका है, वह मेरे वात्सल्य के कारण ! और, वह वात्सल्य ! मैं जानती हूँ कि वह तुम्हारे प्रति भी कुछ कम नहीं !

—यह मैं कब कहती हूँ कि वह कम हो पड़ा है ?—मंजु ने इसबार माँ पर सीधी दृष्टि डाली और अपने अन्तर का भार, जो उसके लिए असह्य हो उठा था, हलका कर लेने के कारण ही कहा—पराये को अपना चाहे जितना बनाओ—वह बनाना ही होगा, माँ, अपना कैसे हो सकता है ! मैं भी कुमुद को कमल ही समझती रही ! पर कमल वह हो सका कहाँ ? एक दिन मेरे आचार्य कहते थे······

मंजु ने अपनी जीभ को दाँतों से दबाया और कुछ क्षण केलिए वह बाहर की ओर देखने लगी ! उसे लगा कि वह प्रसंग उठाना ही उसके लिए उचित नही हुआ ! उसका न उठाना ही कहीं अच्छा होता। पर, प्रभावती उसकी बातें सुन रही थीं, अचानक रुक जाने के कारण वह बोल उठी—हाँ, आचार्य क्या कहते थे मंजु ?

—रहने दो माँ, उसे सुनकर तुम प्रसन्न न होगी।

—प्रसन्न !—प्रभावती ओठों-ओठों में मुस्काराई, और मुस्कराते हुए ही बोली—प्रसन्न-अप्रसन्न का प्रश्न क्या है मंजु ! तुम तो जानती हो कि तुम्हारी माँ उन-सबको जाने कब से छोड़े

हुए है ! यदि मै इस ओर ध्यान देती, तो शायद आज का वातावरण कुछ और ही होता ! तुम चाहो तो नहीं भी कह सकती हो, और यदि कह भी डालो तो तुम्हारी माँ अप्रसन्न न होगी ।

मंजु ने अपनी माँ के हृदय की उज्ज्वलता परखी और अपने आचार्य की बातो की सकीर्णता का भी कुछ अनुभव किया, पर माँ की जिज्ञासा वह अपूर्ण न रख सकी । तभी वह बोल उठी—ऐसी कोई बात नहीं थी, माँ ! मै जानती हूँ कि तुम्हारा दृष्टिकोण जितना उदार और दूर-प्रसारी है, उसका शताश भी उनमे नहीं । सच तो यह कि वे अतीतकाल के जैसे व्यक्ति है और उसी अतीत मे ही सीमाबद्ध रहना चाहते है ! यदि ऐसा न होता तो सीमा की बात वे न करते । कुछ क्षण मंजु चुप हो रही, फिर उसने माँ की आँखें मे आँखें डालकर पूछा—क्यों माँ, रक्त और रंग तो एक ही तरह के होते है देखने मे, तो क्या उन दोनो में अंतर नही होता ?

—अंतर !—प्रभावती चंचल हो उठी, फिर उसने अपने तकिए को हाथों से जमाकर उसपर सिर रखा और हँसकर कहा—ओह, मै समझ गई, आचार्य ने यही कहा था न मंजु ?

—हाँ, यही—मंजु ने प्रसन्न होकर स्वीकार किया—ठीक यही कहा था माँ ! वे कहते हैं कि रक्त रक्त ही होता है और रंग रंग ही ! दोनों ठीक एक-जैसे दीखते अवश्य है, पर रक्त……

—समझ गई मंजु !—इसबार प्रभावती को अपने सामने एक समस्या उपस्थित हुई-सी जान पड़ी ! आचार्य के कथन में जो गहराई थी, उसकी ओर प्रभावती का ध्यान गया और उसने यह भी अनुभव किया कि मंजु को आज यह प्रश्न सामने रखने का क्या उद्देश्य हो सकता है ! रक्त और रंग का प्रश्न साधारण-जैसा उसे प्रतीत न हुआ ! पर उसके लिए कुछ विशेष मूल्य उसका हो—ऐसा जान न पड़ा । तभी वह मंजु की छितराई लटों को उँगलियों से सँभालती हुई बोली—रक्त और रंग

का प्रश्न ही क्या मंजु ! जो भी वस्तुएँ भौतिक जगत में पाई जाती है, उनमें समानता—अत्यधिक समानता—रहते हुए भी एक दूसरे से अंतर तो रहता ही है और वही अंतर प्रत्येक की विशेषता है ! मैं मानती हूँ कि रक्त में जो सहज आकर्षण है, वह रंग में नहीं ! संभव है, वह हो भी नहीं सकता !—प्रभावती यहाँ आकर आप-ही-आप रुकी, फिर कुछ क्षणों के बाद खिलखिलाकर हँस पड़ी और खिलखिलाती हुई ही बोली—हाँ, ठीक है मंजु ! लोग तो रक्त को ही मानते है, उससे अधिक वह देख भी तो नही सकते !

प्रभावती चुप हो गई, मंजु भी सहसा कुछ कह न सकी। पर प्रभावती की उगलियाँ अबतक मजु के केशों में उलझी पडी थी और मजु को भी अच्छा लग रहा था। इसलिए वहाँ की निस्तब्धता किसी केलिए भी भार न बन सकी ! पर इसबार प्रभावती ने अपनी बात आगे बढाते हुए कहा—मैं जानती हूँ मंजु ! रग का प्रश्न कुमुद को लेकर जो उठ खड़ा हुआ है, वह तो लोगों को समझाया नही जा सकता ! शायद तुमको भी मैं समझा नही सकती ! कुमुद चाहे जितना 'पर' हो, कुमुद चाहे मुझे माने या नही, कुमुद चाहे जितनी मेरी अवज्ञा करे और कुमुद मेरे अंतस्तल को चाहे जितना ठेस पहुँचाये; पर मेरा जो धर्म है, जो कर्त्तव्य है, जो देय है, उसका निर्वाह तो मुझे करना ही चाहिए मंजु ! जिसको मैंने एकबार स्वीकार कर लिया है, उसे मैं त्याज्य कैसे कर सकती हूँ, मंजु ! उसदिन क्या यह प्रभावती रह सकेगी ?

इसबार प्रभावती फिर चुप हुई। मंजु ने उस प्रत्येक शब्द को अपने मन में तौलकर देखा और उस मंजु को लगा कि उसकी माँ की आँखों में जो एक विचक्षणता की छाप है, वह कुछ सामान्य नही ! मजु का अंतर आनंन्द से उद्भासित हो उठा ! उसके कानों अपनी माँ के विरुद्ध जो सब बातों पड़ी थी, जिन्हें वह अपनी माँ के सामने रखना

चाहती थी, वे छिन्न-भिन्न हो उठीं और तभी वह मंजु बोल उठी—क्यों माँ, आज भी क्या अनाहार ही कटेगा ?

और तभी प्रभावती को लगा कि मंजु को इतनी देर तक घेर कर रखना शायद ठीक न हुआ। तभी वह बोल उठी—अनाहार क्यों कटेगा, मंजु ! जाओ तुम भोजन-छाजन करो ! श्यामा को इधर भेज देना।

—हाँ तुरत भेज देती हूँ, माँ !—मंजु बोलकर उल्लसित भाव से बाहर की ओर चल पड़ी।

मंजु के चले जाने के बाद प्रभावती ने मंजु को अपनी बात के समर्थन में रक्त और रंग के अंतर के सम्बन्ध को लेकर अपने दृष्टिकोण का जो आभास दिया था, उसका विकसित रूप उनकी आँखों के सामने मानो मूर्त्त हो उठा ! तभी उसे लगा कि कुमुद के प्रति उसके अंतर में जो लघुता आ गई है, वह जैसे उसकी मात्र अपनी कमजोरी हो ! पुत्र कपूत हो सकता है—होता, है तो क्या माँ को कुमाता होना श्लाघ्य है ? नहीं, प्रभावती ऐसी नहीं हो सकती ! वह कुमुद की माँ है, वह कुमुद की माँ ही रहेगी—चाहे कुमुद जो भी समझे—चाहे वह उसके मन को जितना भी दुखाय ! . . .

और ठीक उसी समय श्यामा डरी-सी, थकी-सी पलंग के पास आकर बोली—मैं आई रानीमाँ, आज्ञा हो।

प्रभावती ने श्यामा की ओर दृष्टि फेरी, फिर कुछ क्षण सोचकर बोली—ऐसी आकृति क्यों हो गई है श्यामा ? अस्वस्थ तो मैं थी, किंतु तुम ?

श्यामा तुरत उत्तर न दे सकी। वह अस्वस्थ नहीं, पर अपनी स्वामिनी को कहने की इतनी सामग्री उसके कानों इकट्ठी हो चुकी है कि वह स्वयं अभिभूत हो पड़ी है ! और वह भी ऐसे समय में जब उसकी स्वामिनी शय्यागत हो पड़ी है। श्यामा जानती है कि कौन-सी बात कब

कही जानी चाहिए ! प्रतिकूल परिस्थिति में विषमचर्चा तो नहीं की जानी चाहिए। इसलिए अपनी सारी बातें अपने अंतस्तल के अंतिम तल में डालकर अपनी स्वस्थता के प्रमाण-स्वरूप अपने ओठों पर भीनी मुस्कराहट लाकर बोली—मैं तो स्वस्थ हूं, रानीमाँ ! ऐसी कोई बात नहीं !

और फिर कुछ क्षण रुक कर बोली—सेविका जब अपनी सेवा से वंचित हो जाती है, तब-तब,—पर रानीमाँ आप अब तो स्वस्थ हैं ?

—स्वस्थ !—कुछ क्षण रुककर उसने उदास और क्षीण कंठ से कहा—हाँ, स्वस्थ हूँ श्यामा ! अब तुम अपनी सेवा से वंचित न रहोगी ! क्यों खुश हो न !

—यह मेरा सौभाग्य है, रानीमाँ !

—देखो श्यामा, आज मैं स्नान करना चाहती हूँ, भगवान की पूजा-अर्चना भी कई दिनों से हो नहीं पाई ! देखो, स्नानागार में सब कुछ ठीक है न !

—पूजा-अर्चना तो बराबर होती रही है, रानीमाँ—श्यामा ने कहा—मंजु बहन अबतक करती रही हैं। मैं समझती हूँ कि आपका स्नान करना शायद अभी ठीक न हो ! ज्वर .....

ज्वर !—प्रभावती समझती है कि उसका ज्वर किसतरह का था और क्या था। इसलिए वह हँसकर बोल उठी—मुझको कुछ नहीं हुआ है, श्यामा ! मैं स्नान करूँगी, अपने हाथों पूजा करूँगी और कुछ भोजन हलका-सा भी करूँगी।

श्यामा उत्तर में कुछ बोल न सकी, पर उसे यह अनुमान करने में देर न लगी कि उसकी रानीमाँ के अंतर में कोई ऐसी बात है, जिससे वह भीतर-भीतर चंचल हो उठी है ! श्यामा सिर झुकाकर पड़ी रही।

और उसदिन प्रभावती ने स्नान किया, पूजा की और भोजनादि से निवृत हो अपने कमरे में आकर आराम करने लगी। ये-सब काम इतने

स्वाभाविक ढंग से हुए कि प्रभावती के अंतर्द्वंद्व की ओर किसीका लक्ष्य तक न रहा। किंतु श्यामा को लग रहा था कि कहीं कुछ ऐसी बात अवश्य है, जिससेरानीमाँ के व्यवहार में कुछ अंतर आ गया है! पर वह अंतर क्यों है, उसका समाधान वह न पा सकी।

दो पहर लेटे-लेटे बीत चला। तीसरे पहर में प्रभावती ने श्यामा को बुलाकर कहा—देखो, सवारी का जरा प्रबंध करो, मै विद्यालय जाना चाहती हूँ।

—विद्यालय!—श्यामा असमंजस में कुछ क्षण खड़ी रही, फिर कुछ सोचकर बोली–क्या विद्यालय जाना इतना जरूरी है रानीमाँ! अच्छा तो यह होता कि आज दिन-भर आप पूरा विश्राम करतीं। कई दिनों के बाद तो थोड़ा-सा पथ्य-ग्रहण किया है! मै समझती हूँ आज······

—आज!–प्रभावती हँसकर बोली–तुम्हारी रानीमाँ मर नही जायगी, श्यामा? ऐसी मे कमजोर तो हूँ नही कि बाहर निकलना चिंता का कारण हो उठे! प्रभावती बोलकर चुप हो रही कुछ क्षण तक, फिर बड़ी उदास होकर भर्राई हुई आवाज में बोल उठी–इधर दो दिनों से जा तो नही सकी श्यामा! कुमुद जिद्दी तबीयत का लड़का ठहरा! महल मे आने को जब वह तैयार नही और चारो ओर विसूचिका विकराल रूप से छाई हुई है, उसे न देखना ठीक नही जँचता, श्यामा! तुम्हीं बतलाओ, कुमुद को मै क्या करूँ?

श्यामा को दृष्टि में प्रभावती की विकलता का रूप प्रत्यक्ष हो उठा। उसे लगा कि कुमुद के प्रति रानीमाँ को कितनी गहरी ममता है! ममता?—नही ममता नहीं, गंभीर मोह! और ऐसा सोचकर वह बोल उठी—मैं सवारी का प्रबंध किये आती हूँ रानीमाँ! जाना ही उचित जान पड़ता है।

और उसदिन श्यामा और पारो को लेकर जब प्रभावती गाड़ी पर आ

बैठी, तब जाने कहाँ से मंजु भी झपटते हुए गाडी के पास आकर बोली—मैं भी चलूँगी माँ ! चुपके-चुपके आज मुझे छोड़कर तुमलोग वहाँ जा न सकोगी !

प्रभावती ने उसे रोकना चाहा, पर क्या कहकर उसे रोका जाय यह उसकी समझ में न आया । अपनी इच्छा के विरुद्ध उसे कहना पड़ा—आ जाओ, बैठो !

मंजु आ बैठी ! गाडी सदर दरवाजे से बाहर हुई और विद्यालय की राह, पर बढ चली ! प्रभावती ने मंजु को साथ चलने का आदेश तो दे दिया, पर उसे लग रहा था कि वह न चलती तो अच्छा होता ! इसलिए विद्यालय चलने का उसका उत्साह मंद पड़ गया और उसकी आकृति की उत्फुल्लता विलीन होकर वह धूमिल पड़ गई ।

कुछ दूर गाडी निकल चुकने के बाद सहसा एक व्याघात उपस्थित हुआ । प्रभावती की दृष्टि जिस ओर लगी थी, उसने देखा कि एक आदमी बेतहासा दौड़ा हुआ गाड़ी की ओर ही बढता चला आ रहा है ! उसे समझ में नही आया कि उस ओर उसके दौडे आने का क्या कारण हो सकता है ! प्रभावती के राजत्व काल में ऐसा बराबर से होता रहा है कि उसके निकलने पर जिस-किसीने उससे मिलना चाहा, अथवा अपनी बात सुनानी चाही, उसे वह अवसर सदा दिया गया । उसकी बात सुनी गई और जो-कुछ उसे सहायता करनी चाहिए, वह उसे की गई । इसलिए उसने गाडीवान से गाड़ी रोकने को कहा, फिर भी बैल जिस गति में दौड़ रहे थे, उन्हे रोकते-रोकते गाडी कुछ दूर तक और भी बढ गई ।

और जब वह आदमी गाडी के पास आ पहुँचा, तब उसने रानीमाँ को गुहार करते हुए छाती पीटकर कहा—रानीमाँ, कुसूर माँफ हो ! मै बडी आफत मे फँसा हूँ ।

रानीमाँ ने उसे पहचान कर कहा—क्यों मुरारी, बात क्या है ? कैसी आफत ! कुछ तो कहो भी ?

—किस मुँह से कहूँ रानीमाँ !—गुसाँई मुरारी ने फिर से अपनी छाती पीटी और उसकी आँखों से टपाटप आँसू बह निकले और बड़ी मुश्किल से कहा—हम तो गरीब गुसाँई ठहरे ! आपके दान-पुन्न पर हमारी रोजी चलती है, रानीमाँ ! मेरा बेटा मर जाता, तो इतना दुख न होता······

बेटे के नाम से प्रभावती का हृदय काँप उठा। उसे लगा कि कोई ऐसी भयंकर बात हो गई है, जिसे वह व्यक्त नही कर पा रहा है। तभी प्रभावती ने शात और सरल भाव से कहा—ऐसा नहीं कहते गुसाँई ! बेटा तुम्हारा क्यों मरे ? वह जिये, उसका कल्याण हो ! पर बात क्या है गुसाँई ? देखो, साफ-साफ कहो। मुझे विद्यालय जाना है ! जाने में देर हो रही है और फिर तुरत वहाँ से लौटना भी पड़ेगा।

—मगर विद्यालय अब जाना नही पड़ेगा !—मुरारी ने रोते-रोते भर्राई आवाज मे कहा—कुमुद्र मेरे घर है, और उसे हैजा···

—हैजा, कुमुद को ?—श्यामा चौककर बोल उठी। उसने रानीमाँ की ओर देखा, जो स्वयं इस रूप में थी कि जैसे गुसाँई की बात वह ठीक-ठीक समझ नहीं रही हो !

और गुसाँई ने गिड़गिड़ाकर कुमुद का उसके घर पहुँचने, उसके दयाल की तीमारदारी करने और उसके कै और दस्त होने की बातें सुनाकर अंत में कहा—हम गरीब को यही कलंक बदा था, रानीमाँ ! उसे बचाइए। उसके एवज में मेरा बेटा दयाल····

प्रभावती स्थिर-अचंचल भाव से बोली—दयाल का दोष नहीं और न तुम्हारा कोई कसूर है गुसाँई ! कुमुद वहाँ जाकर इस हालत मे पड़ा है, इसकी कल्पना तक मै नही कर पाती ! अच्छा, तुम ड्योढ़ी पर जाओ और दीवानजी को कुछ दवा के साथ आने को कह दो। मै वहीं बढ़ती हूँ।

और प्रभावती ने गाड़ीवान से कहा—गाड़ी घुमाकर ले चलो और देखो, जितना तेज चला सको, चलाओ! कुमुद महल में न आयगा, चाहे वह जहाँ जाकर बीमार पड़े!

और गाड़ीवान ने उसीदम गाड़ी घुमाई और बैलों को ललकारकर उनपर सोंटे लगाये। दोनों बैल खाई-खंदकों को पार करते हुए रास्ते पर बढ चले। मुरारी ने महल जाने की पगडंडी पकड़ी और वह उस ओर दौड़ पड़ा।

प्रभावती की दृष्टि मुरारी की ओर निबद्ध हो पड़ी। उसे लगा कि मुरारीगुसाँई के दिल में कितनी बेकली है, जब कि राजघराने से सम्बन्धित कुमुद उसके घर जाकर हैजा का शिकार बना। गाड़ी चलती रही और उसके साथ प्रभावती के मस्तिष्क का चक्र उससे भी तीव्र वेग से चक्कर काटता रहा।

३६

और उस मानसिक चक्र में प्रभावती के जीवन के सम्पूर्ण खुले पृष्ठ एक-एक कर प्रत्यक्ष होते चले! उन पृष्ठों में उसने अपना शैशव देखा, अपनी वयःसंधि देखी, उस समय की कई अपनी सखी-सहेलियों का दौरात्म्य देखा, फिर विवाहित जीवन, पति के साथ प्रथम मिलन, उसका साहचर्य, उसके मधुर संभाषण और संतान के रूप में मंजु और कमल का उद्भव और आनंद-प्रफुल्लता के वे सुनहले दिन! फिर वह विषाद-भरा क्षण, जब उसने अपने प्राणोपम पति का रोग-शय्या-ग्रहण देखा और उसकी अन्तिम घड़ी मे मजु और कमल को सौपते हुए उससे कहते सुना—इन दोनों रत्नों को सँभाल कर रखना······और कुछ ही क्षणों के अनंतर उसका प्राण-त्याग!······फिर अपना वैधव्यजीवन··· ··जीवन की निष्ठा·······अपने-आपको उनदोनों में विलीन कर देना··· ···और फिर कमल की अचानक मृत्यु· · ··

प्रभावती ने आकाश की ओर देखने का प्रयास किया, जहाँतक उसकी दृष्टि जा सकी! और क्षितिज के छोर पर जो-कुछ उसे दीख पड़ा, वह था सरस्वती-मेला का कुमुद, जो घोड़े के टापों के बीच आ

पड़ा है, जो उन टापों से रौंदा जाकर गिर पड़ा है और जिसपर सवार की सपासप चाबुक पड़ रही हैं; पर जो रोता नही, केवल अपनी रोष-भरी आँखो से उस सवार को देखता रह जाता है······और उस कुमुद को महल में लाना, उसका औरों के साथ मेल-मिलाप, नन्दलालगुरुजी की देख-रेख में उसकी पढाई और फिर अमल का विद्यालय······

प्रभावती का सारा शरीर पसीने से भर उठा! उसकी आकृति धूमिल हो उठी और उसकी आँखें तिलमिला उठी।

प्रभावती के साथ श्यामा, पारो और मंजु थी, पर उन-सबकी उपस्थिति का जैसे उसे कुछ भान नही रह गया है। वे-सब कुमुद का समाचार पाकर इतनी घबरा उठी थी कि किसीके मुँह से कोई बात सहसा न निकल सकी। पर श्यामा की दृष्टि जब रानीमाँ की ओर निबद्ध हुई और उसके अंतर मे घुसकर उसने अपनी स्वामिनी की पीड़ा का अनुभव किया, तब उससे मौन साधे पड़ी रहना असम्भव हो उठा। और वह बोल उठी—कुमुद ने दयाल के घर जाकर अच्छा नही किया, रानीमाँ! अमलजी का भी कुछ कम दोष नही है, जब वह जानते थे कि चारो ओर हैजा फैला हुआ है ·····कुमुद तो आखिर बच्चा ही ठहरा; मगर अमलबाबू जो बच्चे है नही।

पारो अबतक गुमसुम पड़ी थी। कुमुद दयाल के घर जा सकता है और महल में नही आ सकता! इस विचार से वह कुमुद पर मन-ही-मन बिगड़ रही थी, पर श्यामा के मुँह से कुमुद को दोषी न मान कर अमल को दोषी ठहराने की बात उसे अच्छी न लगी। तभी श्यामा को सुनाने के उद्देश्य से वह बोल उठी—अमलबाबू का इसमें दोष कहाँ है श्यामा? वह क्या पहरा बैठायेंगे? लड़के तो जानवर नही हैं और विद्यालय कोई अड़गड़ा नही हुआ करता! कुमुद देखने में छोटा तो है; मगर उसकी बुद्धि तो कुछ कम नहीं! वह महल न आयगा, पर दयाल के घर जायगा! जैसे दयाल······

—दयाल उसका साथी है, पारो!—इसबार मंजु ने कुमुद का पक्ष लेकर कहा—इसमे कुमुद का दोष तो मै नही देखती! दयाल की बीमारी की खबर पाकर कुमुद कैसे रुक सकता था भला! जो कुमुद को जानता है, वह उसे दोष कैसे दे सकता है, पारो?

पारो तुरत कुछ उत्तर न दे सकी, पर उसने उत्तर सोचने को ज्योही बाहर की ओर दृष्टि डाली, देखा कि दो घुड़सवार विद्यालय की ओर से घोड़े दौड़ाते हुए गाड़ी के समीप से निकले जा रहे है। उन घुड़सवारों को उसने पहचाना और तभी उसकी भवें तन गई और वह झंकार देकर बोली—धूल उड़ाकर जाते है ये घुड़सवार! जाने किसपर आफत ढाकर अपनी बहादुरी दिखा रहे है!

इसबार प्रभावती ने दृष्टि फिराकर पारो की ओर देखा और उसके भीतर जैसे कोई कह उठा कि पारो ने कुछ झूठ नही कहा है, तभी वह धीरे से बोली—क्या था पारो?

—होता क्या, रानीमाँ!—पारो ने गरम होकर कहा—वे जो घुड़सवार धूल उछालते हुए अभी निकल गये, उनमे एक नरनबाबू थे और दूसरा था उनका पहलवान!

प्रभावती की दृष्टि उस ओर जा लगी, जिधर से वे घुड़सवार आ निकले थे। उसे लगा कि विद्यालय से ही मानो वे-सब लौटे आ रहे हों! उसने आह भरी और उसके ओठो से सटा हुआ निकला—विद्यालय! और ठीक उसी समय श्यामा की छाती धक् से हो उठी! उसने नरेन की जो बातें सुन रखी थीं, जिन्हे वह अपनी स्वामिनी से कह सुनाने की हिम्मत खो बैठी थी, उसे लगा कि जैसे उसकी वे बातें मजाक की न हों, वे शायद हो गुजरी। श्यामा की आकृति काली पड़ गई और उसने अपना सिर नीचे झुका लिया। वह अपनी स्वामिनी की ओर दृष्टि तक न उठा सकी! उसके मानसिक आकाश में उस समय

ऐसी झंझा प्रवाहित हो उठी कि उसका कण-कण स्पंदित हो उठा और वह उस झंझा के प्रवाह में मानो कबतक भाँसती-उतराती रही।

पर प्रभावती के मानस में उस समय न तो नरेन था, न अमल और न विद्यालय! यद्यपि वे तीनों कुछ क्षणों के लिए उसके मानसिक क्षितिज में दीख तो पड़े, फिर भी कुछ क्षणों के लिए ही! कुमुद की आसन्न विपत्ति के सामने वह किसी बात की ओर उन्मुख न हो सकी। उसे हो रहा था कि किसतरह उड़कर वह कुमुद के निकट जा पहुँचे और उससे कह सके कि तुमने यह क्या किया कुमुद! महल क्या तुम्हारे लिए मात्र 'पत्थर का गढ़' ही रहा और अपने साथी का घर ....

प्रभावती तब भी बाहर की ओर ही देख रही थी; पर उसका मन जहाँ जाकर टिका था, वहाँ केवल एक को ही देख रही थी वह! और उसके प्रति उसके मन में जो उत्क्रांति मची हुई थी, उससे उसकी आकृति कठोर हो उठी। जाने उस कठोरता में उसकी घृणा थी, या उपेक्षा, या मोह था अथवा यह-सब कुछ नहीं—इसे ठीक-ठीक कौन कह सकता है!

गाड़ी बड़ी तेजी के साथ राह पर बढ़ती जा रही थी। कच्ची सड़क पर जहाँ धूलों का अम्बार है, जहाँ खड्डे-खंदकों की भी कुछ कमी नहीं, जिस राह पर गाड़ी हिचकोले खा-खाकर ही चल सकती है, गाड़ी बढ़ती चली! यदि दूसरा कोई समय होता, तो प्रभावती पैदल चलना ही पसंद करती; पर वह समय कुछ ऐसा था, जब गाड़ी के सिवा उसके लिए और कोई उपाय नहीं था। और गाड़ी धूल-धक्कड़ों को उड़ाती हुई, खड्डे-खंदकों को लाँघती और हिचकोले खाती हुई बढ़ती चली। दोनों बैल हाँफ रहे थे, उनके नथूनों से झाग निकल रहा था। गाड़ीवान पसीने से तर हो रहा था, फिर भी गाड़ी चल रही थी।

दिन ढल चुका था, सूरज जैसे अपना मुँह छिपाने को क्षितिज के छोर पर जा लगा था। उसका विराट रक्तिम मुखमण्डल ऐसा जान पड़ता

था, मानो सारी वसुधा को एक साँस मे लीलने को उत्सुक हो उठा हो। उसकी लालिमा से आकाश मे बादलो के 'उडते-पुडते छोटे-छोटे टुकड़े ऐसे लग रहे थे, जैसे वहाँ एक ही साथ कई जगहों पर आग लगी हो! प्रभावती की दृष्टि में लग रहा कि आग तो केवल आकाश में ही छितराई नही है, उसकी लाल-लाल लपटों से भागते हुए गाछ-वृक्ष, खेत-खलिहान, वन-बागीचे, सरपट मैदान, खएडक-पोखर, सब कुछ झुलस रहे है। यहाँ तक कि उसका अंतर उन लपटों से झुलस रहा है! ओह, यह आग की लपट! उसने चिहुँक कर दूसरी ओर आँखें फेरी, फिर वे एकबार चारो ओर फिर गईं! यह कुछ ऐसे असाधारण भाव से हुआ कि मंजु, पारो और श्यामा से भी यह छिपा न रहा। श्यामा ने मन-ही-मन कुछ समझा, शायद पारो भी कुछ-कुछ पकड़ सकी, पर मजु की समझ में कुछ भी नही आया और वह भौचक होकर अपनी माँ की ओर देखती हुई बोली—क्या है माँ!

प्रभावती का हाथ मंजु की ओर बढ़ा, मंजु के केशों पर उँगलियों का स्पर्श हुआ और उसी क्षण मजु को जान पड़ा कि उसका सिर माँ की गोद मे पड़ा हुआ है।

और इस तरह जब प्रभावती की गाडी मुरारीगुसाँई के दरवाजे पर जा खडी हुई, तब जैसे वह स्वप्नोत्थित-सी बोल उठी—क्या यही घर गुसाँई का है?

और इसी समय गाँव के कुछ लोग उस ओर आते हुए दीख पडे। आँगन से नन्दा पहुँची, दयाल पहुँचा और कुछ लोग पहुँचे और अंत में जो रोती-कलपती हुई आई, वह थी दयाल की माँ! और वह आकर रानीमाँ के पैरो पर धड़ाम से गिर पड़ी, फिर अस्फुट स्वर में बोली—आप आ गई है रानीमाँ!—आप······

सब-की-सब गाड़ी से उतर पड़ी। प्रभावती ने दोनो हाथो से दयाल की माँ को उठाते हुए कहा—हाँ, आ गई गुसाँइन! चलो, भीतर चलो!

प्रभावती उसके साथ भीतर की ओर चल पड़ी और पीछे-पीछे मंजु, पारो और श्यामा ने भी उसके पद का अनुसरण किया।

गाँव के बच्चे-बूढ़े, जवान, औरत-मर्द, जो कुतूहलवश वहाँ आ गये थे, सभी हतप्रभ होकर अपनी-अपनी जगह खड़े हो रहे! किसी की समझ में न आया कि रानीमाँ के हठात् यहाँ आने का क्या कारण हो सकता है!

फूँस का छोटा-सा घर! मिट्टी से पाटी हुई दीवार, खिड़की का नाम नहीं, कच्ची सहन, मिट्टी की छोटी-बड़ी अनाज रखने की कोठियाँ, बीच में बच रही खाली जगह, और उस खाली जगह में बाँस के नीचे झुका-लटकती हुई खाट! अँधेरा ऐसा कि स्पष्ट कुछ दीख नहीं पड़ता! धुँआ-धुँआ सा छाया हुआ। प्रभावती फिर भी भीतर गई, और वह उस खाट की ओर बढ़ी। उसने देखा कि कुमुद अचेत पड़ा हुआ है, उसके केश बिखरे हुए हैं, चेहरे पर जैसे पीलापन उतर आया है, ओठों पर कालिमा छा गई है और घनी बरौनियों से आँखें ढँकी हुई! वह रह-रहकर पैर पटक रहा है और रह-रहकर उसके सारे शरीर में मरोड़ आ रही है······

प्रभावती खाट के एक सिर पर बैठ जाती है और कुमुद की स्थिति समझने का प्रयास करती है······

नन्दा दीप जलाकर खाट के सिरहाने दीपदानी पर रखकर खड़ी हो, प्रभावती की ओर टकटकी बाँधकर देखने लगती है। प्रभावती की दृष्टि, दीप के प्रकाश में, कुमुद की ओर निबद्ध हो जाती है। उसकी दृष्टि की करुणा जब आँखों से छलक उठती है, तब दयाल की माँ उसे देखकर चिंता से पागल हो उठती है और वह बिलख कर कह डालती है—दयाल को देखने आया था, रानीमाँ, जब कोई माई का पूत यहाँ झाँकने को भी नहीं आया! दयाल मरकर जी उठा अपने साथी कुमुद को देखकर!······मगर मैं जानती हूँ कि उसका मर जाना ही अच्छा होता·····

प्रभावती स्वयं माँ थी और माँ के मन की व्यथा जानती थी। इसलिए दयाल की माँ से ऐसी बात सुनकर वह चुप न रह सकी। उसकी आँखों से करुणा की झलक दीख पड़ी और वह अपनी जीभ को दाँतों से दबाकर बोली—ऐसा नहीं कहते! ऐसी बात माँ होकर कैसे कह सकी गुसाँइन? दयाल जिये, युग-युग जिये!

उस समय कुमुद की मुर्च्छा जैसे भंग हुई, पर शरीर में ऐंठन उसीतरह हो रही थी और वह रह-रहकर बड़बड़ा उठता था—अब नहीं-अब नहीं! माँ, देखो, मैं आ रहा हूँ·····आ रहा हूँ·····और उसके ओठों के कोने से हँसी निकल पड़ी, जाने कैसी भयावह हँसी···

प्रभावती उसकी छाती पर लोट गई, फिर उसके बिखरे केशों पर उँगलियाँ फेरती हुई मधुर कण्ठ से बोली—देखो, कुमुद, मैं आ गई हूँ, आँख खोलो तो जरा·····देखो कुमुद! माँ-माँ·· मैं तुम्हारी रानीमाँ जो हूँ!

पर कुमुद की आकृति-प्रकृति से ऐसा कुछ दीख न पड़ा कि वह होश में है·····और होश में आकर वह कुछ सुन सका है!

और वह बड़ी भयावह घड़ी थी कुमुद के लिए, जब वह जीवन और मृत्यु के हिंडोले पर झूल रहा था, जब उसके प्राण-पखेरू उड़ना तो चाहते थे, पर धरती का मोह उन्हें उड़ने न दे रहा था! और उसकी बड़बड़ाहट चल रही थी—कुछ स्फुट, कुछ अस्फुट! और उसी बड़बड़ाहट में उसने फिर कहा—देखो······वह देखो·····रस्सी·····रस्सी से बाँधना चाहते हो······नहीं-नहीं····· मैं नहीं डरता, मैं नहीं डरता! जानते हो, मैं···मेरी रानीमाँ है, धन-दौलत, हीरे-जवाहर··· क्या नहीं है मेरे······चाहो तो दे सकता हूँ··· जितना चाहो ···दे सकता हूँ····· रानीमाँ रोकेंगी नहीं···मगर मैं····ओह, रानीमाँ······रानीमाँ····तुम्हें खुश न कर सका···

प्रभावती की आँखों में आँसू भर आये और उच्छ्वसित होकर कुमुद पर झुकती हुई, उसके ललाट को उँगलियों से सहलाती हुई, स्नेह-सिक्त स्वर में

बोली—मैं खुश हूं कुमुद ! तुम्हारी खुशी में मैं भी खुश हूं ··· मगर भगवान के नाम पर ऐसा न कहो कुमुद ! तुमने ठीक कहा—रानीमाँ तुम्हें रोकेंगी नहीं, हीरे-जवाहर जिसे देना चाहो, जब देना चाहो, जहाँ देना चाहो, रानीमाँ तुम्हें रोकेंगी नहीं ! मगर एकबार हँसकर देखो तो भला ··· मन, एकबार ····· केवल एकबार !

फिर भी प्रभावती को ऐसा न लगा कि कुमुद के कानों उसकी कुछ भी बात गई हो ! प्रभावती आशा की दृष्टि गड़ाए कुमुद की ओर निहारती रही !

पर जब प्रभावती को यह विश्वास दृढ़ हो चला कि कुमुद हाथ से बाहर निकला जा रहा है, तब उसकी आकृति कठोर हो उठी, भवें तन गईं और उसकी बड़ी-बड़ी आँखें रोष से लाल हो उठीं। तभी वह परुष कंठ से बोल उठी—कलेजा ठंढा कर लो गुसाँइन ! तुमने मेरे कुमुद को चटोर बनाया, तुमने मेरे कुमुद का मन मुझसे फेरा, तुमने मेरे महल से कुमुद का दिल उचाटा ! भिखारी होकर तुम्हारी ईर्ष्या तुम्हारे सिर नाच उठी। जानती हूं, औरतें कितनी ईर्षालु होती हैं ··· और उनमें भी गँवार औरतें ! तुमसे यह भी देखा नहीं गया कि कुमुद मेरा है······मैंने पाला-पोसा, मैंने ····अब तो दिल की जलन मिटी, चुड़ैल !

दयाल की माँ ने जो सिर एकबार झुकाया, फिर वह उसे ऊपर न कर सकी। वह जिस बात से डरती थी और जिस बात के लिए अपने दयाल का मर जाना उत्तम समझती थी, वही बात उसके सामने थी ! बात क्या थी, मानो उसपर वज्र ढाहा गया था ! पर न तो वह कुछ प्रतिवाद में बोल सकी और न वह कुछ कहने की स्थिति में अपने-आपको पा रही थी ! पाषाण भी सिहर उठता है; पर वह ऐसी पाषाणी बनी, जैसे चेतन-जगत से उसका कुछ भी सम्बन्ध न रह गया हो !

और ठीक उसी समय कुमुद एकबार जोर से चिल्ला उठा और फिर बड़-बड़ाता हुआ बोला—देखो माँ, वह देखो ······उसे अलग करो मेरे सामने से! तुरत हटाओ, तुरत हटाओ······ओ माँ······ओ माऽऽऽऽ···

और इसबार जोर की उसे हिचकी हो आई, लगा जैसे उसी क्षण उसका दम निकल कर ही रहेगा!

प्रभावती उसके बदन से चिपक गई और उसके कान में मुँह सटाकर बोली—कुछ तो नहीं है, कुमुद! कुछ तो नहीं है कुमुद! तुम डर क्यों रहे हो!

पर इसबार भी उसे कुछ ऐसा न जान पड़ा कि कुमुद ने उसकी बात सुनी हो!

श्यामा, पारो और मंजु अबतक अपनी जगह अचल-अटल-सी खड़ी थी। विशेषत मंजु तो कुछ समझ न रही थी कि वह कुमुद को किस रूप में देख रही है! पर वह अचल खड़ी न रह सकी। उसने सिरहाने जाकर कुमुद के सिर पर उँगलियाँ फेरी और फिर वह बोली—कुमुद, ऐसा क्यों कर रहे हो? देखो, मैं जो खड़ी हूँ, मैं मंजु—तुम्हारी दीदी······

फिर कुमुद की ओर से कुछ उत्तर न पाकर मंजु ने कहा—महल में तुम आ न सके; पर यहाँ आने में तुम्हें जरा भी हिचक न हुई! वाह, तुम भी भले आदमी······

और उसी समय बूढे दीवानजी अपने राजवैद्य को लेकर भीतर आ पहुँचे। वैद्य ने नाड़ी देखी और उसकी आकृति की ओर अपनी सूक्ष्म दृष्टि डाली।

प्रभावती को उनके आने पर कुछ धीरज बंधा और कुछ आशा जगी कि शायद कुमुद अब बच जा सकेगा। तभी वैद्यजी की ओर निहारते हुए बोली—बचाइए वैद्यजी, कुमुद को बचाइए! मैंने कभी किसीका अनिष्ट नहीं सोचा, फिर भगवान······

दीवानजी अबतक अचंचल भाव से कुमुद की ओर आँखें गड़ाकर देख रहे थे, पर उन्हें लग रहा था कि चिकित्सा में बहुत देर हो चुकी है! अब शायद ....फिर भी बोले—मिसरजी, क्या कुछ ... जरा कहिए तो कुछ.. ...

पर मिसरजी ने उत्तर न दिया, उनके मुँह से एक गंभीर आह निकली और उस आह के साथ उनकी आकृति विषाद की कुहेलिका से आच्छन्न हो उठी।

प्रभावती अपने उद्वेलित हृदय की विकलता को छिपा न सकी, बोली—बोलिए, कुछ कहिए वैद्यजी ... कुमुद......

—भगवान का स्मरण करें रानीमाँ!—वैद्यजी गंभीरभाव से बोले—वैद्य का काम जहाँ शेष हो जाता है, वहाँ वैद्यो नारायणो हरि ... आप तो स्वयं सब-कुछ जानती हैं!

श्यामा इसबार बोली—जब आप खुद आ गये हैं, तब तो कुछ करना ही चाहिए, मिसिरजी!

—मिसिरजी-मिसिरजी!—पारो ने इसबार मुँह खोला। उनकी आकृति कठिन हो चली थी! उसने कुछ रूखे स्वर में कहा—आपसे जब कुछ नहीं होगा, तब इतने पोथी पुरान भाँजते रहने से क्या लाभ! मैं तो जानती हूँ कि राजदरबार में कुछ लोग शोभा बढ़ाने के लिए .. ..

श्यामा ने इसबार आँखों-आँखों से पारो को झिड़का और वह कुमुद के पायताने बैठकर कुमुद के पाँव दबाने लगी।

वैद्यजी बाहर आकर चिंतितमुद्रा में सोचने लगे। दीवानजी उन्हीके पास आकर बैठे और वे दोनों निर्वाक्-निश्चल होकर आकाश की ओर देखने लगे। शायद वे दोनों नारायण हरि से कुमुद की मंगलकामना में सन्नध हुए।

प्रभावती निश्चल भाव से कुमुद की ओर निहार रही थी। इसी समय मानो भय-विह्वलता से कुमुद चौंक उठा और चौंककर ही उसने

दोनों आँखें खोल दीं। ठीक उसी समय दीप-शिखा प्रबल वेग से लहलहा उठी। शायद कुमुद कुछ समय केलिए स्वस्थ्य-जैसा उसे जान पड़ा; पर वह अवस्था क्षणिक थी। फिर भी प्रभावती को जरा ढाढ़स बँधा, उसे कुछ आशा की झलक दीख पड़ी और वह उल्लसित होकर बोल उठी—मैं हूँ—मैं—एकबार माँ कहो, बेटा! माँ कहो, बेटा!

कुमुद की आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े। धीरे-धीरे उसकी आँखें झँपने लगी··· धीरे-धीरे उसका सारा शरीर अवश होने लगा! उसके ओठ खुले, वह कुछ कहना चाहता था, पर बोल गले से न निकल सका! फिर भी प्रभावती को लगा—जैसे जल केलिए उसका अंतर छटपटा रहा हो! प्रभावती ने गिलास उठाकर धीरे-धीरे उसके ओठों से लगाया। कुछ जल उसके गले से नीचे उतर सका, पर कुछ ओठों के दोनों ओर से वह निकला!

उससमय प्रभावती को लगा, जैसे सारा घर अंधकार से भर गया हो! जाने उसकी अपनी दृष्टि ही मंद पड़ गई हो! पर न तो वहाँ उतना सघन अंधकार ही था और न उसकी दृष्टि ही मंद पड़ी थी। ठीक उसी समय उसे लगा कि निर्वात दीपशिखा थरथरा कर जैसे आप-ही-आप धीमी पड़ती जा रही हो·····और कुछ क्षण तक केलिए वह दीप-शिखा जैसे भुक् से बुझ चुकी हो!····और तभी प्रभावती ने सुना—कुमुद बड़बड़ाते हुए जैसे सुदूर से बोल उठा है—माँ-माँ! ओह, माँ·····

और उसी समय जोर की एक हिचकी प्रभावती ने सुनी। उसे लगा कि जैसे उस हिचकी के साथ टिमटिमाती हुई शिखा सदा केलिए बुझ गई! इसबार वह स्थिर न रह सकी! जिस नारी ने अपना सब-कुछ वात्सल्य पर न्यौछावर कर दिया था, वह उस आधार को खोते समय क्योंकर ढाढ़स बाँध पाती! पर वह शोक के जिस चरमबिंदु पर जा पहुँच चुकी थी कि उसके मुँह से एक आह तक न निकल सकी और

न उसकी आँखों से एक बूँद आँसू गिरे। वह एकबार कुमुद की छातीपर जो गिरी, तो फिर सहसा अपना सिर न उठा सकी! पर उसके मानस में उस समय भी कुमुद के अन्तिम शब्द ध्वनित हो उठे! कुमुद अपने मुँह से अन्तिम समय 'माँ' तो बोल सका, पर वह 'माँ' किसके लिए था—प्रभावती केलिए, या दयाल की माँ केलिए, अथवा अपनी माँ के लिए? प्रभावती यह जान न सकी! फिर भी माँ की ध्वनि······ और कुमुद के अन्तिम काल की ध्वनि······प्रभावती को लगा—शायद कुमुद ने जैसे छलना मे ही माँ कहा हो!

और उसी समय सुदूर से कोई गाता हुआ अपने पथपर बढता जा रहा था और प्रभावती के अंतर में उस गीत के एक-एक शब्द जैसे धँसते जा रहे थे······

